राममनोहर लोहिया की भूमिका का एक राजनैतिक विश्लेषण

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय

की

इतिहास विषय में

डॉक्टर ऑफ फिलासफी

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2008
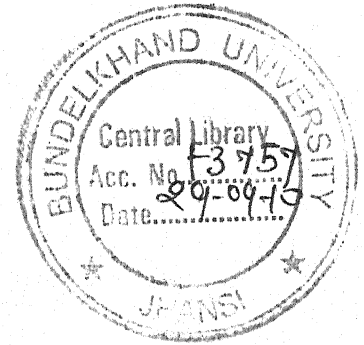
निर्देशक :

डॉ. अजय कुमार सक्सेना

एम.ए., पी.एच.डी.

रीडर एवं विभागाध्यक्ष इतिहास

गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय

उरई (जालौन) उ.प्र.

अनुसंधानकर्ता :

नसीमा खातून

एम.ए., इतिहास

सप्रेम भेंट

नसीमा खातून द्वारा

स्व0 जमीला बेग़म को

शोध प्रबन्ध समर्पित

2008

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि नसीमा खातून द्वारा आधुनिक इतिहास के अन्तर्गत **"राममनोहर लोहिया की भूमिका का एक राजनैतिक विश्लेषण"** शीर्षक पर विद्या वाचस्पति उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय के अध्यादेश की समस्त नियमों एवं शर्तों को पूर्ण करते हुये, मेरे निर्देशन में निर्धारित अवधि न्यूनतम 200 दिवसों तक रहकर सम्पन्न किया गया है। यह इनका स्वयं का मौलिक प्रयास है। इनका प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उच्च स्तरीय तथ्यों पर आधारित है एवं इतिहास के अछूते संदर्भों में नवीन दिशा दृष्टि प्रदान करेगा तथा शोध के क्षेत्र में इस प्रबन्ध का मौलिक योगदान होगा।

मैं शोध प्रबन्ध प्रस्तुति की प्रबलतम संस्तुति करता हूँ।

शोध निर्देशक

दिनाँक :

(डॉ0 अजय कुमार सक्सेना)
एम0ए0, पी-एच0डी0
रीडर एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग)
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई, जिला-जालौन, उ0प्र0

मेरे पिता श्री गुलाब खाँ का विशेष स्नेह एवं त्याग रहा, जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोंण से मुझे समय-समय पर आत्मबल देते रहे तथा मेरी मां स्व0 जमीला बेगम की भी मुझे आन्तरिक रूप से प्रेरणा मिलती रही।

मेरी प्यारी बहिन कु0 समीमा खातून एवं कु0 कसीमा खातून जो लालित्य से परिपूर्ण है, ने अमूल्य सुझाव दिये तथा शोध कार्य पूर्ण करने में उनके सराहनीय सहयोग के लिये आभार व्यक्त करती हूं।

मेरे भाई सौराव खां एवं सादाब खां का भी विशेष रूप से योगदान रहा जिन्होंने मुझको समय-समय पर अमूल्य सुझाव दिये एवं ढांढस बंधाया इस शोध कार्य को करने के लिये।

डॉ0 मुकेश भूषण, लेक्चरर, राजकीय इण्टर कालेज, उरई का मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूं, उन्हीं की प्रेरणा एवं उत्साहवर्धन से मेरा शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को स्वच्छ, सुन्दर एवं आकर्षण रूप देने के लिये मैं पंकज गुप्ता का भी आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने अल्प समय में नियम अवधि में इसे वास्तविक स्वरूप प्रदान किया।

अन्य सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं का सहयोग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शोध कार्य हेतु मुझे सुझाव प्राप्त हुये। उनके प्रति में हृदय से आभार व्यक्त करती हूं।

नसीमा खातून

अध्याय - प्रथम

डॉ0 राममनोहर लोहिया : व्यक्तित्व एवं विचारधारा

डा0 राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं विचारधारा

डा0 गममनोहर लोहिया अपने युग के प्रखर मनीषी थे, और उनकी दिव्य दृष्टि अत्यन्त पैनी थी। वे गाँधी जी के पक्के शिष्य थे। उन्होंने अपने ढ़ग से भारतीय जीवन धारा की उन्नतशैली को सर्मथन देते हुए आधुनिक हिन्दुस्तान तथा प्रजातन्त्र के सबसे मेधावी राजपुरुष थे। ''20वीं'' सदी के अपनी प्रखरता और कौशलता का प्रयोग उन्होंने इस देश का इतिहास, राजनीति, समाज और संस्कृति के अध्ययन में किया। उनको निर्भीक विश्लेषण करने में तथा देश और समाज की समस्याओं का निदान करने में उन्होंने एक पहचान बनायी, क्योंकि उनका यह मानवीय धर्म था, हमेशा लोहिया ने कर्म की परख करते हुए विभिन्न समस्याओं के निदान के रास्ते निकाले इस देश का सौभाग्य होगा, कि उनके बतायें गये रास्ते पर चलकर एक लोकतान्त्रिक और समानतावादी समाज की स्थापना हो सके।

डा0 लोहिया परिश्रमी और जीवट थे, वे हर बुराई व अन्याय के लिए लड़े। उनमें साक्षात् हिन्दुस्तान की गरिमा, बौद्धिकता, श्रेष्ठता और पांडित्य समाया हुआ था। लोहिया जी छोटे आदमी के बारे में चिन्ता करते थे, तथा बहुत बड़े आदमी को लोहिया ने हमेशा छोड़ा। उन्होंने गरीब, दलितों और शोषितों के बारे में सोचा और उनको ऊपर उठाने का प्रयास किया। जिससे उनका जीवन सुन्दर और स्वच्छ वन सके।

लोहिया की जिन्दगी का आधार था कि करूणा, दया एवं आत्मसम्मान। वे भावना प्रधान आदमी थे, लेकिन विवेकहीन नहीं थे, तर्क और भावना गरीबी और गन्देपन को मिटाना, नयी सभ्यता का सपना, आदमी और औरत के बीच खुला

रिश्ता, गरीबों और शोषितों के लिए लड़ना और उनको उसका अधिकार दिलाने के लिए लड़ना और अपनी संस्कृति से प्यार लेकिन जो असुन्दर है, उसे नौंचकर फेंक देने के लिए आन्दोलन करना लोहिया की जिन्दगी की खुशी थी।

लोहिया एक ऐसे अनुठे एक मात्र नेता थे, जिन्होंने अपने रहन-सहन वेशभूषा और भाषा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पढ़ना और सहज रूप में हर गरीब वर्ग के व्यक्ति को अपने गले लगाना, ये लोहिया के व्यक्तित्व की विशेषता थी।

लोहिया का मानना था कि आदमी की जिन्दगी किस दिशा में जा रहीं है। इसका एहसास मानव को स्वयं कर्मो से होता है। वे जानते थे कि परिश्रम और साधना मानवीय उत्थान के बिन्दु है। जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन को गौरवमयी और आदर्शमयी प्रतिमानों में रख सकता हैं। वे हमेशा मानवता को ताकतवर और तटस्थ बनाने को प्रयास करते थे, जिससे समाज और मानवता का अस्तित्व और विलक्षणता बनी रहें। लोहिया मनुष्यों को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग नहीं करते, बल्कि मनुष्य की लड़ाई के लिए अपने अस्तित्व को दाव पर लगाते थे।

''लोहिया की जनो-मुखी प्रतिबद्धता की प्रशंसा करते हुए लेखक रजनीकांत वर्मा के अनुसार उनका जीवनपथ कष्ट का मार्ग था। वह संघर्ष उनके लिए था, जिनसे वो खेतों, कारखानों, रेलगाड़ी, गाँव या सड़कों पर मिले थे। जिनका वो नाम नहीं जानते थे, लेकिन उनके वर्ग उनके चेहरे या उनके कष्टों को वे कभी नहीं भूल सके।''[1]

लोहिया भारतीय समाज को एक कमजोर, असहाय और दीनहीन दशा में देखा करते थे। उनकी नजरों में आजादी के पहले का भारत गरीबी, भुखमरी और विभिन्न विपदाओं से पीड़ित था, इसलिए उन्होंने अपने अखण्ड प्रयासों के द्वारा भारतीय समाज को बहुमुखी बनाने का प्रयास किया।

"लोहिया का जन्म भी एक श्रापग्रस्त परिवार में हुआ था। उनके पूर्वजों में श्री मनसुख राम ने एक गरीब ब्राह्मण की जमीन रखकर उन्हें कर्ज दिया था। वह ब्राह्मण जमीन छुड़ा न सका और उसने आत्महत्या कर ली।"[2]

"मनसुख लाल के चार पुत्रों में से दो की अकाल मृत्यु हो गयी और ब्रह्मकोप के डर से बचने के लिए लोहिया के बाबा शिवनारायण अपना पैतृक गाँव मिर्जापुर छोड़कर सरयु किनारे अकबरपुर आकर बस गये। ब्रह्मकोप ने यहाँ भी उनका पीछा न छोड़ा और उनके चार में से तीन पुत्र भरी जवानी में खत्म हो गये। इस प्रकार शिवनारायण के जीवित बचे हुए पुत्र हीरालाल के यहाँ अक्षय तृतीय, चैत्र, कृष्ण तृतीय 23 मार्च 1910 को प्रातःकाल राममनोहर लोहिया का जन्म हुआ।"[3]

लोहिया की माता का नाम चंदा था, जो मिथिला प्रदेश की थी। माता का भी स्वर्गवास हो गया, जब लोहिया ढ़ाई वर्ष के थे, उनकी वात्सल्यता नहीं मिली जिस कारण से उनके व्यक्ति में माँ का प्यार और दुलार समाहित नहीं हो पाया। लोहिया के जीवन में समय के साथ-साथ बहुत सारे परिदृश्य, हर्ष और विषय जुड़े हुये थे। मन, बुद्धि और कर्म की रोमांचित उत्तेजनाओं के साथ उनका व्यक्तित्व पल्लिवत और पुष्पित होता रहा।

लोहिया के व्यक्तित्व पर तुलसीकृत 'रामचरितमानस', वालिमकीकृत 'रामायण' तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न ऐतिहासिक महापुरुषों का प्रभाव पड़ा। जिससे लोहिया के व्यक्तितव में काफी तेजी से परिवर्तन आता रहा है, और देश की आजादी की एक चौथाई सदी में जिन लोगों ने अपने विचार और कार्यो को जीती जागती सच्चाईयों को मोड़कर एक नीचे आदमी के दर्द में अपना दर्द देखा और उनमें लोहिया सबसे अग्रणी रहे।

लोहिया के व्यक्तितव पर बुद्ध का दर्शन और आष्टांगिक मार्ग का प्रभाव पड़ा। उन्होंने मानवता और दया के बीजों को रोपित किया जिससे वो मानव

समाज की रक्षा कर सकें और समाज के दलित और शोषित वर्ग के लोगों का मार्गदर्शन देकर उनके जीवन को व्यवहारिक और प्रयोगात्मक बना सके लोहिया का कर्मठ और जीवट व्यक्तित्व था।

"उन्होंने अपने साथी जयप्रकाश को पत्र लिखा की देवधर में भी पंड़ों के यहाँ मेरे वंश का खाता वन्द हो गया है। मथुरा में पहले ही हो चुका है। मेरा रास्ता कुछ और है, तुम्हारी बीवी, भाई-भतीजे है। देश से तुम्हारा ममता का सम्बन्ध है। तुम्हीं देश के नेता हो सकते हो और समाजवाद को बढ़ा सकते हो।"[4]

डा0 लोहिया का व्यक्तित्व और कृतित्व बड़ा विचारणीय था। उन्होंने अपने जीवन में समय के उत्तार-चढ़ाव, अघात, ईमानदारी, बेईमानी, राजनीति का मिजाज और राजनीतिकों का कर्तव्य और कर्म देखें। देश की प्रभावशाली सांस्कृतिक परम्परा की निरंतरता के सवालों को चुनौती और उत्तेजना ने उनके व्यक्तित्व को सरलता से कठिनता के ओर मोड़ा।

लोहिया के जीवन पर गाँधी के रचनात्मक कार्यो का विशेष प्रभाव पड़ा। उनकी सोच गाँधी जी के काफी समानता रखती थी। लोहिया एकदम दृढ़ चित्त संयमित और अनुशासित थे। उनके जीवन में अखण्ड़ता, एकाग्रता और विश्वसनीयता थी। वे कभी विचलित नहीं हुए। उन्होंने गाँधी जी के विचारों और दर्शन को अपने जीवन में उतरा जिससे उनका व्यक्तित्व रचनात्मक और संघर्षात्मक बना।

"मेरा रास्ता कुछ और है।" यहाँ लगता है, लोहिया व्यक्त करते है कि बड़ा राजनेता हो जाना उन्हें छोटे आदमी की छोटी लड़ाईया लड़ने से नहीं रोक सकता। वो चाहे फिर अनजान नागपुर का रिक्शा चालक हो या आगरा जेल में फाँसी की सजा प्राप्त कैदी तोताराम हो जिसके प्राणदान के लिए लोहिया जी जेल से राष्ट्रपति को प्रार्थना पत्र भिजवाते है।"[5]

लोहिया का व्यक्तित्व उत्तम और उज्जवल था। वो अपने फैसले स्वयं करते थे, जो उनकी अन्तर आत्मा बोलती थी, वे हमेशा क्रियाशील रहते थे और दूसरों को क्रियाशील बनाने की सलाह देते थे। लोहिया जी ने अपने जीवन को हमेशा चुनौतियों से परिपूर्ण बनाया।

उनके जीवन के ऐसे बहुत से संस्मरण है, जिन्होंने हमेशा अपने देश को विकास के सम्बन्ध में पर्याप्त चिन्तन किया और देश के सभी वर्ग के लोग अधिक से अधिक विकास की ओर ग[illegible] कर सके। उन्होंने पूरी व्यवस्था को नैतिक और समतामूलक बनाने का प्रयास किया।

गाँधी जी और लोहिया के विचारों में एवं उनके व्यक्तित्व में बहुत-सी अनुकूलतायें और प्रतिकुलताऐं थी। परन्तु लोहिया के व्यक्तित्व को अधिक से अधिक सम्बल रविन्द्रनाथ टैगोर, माइकल मधुरुदन दत्त, स्वामी विवेकानन्द, एवं बकिंमचन्द चटर्जी से मिला एवं इन महान व्यक्तियों का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा लोहिया का चिन्तन और उपलब्धियाँ कमजोर वर्ग के विकास में बड़ी सार्थक रही। उनका दृष्टिकोण हमेशा भारत के कमजोर वर्ग का विकास करना और उनको समाज की संस्कृति से जोड़कर उनको गौरवशील बनाना था।

लोहिया के विचारों में उत्कृष्ट राष्ट्रीयता की भावना थी। "हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र है या दो? सात सौ वर्षो का हिन्दुस्तान का इतिहास इस सवाल पर दुविधा में रहा हैं ओर इसके हल बराबर बनें और बिगड़े है। दोनों धर्मो को मिलाकर एक-राष्ट्र में ढालने की बहुत सी कोशिशे हुई है और अक्सर वे करीब-करीब सफल भी हुई। लेकिन धर्म के फर्क की बाधा ने इसमें बड़ी रुकावट की और कट्टर पथिंयो ने बार-बार फिर सवालो को जिन्दा कर दिया। लेकिन इसके एक नतीजे में कोई शक नहीं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के मुसलमान अन्य किसी देश के लोगों की अपेक्षा चाहे वे मुसलमान ही हो, हिन्दुओं से ज्यादा

नजदीक है। इसी तरह हिन्दुस्तान के हिन्दू किसी और देश के लोगो की अपेक्षा इस देश के मुसलमानों के ज्यादा नजदीक है।"[6]

लोहिया हमेशा रूढ़िगत समाजवाद के खिलाफ थे जो दुनिया में आमतौर पर समाजवाद कहलाता है उन्होने हमेशा अपने मुल्क की सेवा करना सच्चा धर्म माना सामाजिक विकारो और दुर्बलता को दूर करने का प्रयास किया और हिन्दुस्तान में एक आदर्श समाजवाद की स्थापना की। उनका मुख्य उद्देश्य था। समाजवादी समाज के द्वारा पूरा राष्ट्र एक हो सकता जो देश के लिए बड़ा उपयोगी और सार्थक होगा।

लोहिया हमेशा अपनी पार्टी के लिए विकासात्मक सोच रखते थे और जो भी सोचते थे। राष्ट्र और समाज के हित के लिए।

"चाहे रायपुर में उनकी पार्टी का पिछड़ी जाति का नेता सुखराम नागे हो जिसे पुलिस ने अपनी गोलीका शिकार बनाया और जिसकी व्यथा लोहिया ने लोकसभा में व्यक्त की।"[7]

"चाहे फिर बात अस समय के एक साधारण विद्यार्थी और आज देश की प्रमुख समाचार संस्था-"भाषा" के सम्पादक डा0 वेद प्रताप वैदिक के प्रति हो रहे अन्याय की हो जिसे लोहिया ने लोकसभा में अपनी बहस का मुद्दा बनाया और अंग्रेजो के द्वारा हो रहे अन्याय का निराकरण किया"[8]

लोहिया अन्याय और अत्याचार के प्रबल विरोधी थे। उन्होने अपने व्यक्तित्व के स्वरुप का परिचय अपने विद्यार्थी जीवन से ही देना प्रारम्भ किया था। वो हमेशा शान्त विचारधारा के थे। तथा समाज की दुर्बलताओं को उन्होने परास्त करने को प्रयास किया उनमें करुणा, दया और सहानुभुति थी।

"जब उन्होने एक 1920 वर्ष के जवान आदमी को एक छोटे बच्चे को

पीटते देखा तो अपनी नन्ही उम्र का और दुर्बल काया का ध्यान छोड़कर उस जवान पर प्रहार करना शुरु कर दिया।''[9]

''पिटते बच्चे के लिए दया और करुणा तथा पीटने वाले के प्रति चिढ़, क्रोध व घृणा लोहिया के संस्कार में कमजोर और निर्दयी के प्रति दृष्टिकोण उनके चिन्तन और कर्म का विषय बन गया। उन्होंने लिखा हिन्दुस्तान का मध्यवर्ग आज भी मानसिक रुप से सांमती वर्ग का गुलाम है। यह वर्ग ऊपर वालो के सामने माथा झुकाता है और नीचे वालों को लात मारता है।''[10]

लोहिया ने जमीदारी प्रथा और सामंती प्रथा पर कुठाराघात किये। क्योकि इन दोनो प्रथाओ ने भारत के निर्मल ओर कमजोर वर्ग का हमेंशा शोषण किया और इस वर्ग को हमेशा से ही उपेक्षणीय और नगण्यता की दृष्टि से देखा।

मधुलिमये के अनुसार- ''लोहिया का हर व्यक्ति से व्यवहार समान और प्रेमपूर्ण रहता था चाहे वह मैले कपड़े वाला भुक्कड़ आदमी हो या कोई महाराजा। ऐसी साम्य बुद्धि का नेता मैने कहीं नही देखा ऐसी समदृष्टि विरले ही होते है''[11]

लोहिया हमेशा से ही विद्रोह ओर संघर्ष की प्रति मूर्ति थे। उन्होने 1927 में काशी विश्वविद्यालय से इण्टर पास किया और आगे की पढ़ाई के लिए कोलकत्ता के विद्यासागर कालेज में प्रवेश लिया खद्दर का शोक था। खादी देश भक्ति और विद्रोह की निशानी मानी जाती थी, पर युवक लोहिया का खद्दर पहनना केवल राष्ट्रीयता का प्रतीक नही था बल्कि सादगी और सज्जनता का प्रतीक था।

''राममनोहर लोहिया अन्याय के विरुद्ध, पाखण्ड के विरुद्ध भेदभाव के विरुद्ध विद्रोह का एक प्रतीक बन कर उभरे। उन्होने जहाँ भी अन्याय देखा चाहे हिन्दुस्तान में चाहें विदेश में वहीं उसका प्रतिकार किया। 17 मई 1964 को अमरीका

प्रवास में लोहिया द्वारा भरीझन के कैफेटेरिया में रंग-भेद के आधार पर भोजन न परोसने के विरोध में सत्याग्रह करने पर अमरीका की पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया हाँलाकि उन्हें छोड़ दिया गया और अमेरीकी प्रशासन ने लोहिया से क्षमा याचना की।"[12]

लोहिया हमेशा से ही भारतीय चिन्तन में सामप्रदायिकता और समाजवाद पर सोचा करते थे। उनका चिन्तन मौलिक था, तथा उन्होंने अपने जीवन को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़कर विलक्षणता और जीवन व्यापक्ता को प्राप्त करने का प्रयास किया।

लोहिया ने अन्याय के खिलाफ संघर्ष की संकल्प शक्ति और अन्याय के प्रतिकार में कष्ट सहन करने की असीम शक्ति थी। लोहिया के साथी प्रसिद्ध समाजवादी रामानन्द मिश्र के अनुसार

"डा0 साहब के जीवन में ऐसा लगता था जैसे अन्याय और पाखण्ड के विरूद्ध उनका क्षोभ केवल उनके अन्दर की भावना ही नहीं बल्कि उनके रक्त, माँस तथा स्नायु तंतुओं को झंकृत कर दिया करता था, और यह स्थिति उनके जीवन की मूलभावना वृत्ति बन गयी थी।"[13]

लोहिया के अनुसार इतिहास की गति चक्र के सदृश्य तथा अपरिवर्तनीय है। यह धारणा अरस्तु के चक्र सिद्धान्त का स्मरण दिलाती है, इससे इस धारणा में खण्डन होता है कि इतिहास सरल रेखा की भाँति आगे बढ़ता रहता है। उसे चक्रवात गति के दौरान देश सभ्यता के उच्चशिखर पर पहुँच सकता हैं, और पतन के गर्त में भी डूब सकता हैं तथा पुनः उठ सकता है।

"इतिहास से चक्र सिद्धान्त के परिवर्तकों में लोहिया सोरोफिन के स्पेंगलर तथा नौथौपा से बड़ा मानते हैं।"[14]

"लोहिया द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, किन्तु परम्परावादी मार्क्सवादीयों के मुकाबले में वे चेतना को अधिक महत्वपूर्ण मानते है।"[15]

"वे एक ऐसे सिद्धान्त के रचना के पक्ष में है, जिसके अन्तर्गत आत्मा अथवा सामान्य उद्देश्यों, दृश्यों, द्रव्य अथवा आर्थिक उद्देश्यों का परस्पर ऐसा सम्बन्ध हो कि दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रह सके।"[16]

लोहिया ने भारत की राष्ट्र नीति की हमेशा खुलकर आलोचना की उन्होंने नेहरू की गुटनिरपेक्षता विचारधारा का खुलकर विरोध किया उनका कहना था कि भारत को विदेशों में पक्के एवं वफादार मित्रों की खोज करनी चाहिए। जिससे भारत एक गत्यात्मक उदारीकरण की गति से जुड़ सके। लोहिया ने हमेशा भारत को उच्चकोटि तक ले जाने का प्रयास किया परन्तु प्रजातान्त्रिक तथा लोकतान्त्रिक विचार धारा के द्वारा-

"लोहिया का विश्वास था कि इतिहास में जातियों तथा वर्गों का संघर्ष देखने को मिलता है। जातियों की विशेषता यह होती है कि उसका रूप सुनिश्चित होता है। इसके विपरीत वर्गों की आन्तरिक रचना शिथिल हुआ करती है। वर्ग तथा जाति के बीच घड़ी के लोलक की सी आन्तरिक क्रिया होती रहती हैं। यही दोलन क्रिया इतिहास को गति प्रदान करती हैं, जातियाँ गतिहीनता, निष्क्रियता तथा रूढ़ीगत अधिकारों को पुरातनवादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। वर्ग समाजिक गतिशीलता की प्रचण्ड शक्तियों के प्रतिनिधि होते हैं। लोहिया के अनुसार अब तक का मानव इतिहास जातियों तथा वर्गों के बीच आन्तरिक गति का इतिहास हैं। जातियाँ शिथिल होकर वर्गों में परिणत हो जाती है, और वर्ग संगठित होकर जातियों का रूप धारण कर लेती है।"[17]

लोहिया के विचारों में सादगी और त्याग की भावना थी। वे हमेशा देशभक्ति और देशप्रेम पर जोर देते थे। उनके विचारों में सद्‌भावना, सहृदयता और सहिष्णुता थी। लोहिया गाँधी और नेहरू के विचारों में भिन्नतायें थी, परन्तु समाज के हित के लिए सोचा करते थे और उनका मौलिक चिन्तन भारतीय समाज के लिए खरा उतरता था। लोहिया ने हमेशा भू-स्वामियों और धनिकों की आलोचना की। वे हमेशा गरीब और असहाय वर्ग की हमेशा सहायता करते थे।

लोहिया का आग्रह रहा है कि एशिया के समाजवादियों का मौलिक चिन्तन तथा अभिक्रम का अभ्यास डालना चाहिए। उन्हें अपनी नीतियों को उस सभ्यता के सन्दर्भ में निरूपित करनी है, जो शताब्दियों पुराने निरंकुशवाद तथा साम्यवाद के कुड़े-करकट में से उबरने का प्रयत्न कर रहीं हैं। एशियायी राजनीति की दुर्दशा का मुख्य कारण यह है कि , रूढ़िवादितों और धर्मान्धता जैसी कट्टर पंथी विचारधाराओं ने समाज के सामने बहुत से अवरोध खड़े किये है, जो लोकतान्त्रिक परम्पराओं के लिए बाधक है। लोहिया ने समाज को आदर्श माना है, उनका कहना था, कि विभिन्न दुर्बलताओं के कारण समाज और राष्ट्र का कभी विकास नहीं हो सका। लोहिया ने हमेशा व्याप्कता और मौलिकता पर जोर दिया जिससे समाज का पूर्ण रूप से चर्तुमुखी विकास हो सके।

''लोहिया ने चतुस्तम्भी (चार स्तम्भों वालें) राज्य को कल्पना की हैं। इन चतुस्तम्भी राज्य में केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण की परस्पर विरोधी धाराओं के समन्वित करने का प्रयत्न किया हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत गाँव, मण्डल (जिला) प्रान्त तथा केन्द्रीय सरकार का महत्व बना रहेगा और एक कार्यमूलक संघवाद के व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायेगा। कार्यों का सम्पादन उन्हें एक सूत्र में बाँध कर रखेगा। इस चतुस्तम्भी राज्य में जिलाधीश का पद समाप्त कर दिया जायेगा, क्योंकि वह राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण की बदनाम संस्था है। इसके अतिरिक्त

मण्डलों, गाँवों तथा नगरों की पंचायत कल्याणकारी नीतियों तथा कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेगीं।''[18]

''लोहिया की समाजवादी नीतियाँ हमेशा भारतीय समाज के लिए उत्कृष्ट एवं अनुपम रहीं जिन्होंने हमेशा गरीब और मोहताज वर्ग की सहायता की सामन्तवादी व्यवस्था और जमींदार प्रथा में आजादी के पूर्व भारत को पूर्ग रूप से पंगु बना दिया। जिस पर पूरा समाज टिका हुआ था। एक राष्ट्र की व्यवस्था को सुधारने में जिससे गरीब से गरीब व्यक्ति को अपने अधिकारों की प्राप्ति हो सके।''

''लोहिया विकेन्द्रीकृत समाजवाद के समर्थक थे। इसका अर्थ है छोटी मशीनें, सहकारी श्रम तथा वामशासन पूँजी के संचय तथा बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिए लोहिया ने छोटी मर्शानों पर आधारित उद्योगों का समर्थन किया।''[19]

लोहिया परम्परावादी तथा संगठित समाजवाद को एक भरा हुआ सिद्धान्त मरणासन्न व व्यवस्था मानते थे इसलिए उन्होने नवीन समाजवाद का नारा लगाया जो नयी विचारधारा पर केन्द्रित था। नवीन समाजवाद के लिए छः सूत्रीय योजना का निरुपण किया परन्तु इस के लिए विश्व के समस्त जीवन स्तर को ऊँचा उठाना पड़ेगा।

''लोहिया ने व्यस्क मताधिकार पर आधारित 'विश्व ससद' का सर्मथन किया। यह एक जटिल तथा यूटोपियाई सुझाव प्रतीत होता है। लोहिया लोकतान्त्रिक राजनीतिक स्वतन्त्रता के पक्के समर्थक थे। वे चाहते थे कि वाणी की स्वतन्त्रता के क्षेत्र सुरक्षित होने चाहिए, और किसी को भी सरकार को बलपूर्वक उसमें हस्तक्षेप नही करना चाहिए। उनहोने सामान्य जनो के अधिकारो तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वैयक्तिक तथा सामूहिक सविनय अवज्ञा की गाँधीवादी कार्यप्रणाली का समर्थन किया। इसका मनोवैज्ञानिक महत्व भी है।''[20]

"राममनोहर लोहिया के अनुसार समाजवाद के तीन मुख्य तत्व थे। सभी उद्योगों एवं बैकों तथा बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण सम्भूचे संसार में जीवन स्तर का सुधार तथा एक विश्व संसद की स्थापना उनका यह नया समाजवाद, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियो के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में था। लोहिया का विश्वास था कि यह समाजवाद सहकारी श्रम ओर ग्राम सरकार के माध्यम से व्यावहारिक रुप ग्रहण कर सकता था। 1952 में काग्रेंस समाजवादी दल के अध्यक्ष के रूप में लोहिया ने गाँधीजी के विचारो को समाजवादी चिन्तन में अधिक मात्रा में स्थान देने की बात कही।"[21]

डा0 लोहिया का दृष्टिकोण सामन्तवाद के खिलाफ और समन्यवादी विचारधारा के सम्बन्धित पक्ष में थे। उनका स्त्री पुरूष सामानता की स्वीकृति जन्म और जाति असमान्ताओ की समाप्ती, दमन की नीतियों के खिलाफ आन्दोलन ओर व्यक्तिगत अधिकारों,अतिक्रमण का विरोध, विभिन्न आर्थिक असमानता एवं शोषणता के विरोध में ध्रुवीकरण और सार्वभौमिकता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दे डाला। डा0 लोहिया वास्तव में समाजवादी आन्दोलन एवं समाजवादी विचारधारा के स्तम्भ थे।

मौलिक अधिकार क्या और क्यो? चाहे तो कैसे पर ही विचार किया जा सकता है? लोहिया के अनुसार अधिकार कर्तव्य की देन है। उनका जन्म ही कर्तव्य से होता हैं कर्तव्य के बिना किसी प्रकार के अधिकार की बात ही नही की जा सकती क्या मनुष्य के जनम से लेकर मरण तक की यात्रा मनुष्य का कर्तव्य नहीं है? जीना कर्तव्य है स्वेक्छिक मृत्युवरण अपराध है- आत्महत्या पाप है। क्योकि मनुष्य का जीवन समाज की सम्पत्ति है। समाज बना है। उससे और उसके लिए है। क्योकि व्यक्ति समाज की ईकाई है। राज्य से पहले और बाद में समाज सर्वोपरि है।

"आज लोकतान्त्रिक समाज का स्वरुप संचेतना और प्रौढ़ता ही अधिक

व्यक्ति के विकास केन्द्र का मूल है। सांमती समाज, पूँजी-आधृत समाज, राजतन्त्री समाज, समाजवादी समाज आदि अनेक दृष्टियाँ है, जिनसे समाज के स्वरूप तथा संचेतना को मनुष्य को केन्द्र में रखकर उसके सामूहिक विकास उन्नति और समृद्धि पर गहन विचार किया जाता रहा हैं। यहाँ तक कि तानाशाही तरीके से होने वाली या जीवनीय यात्रा पर भी खूब सोचा जा रहा है।"[22]

यर्थाथ समतावादी स्वतन्त्रता मूलक और सांस्कृतिक चेतना संकुल समाज की संरचना करना मनुष्य का आदि से लेकर आज तक प्रयत्न रहा है। एक से दो होते है, यह प्रयत्न तेजी से प्रारम्भ हो जाता हैं। पहाड़ी अंचल आदिवासी क्षेत्र और रेगिस्तान में बसे इक्का-दुक्का जन से यह प्रयत्न शुरू हो जाता है। सघन और असफल समाज की अर्थ जरूर है। प्रश्न है, वह दोनो के लिए समान है जो है वह भी मानव चेष्टा संघर्प द्वारा जो होना चाहिए के लिए है।

"संतोष विराम लगा देता है। तमाम जीवन के अंतद्वद्वो, संघर्षो ओर स्थापनाओ के आगे। लालच, अतिस्वार्थ अंध आत्मकेन्द्रिता अकरूणा, हिंसा, अत्याचार आदि के प्रक्रिया को मंद करने और उसे मानव हित के ओर मोड़ने की प्रक्रिया को सम्यक और सुचारु रूप से गतिमान बनाए रखने के लिए संतोष की सक्रिय भूमिका का सर्वाधिक महात्व है स्वंय के प्रति संयम की दिशा निर्धारित करने के लिए संतोष अस्विकार्य तनाव आदि यथा स्थिति को तोड़ने में मद्‌दगार है। अस्तित्व के लिए संघर्ष स्वतन्त्रता की तलाश में एक समान होने लगता है। तब वह संघर्ष सौ दृष्टि तथा प्रगतिशील अनुभव से जुड़ने लगता है।"[23]

डा0 लोहिया के मूल ओर मौलिक या जन्मसिद्ध अधिकार मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मूल की पकड़ अलग-अलग ढ़ग से की गयी है। मार्क्स उसे पेट से मानता है, जबकि डा0 लोहिया उसे हृदय तथा दिमांग से विज्ञान के मान्यता को सामने रखते हुये कहते है। कि गर्भ में सर्वप्रथम मस्तिक के शक्ल में ही

विकसित होता है, उसका शेष हिस्सा हाथ, पाँव आदि सम्मलित है, धीरे-धीरे शाखाओ के रुप में फूटते है पेट तो पशु भी भर लेता है। मात्र पेट तक सीमित रह जाना मानवता का अपमान करना है परमार्थ के लिए सर्वस्व त्याग करना मानव का सबसे बड़ा लक्ष्य है। उससे मौलिकता की बात समझ में आती है। समाजसेवा, त्याग आपसी तालमेल, जिजीवषा, निष्ठा, परमार्थ की भावना बनता है। दरअसल सबको आगे बढ़ने के अवसर समान रूप से मिले, उसमें कोई गतिरोध पैदा नहीं हो, सब सहज हो लेकिन संघर्ष की गति बराबर बनी रहे, क्योकि संघर्ष के बिना विकास नही होता। विकास के मूल में संघर्ष ही सम्मलित है।

प्रायः सभी लोकतान्त्रिक देशो ने कभी-कभी एक से ही मौलिक अधिकार अपने-अपने नागरिको को प्रदत्त किये है। संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों को डा0 लोहिया ने अपनी विचारधाराओं को सार्थकता से जोड़ा और विभिन्न प्रकार की विवेचनायें की।

डा0 लोहिया के विचारों में बौद्धिक स्वतन्त्रता का अधिकार तिलक के जन्मसिद्ध अधिकार के करीब का ही विचार है। अधिकार तो मनुष्य को जन्म के साथ ही मिल जाते हैं। संविधान तथा अन्धविश्वास जन्म से प्राप्त मौलिक अधिकारों की पुष्टि करती है। स्वतन्त्रता ही जीने का मौलिक अधिकार हैं।

"स्वतन्त्रता की अनुभूति बुद्धि संगत है। मानव चेतना में स्वतन्त्रता सन्निहित हैं। चेतना का अर्थ सहज स्वतन्त्रता से है। सहज स्वतन्त्रता अपने मूल का संबोध प्राप्त करना चाहती है। डा0 लोहिया उसे राजनीतिक प्रसंग में स्वराज्य कहते हैं। स्वराज्य बौद्धिक स्वतन्त्रता का लक्ष्य हैं। इसके अन्तर्गत अभिव्यक्ति, अध्ययन, प्रकाशन आदि की स्वतन्त्रता आती है। इस माध्यम से व्यक्ति अन्याय शोषण, आत्याचार, अवमानना आदि उन अवरोधकों से संघर्ष करता जिनके हटाए बिना

उसका सम्पूर्ण विकास सम्भव नहीं हैं। बुद्धि स्वतन्त्र व्यक्ति को अपना सर्वागीण विकास के लिए साधक तत्वों को जुटाने का अधिकार प्रदत्त करता है।"[24]

लोहिया समाजवादी व्यवस्था में मौलिक अधिकारों का हनन देखते हैं। मनुष्य की आवश्यकतायें पशुवत नहीं है, मनुष्य पशु से बहुत ऊँचे स्तर का है। मनुष्य मात्र पेटु प्रार्णी नहीं हैं, जो केवल पेट भरने के लिए नहीं जीता हैं। वह कला साहित्य आदि संस्कृति से जुड़ा हुआ है। वह मानसिक तृप्ति भी चाहता है और स्वजन के लिए विवाद आज भी यथार्थता उसकी आजादी उसकी सृजन सम्भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति के लिए नितांत अपरिहार्य हैं।

"लोकतन्त्र में हर एक अपनी बात कह सकें हर एक अपनी बात पर स्वतन्त्रता पूर्वक बिना भय तक के बहस कर सके। फ़लतः इस दृंष्टि से उसके मार्ग में व्यवधान सामने नहीं आए जैसे- आपातकाल में आए थे, लिखने-बोलने आदि की स्वतन्त्रता पर गहरी चोट हुयी थी, वैसा नहीं हो सके। इसके लिए सजग रहने की जरूरत हैं।"[25]

डा0 लोहिया अपने विचारों में किसी भी कीमत पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आघात नहीं चाहते थे। वह कहते थे, हर व्यक्ति को एक हद तक अपने जीवन को अपने मन के मुताविक चलने का अधिकार होना चाहिए फलतः उसकी व्यक्तिगत जिन्दगीयों में कोई दखल न हो। लोहिया जी का यह मानना था कि मनुष्य को वेएा-अवेध के संकुचित दायरे से मुक्त रखने में उनकी कोई अपत्ति नहीं यदि वह परम्परा व्याभिचारपरक ना होती हो तो व्यभिचारपरक परम्परा को अर्थ मिलता है। नैतिक, धार्मिक समाजिक और अवधारणाओं से। अतः यह अवधारणा में हो और पेचीदी भी थी। इसको स्पष्ट कर पाना मुश्किल और भी आवश्यक हैं।"[26]

लोहिया जी व्यक्तिगतवादी आजादी के संदर्भ में उच्छृंखलता को नपसंद

करते थे किस सीमा तक इन विचारों से इस शर्त पर सहमति बतलायी जा सकते है कि उससे सामाजिक व्यवस्था की चूल व आघात न हो। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए की वो दूसरों की आजादी के लिए खतरा पैदा कर देता हैं। संयम व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कवच है। सुरक्षा है और चेतना है, डा0 लोहिया मृत्युदण्ड के विरूद्ध थे। सरकार या व्यवस्था अथवा न्यायपालिका जघन्य से जघन्य अपराध के लिए मृत्युदण्ड नहीं दे सकती गांधी भी यह नहीं चाहते थे। क्योंकि मृत्युदण्ड से न अपराध कम होते है न किसी को सबक मिलता है, उल्टे समाज में अंत तक भय फैलता है, अनेक शंकायें भी जन्मती है, क्योंकि न्याय का आधार साक्ष्य पर है और साक्ष्य एकत्र कर के क्या कुछ सम्भव नहीं है। यह जाना जा रहा है राज्य तथा सरकार का कार्य जीवन की सुरक्षा करना है न कि जीवन लेना या अस्तित्व के मिटाना है।

डा0 लोहिया आत्मदण्ड की वकालत करते है, वह स्वेच्छा से दण्ड देने का व्यक्ति को हक न मिले और राज्य उसे वही दण्ड दे। व्यक्ति आत्मपिड़न के दौर से गुजरता हुआ जब वह अनुभव करे की वह अपराधी है या उससे जघन्य अपराध बन पड़ा है। जिससे उसकी आत्मा बैचेन रहती है, उसका सुख चैन जाता रहता है, और वह अपने को जीवित बनाये रखने के पक्ष में नहीं है। तब वह आत्मदण्ड के अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

शासन या व्यवस्था मनुष्य को फाँसी दे यह मानवता के विरोध है, अमानवीय है।

''डा0 लोहिया का यह मत सर्वथा मान्य है कि व्यक्ति को जघन्य अपराध के लिए मृत्युदण्ड न देकर अजन्म कारावास की सजा दे दे, कारण गलाघोट कर मार डालना मानवता के लिए अशोभनीयकृत है। यह जरूरी नहीं है, जिससे जघन्य अपराध हुआ हैं। यह पेशेवर अपराधी है कभी-कभी विषम परिस्थितियाँ अच्छे

से नैतिक व्यक्ति को जघन्य अपराध करने के लिये विवश कर देती है, और न चाहते हुये भी वह अपराधी हो जाता है।"[27]

डा0 लोहिया के विचारों नें मनुष्य की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते है, वे हिंसा के स्थान पर अहिंसा सत्य का आग्रह और असत्य की अवज्ञा नैतिक सम्बन्धों की प्रागढ़ता और सत्य के मार्ग को सार्थक बनाने का प्रयास करते है।

लोहिया सविनय अवज्ञा के विचार धारा के पक्ष में थे। उनके अनुसार कानून और व्यवस्था व्यक्ति के विचार को कठिन, दमित और प्रताड़ित करती है और अहम् पर कायम रहती है मनोव्यक्तित्व नहीं है। तब क्या करें? उस अव्यवस्था का निर्दयी कानून से कैसे टक्कर लें। अन्याय तथा अत्याचार का कैसे सामना करें। क्या ईट का जबाव पत्थर से दे ? क्या राज शक्ति के आगे व्यक्ति हथियार लेकर खड़ा हो सकता है। वे हमेशा सर्वाधिक उचित न्यायसंगत, नैतिक और मानवीय विचार धारा के पक्ष में रहे है। जिससे समाज का रूग्ढ़ वातावरण स्वच्छ और सुन्दर बन सकें।

"डा0 लोहिया ने मार्क्स के चिन्तन पर अनेक विचार व्यक्त किये और उन पर सतर्क एतराज भी तर्ज कराया लेकिन आज फिर से लगने लगा है कि कार्लमार्क्स की भविष्यवाणी एक दम ठीक थी, क्योंकि आज का समय भू-मण्डलीकरण के दौड़ से गुजरने लगा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का साम्राज्य फैलता जा रहा है, भारत की अर्थव्यवस्था में गिरावट आ रही है।

"मार्क्स का चिन्तन प्रभावी नजर आता है, क्योंकि प्रौद्योगिक ओर पूँजी ऐसे औजार है, जिनके जरिये मुनाफा अधिक होता जाता है ओर काम के घण्टे कम। जबकि मजदूर के उत्पादन का तीन चौथाई पूँजीपति के हिस्से में जाता है। यदि

मजदूर दस घण्टे काम करता है तो उसके हिस्से तीन घण्टे की कमाई जाती है ओर सात घण्टे की कमाई पूँजीपति के हिस्से जाती हैं। नई प्रौद्योगिक के लाभ का बड़ा हिस्सा सम्पन्न वर्ग के हाथ लगा है, मजदूर की स्थिति निंरतर कमजोर पड़ी है, रोजगार कम हुए है।''

बौद्धिक सम्पदा भी मुनाफा कमाने का औजार उसी तरह बना है जिस तरह टेक्नालॉजी बौद्धिक सम्पदा का पैटर्न हुई है ऐसे शुरु हुआ है, जैसे अपनी जयजाद का होता है। देखते ही देखते भूमण्डलीयकरण का चक्र, साम्राज्यवाद तथा मुनाफा खोरी के पकड़ मजबूत करता जा रहा है। ऐसे लगता है कि कार्ल्स मार्क्स की भविष्यवाणी सिद्ध होती जा रही है। जो दूनिया के सभी देशो में दिन प्रतिदिन मार्क्सवाद का प्रचार प्रसार होता जा रहा है। डा0 लोहिया यह मानते है कि मार्क्स की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुयी है।

अ. मजदूरों का समाजीकरण ब. पूँजी का केन्द्रीयकरण

स. गरीब शोषित वर्ग की संख्या में वृद्धि।

मार्क्स ने घोषणा की थी कि पूँजीवादी देशो में समाजवाद पहले आया हुआ इसका उल्टा गैर पूँजीवादी मुल्को में यह पहले फैला दरअसल यह पहले हुआ कि सर्वहारा वर्ग की गरीबी जहाँ तेज गति से बड़ी वही पूँजीवादी का प्रथम स्त्रोत हुआ, रूस का विभाजन समाजवादी समाज का पतन सारी अर्थव्यवस्था का तहस नहस इस तरह दूनिया के मजदूर एक हो, को भी एक नही मानते क्योकि दूनिया के मजदूर एक नही हो सकते। जब तक उनको समान सुविधाये समान वेतन आदि की व्यवस्था नही हो जाती है। लोहिया के धरातल पर ही समानता अपरिहार्य मानते है जैसे राजनीतिक समाजिक तथा सांस्कृतिक।

गाँधी और लोहिया के विचार सर्वत्तितकारी समाज के लिये है। गाँधी

अस्तिक थे, जबकि लोहिया नास्तिक, लोहिया कर्म में अटूट आस्था रखते थे, भक्ति से दूर रहते थे इसके साथ-साथ अहिंसा ओर मानवता में विश्वास रखते थे।

गाँधी जी ओर लोहिया के जीवन-दर्शन के साम्य और चरितार्थ को समझने के लिये निम्नलिखित क्षेत्र का चयन किया जा सकता है।

1. समाज का स्वरूप अनुचिंतन

2. राजकेन्द्रित अनुचिन्तन

3. अर्थविषयक अनुचिन्तन

4. भाषा विचार

5. वसुधैव कुटुम्बकम का स्वप्न

लोहिया के सपने समाज को सकारातमक और सार्थत्मक बनाने के प्रयास में थे, उन्होने भारंत को हमेशा कट्टरवादिता से बचाया, वे लम्बे समय तक मुसलमानो के साथ रहे, और भारतीय सभ्यता और संस्कृति को उन्होने आपस में जोड़ा क्योकि उनमें आत्मीयता थी वे एक दूसरे के शुभ चिन्तक थे, भाईचारा का व्यवहार रखते थे, कट्टरवादिता के खिलाफ थे तथा हिन्दु और मुसलमानो का अपने-अपने कर्म करने की प्रेरणा देते थे, जिससे भारत की अखडता बनी रहे !

डा0 लोहिया का मत है कि ''हिन्दुस्तान ओर पाकिस्तान के मुसलमान अन्य देशो के लोगो की अपेक्षा चाहे वे मुसलमान ही हो हिन्दुओ में ज्यादा नजदीक है। करीब-करीब यही हालत हिन्दुयो की है। क्यो न हो, हिन्दुस्तान यानी भारत के न केवल हिन्दु मुसलमान एक है। अपितु ईसाई, पारसी आदि भी हिन्दुस्तान को अपना वतन समझते है। ध्यान रहे, वतन मजहब से नही माटी से बनता है। लोहिया का अभिमत था कि हिन्दु और मुसलमान एक राष्ट्र में ढल गये थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य ने हस्तक्षेप किया, दोनों की एकता खण्डित करने का''[28]

लोहिया के विचार धर्म के प्रति उदारवादी प्रवृत्तियों पर केन्द्रीभूत थे वे धर्म को व्यक्तिगत नही मानते थे, वल्कि धर्म एक समिगत होता है। लोहिया ने धर्म के प्रति सौजन्यता तथा सौम्यता को आपस में जोड़ा है। धर्म के द्वारा वे पूरे समाज को कट्टरपंथी विचार धारा से दूर रखना चाहते थे।

"धर्म के आधार को त्यागकर चलने वाले राज्य ही मानवीय हो सकते है। धर्म व्यक्तिगत है, राज्य धर्म की कोई सीमा नही है, राज्य की सीमा है। धर्म हृदय का विषय है, राज्य मन का, बुद्धि का, धर्म का आधार अनुग्रह है, राज्य का कानून ओर आदेश राज्य के कानून तोड़ने वाले को सजा मिलती है, और धर्म का पालन करने वाले कोताही बरतने वाले को क्षमा। राज्य से भय विस्तार पाता है। धर्म से व्यक्ति निडर होता है, यदि धर्म अपने वर्चस्व को बनाने में प्यार का आधार अपनाता है। किसी में घृणा नही करता और किसी के प्रति हिंसा नही दिखाता तो हर एक के मन में उस के प्रति सम्मान होगा, और व्यक्ति के निर्माण, विकास और प्रगति में उसकी भूमिका का आदर के साथ उल्लेख होगी।"[29]

लोहिया ने हमेशा से हिन्दू मुसलमान ही नहीं बल्कि भारत के किसी भी मजहब और पथं को इस राष्ट्र की इकाई माना है। क्योंकि उनके मस्तिक में भारतीय संस्कृति ओर सभ्यता की छाप है। चाहे वो इस राष्ट्र की इकाई है, क्योंकि उनके मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की छाप है, चाहे वो बौद्ध हो, जैन हो, सिक्ख या इसाई हो क्योंकि उन्हें भी इस भारत की जमीन पर रहना है, और भारत के अस्तित्व को बचा कर रखना है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह गैरों को अपनाता है। विनम्रता उसकी ओजस्विता है, करूणा उसकी सौजन्यता है, असहिष्णुता उसकी अन्तदृष्टि हैं, अहिंसा उसका हथियार है, प्यार उसका हृदय है और सत्य उसका शिवमय व सुन्दरतम धर्म हैं। आश्चर्य उसमें अपने धर्मवालों के प्रति बहुत अन्याय किये अत्याचार किए उत्पीड़न किए और उनके हृदय मन को पदाक्रान्त

किया। धर्म या मजहब जिस राज्य के अस्तित्व का आधार होगा, वहाँ न मात्र घृणा, उपेक्षा, हिंसा वैर, कट्टरता और अंधता आदिं का साम्राज्य होगा बल्कि एक ही महत्व वालों में जवर्दस्त दूरिया, होगी घृणा होगी, और हिंसा फैलाकर दवोचने की कोशिशें होगी। जैसी आज हैं।

लोहिया सलाह देते थे कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच शंका, भय, घृणा आदि दीवारें नहीं रहें। क्योंकि इससे समाज और राष्ट्र का विघटन होता हैं। न कि लगाव । लोहिया की धारा आज समाज के लिए उपयोगी और सार्थक हैं क्योंकि उनके विचारों में राष्ट्र और समाज के लिए त्याग और बलिदान था न कि बनावटीपन।

राममनोहर लोहिया के मन में विभिन्न प्रकार के विचार उठते थे, कि प्रान्तीयता की प्राचीर क्यों? देश की आजादी का सवाल सब एक जुट होकर एक दिशा में प्रयत्न कर रहें हैं। लेकिन में कैसी एकता ऊपर से एकता और अन्दर से भिन्नता क्यो? इसे कौन तोड़गा? बिना दीवार को दीवार को गिराये आजादी का अर्थ क्या होगा? आजादी की माँग का आधार भी उनकी यह अटल एकता है। जरूर कहीं कुछ गड़बड़ी हैं।

लोहिया की विचारधाराओं में हमेशा एकता और उसकी अखण्डता तथा उसकी सार्वभौमिकता भी है। लोहिया जी ने हमेशा निरर्थक विचारों का उन्मूलन किया जिससे समाज अलोकतान्त्रिक बन सके, और भारत का प्रत्येक नागरिक नई चेतना लेकर अपने जीवन की शुरूआत कर सकें।

राममनोहर लोहिया ने अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित करने का निर्णय लिया था। लोहिया जी के विचारों में नेहरू और सुभाष बहुत करीब थे। उन्होंने दोनों के कार्य करने की शैली को समझने का प्रयास किया। उस समय नेहरू और सुभाष

दोनों ही युवा पीढ़ी के सिरमौर बने हुए थे। राममनोहर लोहिया जी ने भी अपने विचारों को भारतीय समाज पर छाप छोड़ने का पूर्ण प्रयास किया। लोहिया जी ने अपनी प्रतिभा और कार्य क्षमता को विभिन्न विचारों में समाहित कर एक नई मिशाल कायम की।

लोहिया जी के विचारों में मानव प्रकृति एवं मानव स्वभाव अन्तर्निहित थे। उन्होंने समाज के समक्ष नवीन चुनौतियां प्रस्तुत की। जिससे मनुष्य अपराधिक संस्कृति से दूर रहकर समाज को बिखराव होने से रोक सके। उनकी दृष्टि और विचारों में मांगलिक समाज एक आदर्श समाज था न कि अपराध मूलक। वे हमेशा समाज को सुन्दर और स्वच्छ बनाने का प्रयास करते थे। वे भारत की ओर विदेशों को राष्ट्रवादी गतिविधियों का भी प्रतिनिधित्व करते थे।

राममनोहर लोहिया जी अर्थशास्त्र में शोध कर रहे थे, परन्तु वे समाजशास्त्र और इतिहास के प्रति भी बहुत जिज्ञासु थे। दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का भी अध्ययन करते थे। उनका मानना था कि मार्क्स का समाज व व्यक्ति को साधन तथा गाँधी व्यक्ति को साध्य तथा समाज को साधन मानना अधूरा सत्य है। वास्ततिकता यह है कि व्यक्ति ही साध्य और साधन दोनों है। जबकि व्यक्ति अन्याय के विरूद्ध संघर्षरत रहता है, तब वह साधन है ओर जब वह सुधरें जाने वाले समाज का अभिन्न अंग बनता है तब वह साध्य है। वे साधन ओर साध्य को अभिन्नता को महत्व देते थे।"

राममनोहर लोहिया के विचारों में राहगीर की आत्मीयता थी। वह हमेशा विभिन्न विचारों को समाज के दलित, शोषित ओर कुंठित वर्ग के व्यक्तियों से जुड़ते थे, वे उन लोगों से प्रेमकरते थे जो समाज के उपेक्षित और नगण्य थें उन्होंने जीवन के कटु ओर बहुत से विषैले अनुभव प्राप्त किए। जो मानवता ओर अमानवता के प्रतिमानों पर केन्द्रित थे। वे सदैव गरीबो, शोषितों के शुभचिंतक थे। तथा गमगीन

नेत्रों की तलाश में रहते थे, कि किस तरह से में उनकी सहायता करुँ।

लोहिया जी के विचारों में जाति-वाद, साम्प्रदायिक सकीर्णता और ऐार्मिक उन्माद जैसे अवगुणों को नष्ट करना चाहते थे। उनके विचार समग्र, अखण्डता, मित्रता और समाजवादों के प्रतिमाना पर टिका हुआ है।

लोहिया जी के विचारों में "लोकतन्त्र तभी तक लोकतन्त्र रहेगा, जब तक उसका आधार मानवतावादी रहेगा, अन्यथा लोकतन्त्र की आड़ में सामन्तवाद, राजतन्त्र, पूँजीवाद आदि समाज तथा मानवता की विरोधी शक्तियाँ निरन्तर पनपती रहेगी।

लोहिया एक सत्यग्राही के रूप में :-

लोहिया का अपने आप में बहादुर ओर पराक्रमी व्यक्तित्व था जो भारत की राजनीति में बिरले ही होगे, वे शरीर ओर मन दोनो से जीवंत्ता की श्रेणी में रखे गये थे। वास्तव में लोहिया उत्कृष्ट और अनुपम स्वधीनता अन्दोलन के जनक माने जाते थे, उन्होने हमेशा भारतीय स्वधीनता आन्दोलन में अपने जीवन को उत्कृष्ट ओर लगनशील बनाया तथा आजादी के पूर्व जितने आन्दोलन हुये उन सब में लोहिया ने अपने आप को समर्पित किया।

स्वाधीनता आंदोलन में लोहिया उन सौभाग्यशाली राजनीतिज्ञों में से नहीं थे जिन्हें जेलों में कई तरह की सुविधायें प्राप्त थीं। लोहिया के साथ सुविधायें तो बहुत दूर की बात थी, उनके साथ जिस प्रकार की कूरतापूर्ण अमानुषिक व्यवहार किया गया जिस प्रकार की यातनायें उन्हें दी गई, खासतौर पर 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में गिरफ्तारी के बाद लाहौर के कुख्यात किले में, उन सभी को सहनकर जिंदा रहना लोहिया के बस की ही बात थी। गोवा की स्वतन्त्रता की मशाल जलाने पंजिम की आमसभा में पुलिस अधिकारी की सीने पर तनी पिस्तौल को हाथ से झुका

देना।[30] लोहिया जैसे साहसी वीर का ही कार्य हो सकता था। लोहिया निडरता ओर निर्भीकता की प्रतिमूर्ती थे। अवज्ञा का भाव उनमें सहज था। वो दुनिया की कितनी भी बड़ी ताकत की अवहेलना करने का साहस रखते थे। सत्ता के लिए मानो चुनौती थे। लगता था जैसे जेल उनका दुसरा घर था। तभी आजादी के लिए जेलजाने से ज्यादा वो आजाद हिन्दूस्तान में जेल गये। अंग्रेजी, पुर्तगाली और कांग्रेसी सरकारों ने कुल मिला कर अठारह बार लोहेया को गिरफ्तार किया। लेकिन अदालत द्वारा उन्हें सजा सिर्फ दो बार मिली। एक बार अंग्रेजी अदालत द्वारा 1940 में ओर कांग्रेसी सरकार की अदालत द्वारा 1949 में। इस प्रकार देश के प्रमुख राजनेताओं में लोहिया को जितनी बार गैर कानूनी कैद भुगतनी पड़ी उतनी किसी ओर को नहीं।[31] गोवा,नेपाल,मणिपुर,मैसूर,पटना,दिल्ली,लखनऊ और आगरा जैसी विभिन्न जेलों को उन्होने देश की समस्याओं से जुड़े सवालों पर तो कहीं मनुष्य की प्रतिष्ठा के लिए, अपनी चरणधूलि से पवित्र किया था।

लोहिया जीवन में कई बार जेल गये ओर अंग्रेजी हुकुमत ने उनका शोषण किया परन्तु वो कभी निराश नही हुये क्योकि उनके जीवन के शब्द कोष में हताश ओर निराश नामक शव्द नही था, वो वास्तव में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के एक सही सत्याग्रही थे।

राजनैतिक शिक्षक :-

डा0 राममनोहर लोहिया एक सबसे बड़े आन्दोलन कर्ता के रूप में जाने जाते थें वो अन्य आन्दोलनकारियों के लिये एक मार्ग दर्शक ओर शिक्षक का कार्य करते थे, तथा समस्त राज नेताओं को एक छोटे भाई की तरह उनके साथ आचरण ओर व्यवहार करते थे तथा भारतीय राजनीति को गतिशील बनाने के लिए उनको ऊर्जामयी बनाकर समय-समय पर प्रोत्साहित करते थे।

लोहिया आजाद हिन्दुस्तान के सबसे बड़े आंदोलनकर्ता के रूप में उभर कर सामने आये। आजादी के पूर्व जिस प्रकार गाँधी ने लोगों को अंग्रेजी हुकुमत के खिलाफ जाने का कार्य किया रचना ओर संघर्ष के माध्यम से। लगभग उसी तर्ज पर लोहिया ने आजादी के बाद जनता को जगाने को कार्य अपनी मृत्यु पर्यन्त लगातार किया है। सप्त क्रांति के लिए आगे बढ़ो, गरीबी मिटाओ, भू-सेना, अन्नसेना, साक्षरता सेना बनाओ, उपजाऊ जमीन को मुफ्त में पानी दो, जाति तोड़ो, दाम बांधो, खर्च पर सीमा लगाओ, अंग्रेजी हटाओं, हिमालय बचाओ और हिंद पाक महासंघ बनाओ जैसे आंदोलन खड़े किये। गोखले, तिलक और गाँधी की श्रेणी में लोहिया ने जनता के बीच राजनैतिक शिक्षण का जो जबर्रदसत कार्य किया है, वह अतुलनीय है। यह लोहिया के लगातार शिक्षण का कार्य ही है, कि हिन्दुस्तान की मध्य श्रेणियों की जातियों से आज एक नया-राजनैतिक नेतृत्व देश में उभर कर सामने आया है। फलस्वरूप राजनैतिक जड़ता का दौर खत्म हो रहा है। जड़ता की समाप्ति प्रगति की पहली निशानी होती है। लोहिया ने हमेशा राजनैतिक नेतृत्व के साथ-साथ समाजिक दिशा और दशाा पर भी चिन्तन किया। उनके विचार हमेशा भारतीय समाज के लिए समर्पित रहते थे, उन्होने अपने से छोटे राजनेताओं की राजनैतिक और सामाजिक मूल दिये, जिससे समाज ओर राष्ट्र आदर्श परम्परा को स्थापित कर सकें।

लोकसभा अध्यक्ष रविराय, भूतपूर्व ओर वर्तमान प्रधानमंत्री, मंत्री तथा श्री चन्द्रशेखर-शरद यादव, रामविलास पासवान, हुकुमदेवनारायण यादव, जार्जफनांडिस, जनेश्वर मिश्र, सत्य प्रकाश मालवीय, मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव आदि सत्ता और विपक्ष में फैले कई राजनेता लोहिया प्रणीत आंदोलनों में पले, पढ़े ओर बड़े हुये हैं- जो आज देश ओर विभिन्न प्रांतो में नेतृत्व संभाले हुये हैं।

सुसंस्कृत मानस :-

लोहिया एक संस्कृति और सभ्यता के जनक थे वो एक उच्च कोटि के कर्मयोगी एवं राजयोगी थे। उन्होने उन लोगों को जगाया जिनके मन ओर मस्तिष्क निष्क्रिय हो चुके थे, पूरे समाज में एंकाकी पन आ रहा था, उन्होंने पीढ़ी को एक सामाजिक चेतना की ओर मोड़ा और उन्होने भारतीय मस्तिष्क में एक ऐसी ऊर्जा पैदा की जिससे सारा जन मानस अचेतना से चेतना की ओर मुड़े। लोहिया जी को प्रत्येक वाक्तव्य में अटलता ओर निश्चलता थी। आत्म कल्याण की बात के साथ-साथ जन सामान्य का भी कल्यण चाहते थे, उन्होने कभी किसी प्रकार के ऐसे वक्तव्य नही दिये जो प्रतिभाहीन ओर असमान्य हो जिससे भारतीय संस्कृति ओर सभ्यता और संस्कृति का हनून हो

लोहिया जहाँ अपने विचारों में समग्रता के सर्वान्गीणता के पक्षधर थे, वहीं उनका व्यक्तित्व अनेकांगि था। असमान्य प्रतिभावान, अखण्ड, कर्मयोगी, मौलिक बुद्धिमता के तत्वज्ञ, प्रखर राष्ट्रवादी, जन्मजात विद्रोही, समाजवादी विचारक ओर विशाल हृदय के विश्व नागरिक वे एक ही समय में थे। लोहिया को भारतीय संस्कृति से न केवल अगाध प्रेम था, बल्कि देश की आत्मा को उन जैसा हृदयगम करने का दूसरा नमूना भी नहीं मिलेगा। देश का शायद ही कोई कोना होगा जहाँ लोहिया के पाँव न पड़े हों। देश की नदियाँ, पहाड़, लोक भाषा, पोशाक, भोजन, समाज, इतिहास, पुराणकथायें, दर्शन किवदंत्तियां, कलाऐं- सक्षेप में-भारत के संपूर्ण व्यक्ति से जैसा साक्षात्कार लोहिया ने किया वैसा निश्चय ही इस युग के किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं। इस व्यक्ति की विकृतियों ओर कुत्साओं ने लोहिया को पीड़ित किया वहीं उसकी सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि ओर उड़ान ने लोहिया को मोहित किया।[32] लोहिया जातिप्रथा, वर्णाश्रम व्यवस्था, धर्म ओर ईश्वर नहीं मानते थे। लेकिन फिर भी लोहिया हिन्दुस्तान के पौराणिक नाम-राम, कृष्ण ओर शिव के प्रति आकर्षित थे, हिन्दुस्तान

की नदियों- गंगा, यमुना, सरयू, हिन्दुस्तान की नारियो सावित्री ओर द्रोपदी, हिन्दुस्तान के तीर्थ लुम्बनी, कुशीनगर, द्वारिका, प्रयाग, रामेश्वरम, अयोध्या, बनारस और अजमेर आदि से एक विचित्र किस्म का भावात्मक लगाव रखते थे। उन्होनें इन सबके बारे में खुद समझकर दूसरों को अपने लालित्यपूर्ण निबंधों के जरिए समझाने का प्रयास किया है। उन्होनें लिखा है-मैं चाहे भगवान को न मानूं, लेकिन कई कलात्मक कल्पनाऐं है, जिन्होने मुझे लुभाया है। यदि हेमलेट ओर जुलिएट लुभा सकते हैं तो मुझे ऐसा कारण नहीं दिखता कि इुसेन ओर ईसा न लुभावें। इसी तरह राम, कृष्ण ओर शिव की कल्पना ने भी मुझे लुभाया है।[33] तभी भारत माता से लोहिया माँग करने लगे "हे भारत माता हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कर्म और वचन दो। हमें असीम मस्तिष्क ओर उन्मुक्त हृदय के साथ जीवन की मर्यादा से रचों"।[34] भारत के तीर्थ क्षेत्रों में, नदियों में, घाटों में, मंदिरों में फैल रही गंदगी, अव्यवस्था और उसके प्रति दुर्भाग्यपूर्ण उपेक्षा से लोहिया चिंतित थे। "बेशरम, बंद करो यह अपवित्रता" और फिर पूछते "मुख्य बात यह है कि यह देश किसका हो ? तीस लाख का या चालीस करोड़ का"।[35] चित्रकूट में उन्होने रामायण मेला का आयोजन कराया जो सांस्कृतिक दृष्टि से आनंद की सृष्टि का जनता के लिए साधन बना।[36]

इस प्रकार विराट सांस्कृतिक दृष्टि से युक्त रसिक, कला प्रेमी राजनीतिज्ञ लोहिया लगता है- एक मात्र ही है। चित्रपट, नाट्य, सगींत, नृत्य ओर चित्रकला जैसी ललित कलाओं में उनकी रूचि थी ओर जानकारी भी थी। अपने अमरीकी प्रवास में, सन् 1951 में-बर्कले में लोहिया नाइट क्लब में भी गये जहाँ उन्होने ब्लैक्स नाच देखा जो उन्हें बहुत पंसद आया। उन्होने कहा "नारी से अधिक सुन्दर कुछ नहीं होता है ओर इसमें शक नहीं कि बलैक्स में नारी का रूप सबसे अधिक व्यक्त होता है"।[37] लोहिया विख्यात सिने अभिनेत्री ग्रेटागार्वो से बहुत

प्रभावित थे।[38] वो मानते थे कि दुनिया में दो प्राप्तव्य हैं। ईश्वर ओर स्त्री। "ईश्वर पर मेरा विश्वास नहीं जबकि औरत मुझे मिली नहीं"।[39]

लोहिया ने प्राचीन पुराणिक-कथायें, गथायें, साहित्य, ज्योतिष. विद्या, नक्षत्र एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन किया, उनके विचार मौलिक थे। उन्होंने खजुराहो, अजन्ता और महाबलीपुरम् में उनके शिष्य थे, जो उनके अति प्रेमी थे। इतिहास से उनको विशेष लगाव था। इतिहास उनका प्रिय विषय था ओर ऐतिहासिक साक्ष्य प्रमाण वक्तव्य टिप्पणियाँ तथा ऐतिहासिक घोषणायें उनके जीवन को अनुमोदित करती थीं।

लोहिया जी साहित्य प्रेमी के साथ-साथ एक अच्छे इतिहासविद् ओर शिक्षाविद् भी थे। क्योकि उन्होने अपने राजनैतिक जीवन में भारतीय ऐतिहासिक साक्ष्य के साथ-साथ पाश्चात्य साक्ष्य का भी गहन अध्ययन किया।

लेखक ओर साहित्यिक दृष्टिकोण :-

लोहिया को कई भाषा का ज्ञान था। ये ज्ञान उन्होंने स्वअध्ययन ओर चिंतन कर के प्राप्त किया था, उन्होने भारत के उच्चकोटि के साहित्यकार, दार्शनिक, चिंतक तथा विचारको का अपने जीवन में जोड़ा जो उनके लिए एक विशिष्टता और नवीनता की ओर ले जाता है। उनकी प्रवृतियों में साहित्यक चेतना ओर विचार धारा समाहित थी, उनके विचारो में साहित्य और धर्म समाये हुयें थे। उनमें भारत के प्रत्येक नागरिक से प्रेम करते थे, कही किसी में कोई जातिय घृणा और द्वेष नही था, हिन्दु ओर मुस्लिम वो सभी को चाहते थे। लोहिया आधा दर्जन भाषायें धारा प्रवाह बोल सकते थे। उनमें हिन्दी, अग्रेंजी, जर्मनी, बगंला आदि शामिल हैं। जर्मन प्रशिक्षण ने उनके मानसिक झुकाव को एक दिशा ओर बल प्रदान किया। उनमें जर्मनी के लोगों की सपूर्णता थी लेकिन भारीपन नहीं। लेखक के रुप में लोहिया बेजोड हैं, और

संपादक के रूप में कठोर। हिन्दी ओर अंग्रेजी दोनों में वे प्रभावशाली वक्ता ओर लेखक थे। उनकी शैली में किसी तरह की अस्वाभाविकता नहीं थी, शब्दों, जैसे मजिस्टर, लाटफारन, आगेदेखू आदि का प्रयोग उन्होने प्रभावशाली ओर मोहक ढंग से किया है, मुहावरों का चयन मनोहर और आश्चर्य भरा होता है। भारत की नदियों, राम कृष्ण शिव, सावित्री द्रोपदी, वशिष्ट, विश्वमित्र जैसे विषयों पर उनके निबंध एक बार पढ़ने की रचनायें नहीं बल्कि बार-बार पढ़ने पर भी अतृप्त आंनद की अनुभूति प्रदान करने वाली अमर रचनायें है। प्रख्यात कवियत्री और लेखिका महादेवी वर्मा ने लोहिया के लेखन की प्रशंसा करते हुये लिखा "लोहिया के कथन की विशेषता यह है कि उनका पाठक पढ़ने के उपरान्त एक नवीन दृष्टि पा लेता है। वह अपने राष्ट्र को गिराने वाली प्रवृत्तियों को जान लेता है तथा उसे उदात्त बनाने वाले मूल्यों को आत्मसात कर लेता है।[40]

तेजस्वी राजपुरूष :-

भारतीय राजनीति के क्षितिज पर डा0 राममनोहर लोहिया एक बेजोड़ मौलिक, चिन्तक, युगप्रर्वतक, युग दृष्टा, सतरंगी गुणो वाले चमकते दमकते नक्षत्र थे। जो अल्प अवधि के लिये भारतीय राजनीति के नीले गगन पर उदय हुये, चमके और अस्त हो गये।

परन्तु मेरे जैसे हजारों लोगो वे दिल, जहन और नजर पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये।

"शहरे दिल आह अजब जाम थी, पर उनके गये।
ऐसा उजड़ा कि किसी तरह बसाया न गया।
अभो तो उसने पास ही बिठाया था कि बिना अलाप।
और तराना शुरू हुये वह मेरी महफिल से उठ गया।

वास्तव में गाँधी युग की इति थी। उसके पश्चात उनके युग का श्रीगणेश होता है, पर लोहिया युग की उम्र कुछ वर्षो ही निकली। वे एक निडर मुजाहिद-ए-अजादी थे।

लेकिन लोहिया अपने व्यक्तिकत्व के सर्वाधिक तेजोमय, पौरुष और प्रहारक स्वरूप में प्रगट होते हैं- एक राजपुरूष के रूप में । उन जैसा जीवन का राजनेता, आंदोलनकारी, संघर्षशील, क्रांतदृष्टि, क्रांतिकारी, निंतर जनता के बीच अलख जगाने वाला, शासन ओर अनके हुक्मरानों की नीदं हराम करने वाला-निर्द्रनद, निर्भीक और निडर-निस्वार्थ इसीलिए सदैव अपराजेय-ऐसा व्यक्तित्व, जिसकी कोई सानी नहीं हैं। लोहिया जिन्होने किसी विशेष वर्ग या गुट की नह भारत में न अन्तर्राष्ट्रय क्षेत्र में कभी कोई वकालत नही की। उनका एक मात्र स्थायी हित था दुखी मानवता का उद्धार। यही कारण था कि उन्हें किसी गुट ने अपना नहीं माना। वो असल में न्याय ओर सचाई के प्रबल पक्षधर थे और हर घटना को उसकी मेरिट के आधार पर आंकते थें। इसलिए वो ''अनप्रिडिक्टेविल'' थे।[41]

लोहिया जहाँ जीवन भर समता के लिए अन्याय, विषमता के शमन के लिए अहिंसा, सिविलनाफरमानी ओर लोकतंत्र की प्रतिष्ठा के लिए जीवनभर संघर्ष करते रहे, वहीं अपने ही साथयों द्वारा, विरोधियों द्वारा लगातार विषवमन, उपहास ओर उपेक्षा के प्रहारों से छलनी किए जाते रहे। अपने ऊपर जारी लगातार हो रहे चौतरफा हमलों से स्तंभित लोहिया व्यथित होकर व्यक्त करते थे। मुझे कभी-कभी ताजुब्ब होता है कि इस तरह निराधार अभियोग एक ही आदमी के विरूद्ध क्यों लगाये जाते हैं ? फिर खुद ही प्रश्न का सही उत्तर देते हुये लिखते हैं ''मेरे ऊपर दोष लगाने वालों की ताकत यही है कि वे भारतीय शासक वर्ग के ख्यालों के साथ हैं ओर में बिल्कुल विरूद्ध। इसके अलावा मैने भारतीय समाज की पुरानी बुनियादों के खिलाफ पूरी आवाज उठाई है और उन पर हमला किया है, जिसका नतीजा है कि

मुझे देश की सभी स्थिर स्वार्थवाली ओर प्रभावशाली शक्तियों के क्रोध का शिकार बनना पड़ा है।"[42] इसका समर्थन करते हुये-प्रसिद्ध साप्ताहिक धर्मयुग के भूतपूर्व यशस्वी संपादक और साहित्यकार डा0 धर्मवीर भारती ने लिखा है "उनके बेबाक चिंतन के आइने में हर अंग्रेजी परस्त को अपने मुखौटे का भौड़ापन दीखता था, इसलिए वह चिढ़कर उस आइने पर कीचड़ फेंकता था।[43]

वस्तुतः लोहिया ने अपने विचार ओर कर्म के जरिए, कबीर की माफिक, यथस्थितिवाद के पोषक तत्वों को हैरत में डाला है। उनके क्रांतिकारी विचारों के आग की तपिश में उनके विरोधी बिलबिलाते ओर साथी जलते हुये नजर आते हैं।

उनके निकट के साथी और मित्र जयप्रकाश नारायण ने लोहिया के इस तेजस्वी रूप और उनके प्रति लोगों द्वारा बरते असामान्य व्यवहार की वास्ताविकता स्वीकार करते हुये, लिखा "राममनोहर लोहिया को उनके समकालिक ने बहुत ही विपर्यस्त रूप में समझा। बहुदा उनके विचार इतने मौलिक थे कि पूर्णरूपेण उन विचारों उन को ग्रहण करना कठिन विचार इतने मौलिक थे कि पूर्णरूपेण उने विचारों को ग्रहण करना कठिन हुआ हो। उनकी स्पष्टवादिता के कारण भी कई लोग नाराज थे।[44]

सन् 1954 में लोहिया ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री पद की हैसियत से अपनी ही पार्टी के ट्रावनकोर-कोचीन के मुख्यमंत्री पत्तुमधनु पिल्ले को, आन्दोलनकारियों पर पुलिस-गोलीबारी को दोषी ठहराते हुये, स्तीफा देने की सलाह देकर सभी को चकित कर दिया। बाद में इस मुद्दे पर पार्टी में उटे विवाद पर अध्यक्ष आचार्य कृपलानी ने लोहिया के बारे में कहा "डा0 लोहिया गाँधी जी के सिद्धांत का विस्तार चाहते हैं।[45] लेकिन फिर संभवतः दबी खीझ को प्रगट करते हुये बोले "हम लोगों के बीच एक नयी प्रतिभा का उदय हुआ है, लेकिन इसकी भी एक सीमा होना चाहिए।[46] जबकि लोहिया के अनुसार "गोलीबारी का मुद्दा बुनियादी है।

सभी राजनैतिक दलों द्वारा इसका समाधान ढूढां जाना चाहिए"।[47]

इस प्रकार लोहिया के साथ यह ट्रेजडी रहो कि उनके विचारों को एक सिद्धांत के रूप में नकारने की हिम्मत कोई नही कर सका लेकिन उसी सिंद्धात को जहाँ लागू करने का सवाल उठा उन्होने लोहिया को ही किनारा करने की कोशिशें कीं।

डा0 राममनोहर लोहिया का स्थान एक ऐतिहासिक पुरूष के रूप में हमेशा ऊँचा रहेगा वो सदियों तक भारतीय राजनीति के एक आदर्श कार्य कर्ता के रूप में जाने जायेगे उनकी ईमानदारी सच्चायी और त्याग वास्तव में अनुकरणीय रहेगा, लोहिया जी को हमेशा लोग एक आदर्श गाँधी वादी विचार धारा के सूत्रधार माने जाते रहेगें। उन्होंने देश के कोने-कोने में अजादी का बिगुल बजाया।

बौद्धिक अहं :-

असल में लेहिया के समाजवादी साथियों में से कुछ एक लोहिया के बौद्धिक अंह से पीड़ित थे। लोहिया और जयप्रकाश के निकट सहयोगी सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी के अनुसार"वे अपने विचारोत्तेजक कल्पनाओं के कैदी थे, और उन मामलों मे वे किसी के सामने झुकने को तैयार नहीं थे। इस प्रकार उनमें एक बौद्धिक उहं विकसित हो गया था। वे प्रबल पसंदगी और नापसन्दगी वाले व्यक्ति थे"।[48] इन्हीं द्विवेदी जी के एक पत्र के उत्तर में जयप्रकाश ने लिखा था "लोहिया के जो कुछ भी विचार हों, उनके अनेक विचार गलत हैं। उनकी कार्य विधि से संगठन जरूर टूट रहा है। वे विचारों की जगह व्यक्तित्व पर हमला करते हैं, नीयत को प्रश्न उठाते हैं और अपने साथियों को हिराकत की नजर से देखते हैं। वस्तुः यह प्रसंग उन दिनों का है, जब सन् 1953 में श्री नेहरू ने प्रजा समाजवादी दल के साथ संगठन और सरकार में सहयोग का प्रस्ताव फेंक कर उस समय के प्रभावी विरोधी दल को

दिग्भ्रमित और मोथरा करने का प्रयास किया था। उस समय लोहिया ओर जयप्रकाश के बीच तीव्र मतभेद उभर कर साम्ने आये थे, क्योंकि लोहिया को लग रहा था कि जयप्रकाश नेहरू की बातों में आ रहे थे। मधुलिमये के अनुसार लोहिया जयप्रकाश मतभेद का प्रमुख कारण कांग्रेस संबंधी दृष्टिकोण था,

पद से विमोह :-

लोहिया एक नेता दोस्त और पथ प्रर्दशक थे परन्तु उन्हे किसी पद से मोह नही था वो अभिमन्यु की तरह जीवन भर लड़ते रहे उनके हृदय में पद लालसा लेस मात्र भी नही थी। मामूली से मामूली राजनीतिक नीतियों की विशिष्ट महत्व देते थे लोहिया जानते थे, नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़ना चट्टान से सिर फोडना है- लेकिन यह समझ लेने के वाद भी भारत का भविष्य कांग्रेस से दिस्तार पाने में ही है- और कांग्रेस से विस्तार पाने के लिए पहले नेहरू की मूर्ति का भंजन जरूरी है। तो फिर नेहरू की मूर्ति का भंजन तो तभी हो सकता है, जब उस चट्टान में दरार पड़े। डाक्टर लोहिया चुनाव में तो जरूर हारे लेकिन चट्टान में दरार डालकर। जहाँ तक पद ग्रहण करने का सवाल था, लोहिया ने स्वीकार किया कि उसके प्रति उनके मन में उपेक्षा का भाव था।[49] हांलाकि आजादी मिलने के बाद ही लोहिया द्वारा सूचना प्रसारण मंत्रालय की गाँधी से शिकायत करने पर, गाँधी ने लोड़िया से पूछा था; ''क्या तुम इस मंत्रालय को नहीं चला सकते ? तुम तो जिम्मेदारी से भागते हो। ''लोहिया ने उत्तर दिया कि जव उन्हें ऐसा लगे कि सवसे अच्छे लोग कांग्रेस नेता नहीं है तब उन्हे जिम्मेदारी स्वीकार होगी। गाँधी ने फिर पूछा ''क्या मैं यह घोषणा करूँ कि तुम नेहरू से ज्यादा अच्छे हो ? तो लोहिया ने आत्मविश्वास के साथ स्पष्ट तौर पर दृढ़ता से कहा ''ऐसी घोषणा आप करें तो हर्ज की बात न होगी। हां इसके विपरीत आपके पास यदि कारण हो तो कहें।''[50]

लेकिन लोहिया जातते थे कि समाजवादी दल में जयप्रकाश नारायण साथियों और जनता में ज्यादा स्वीकार्य है। इसीलिये उन्होनें लिखा ''मैं चाहूंगा कि भारत की जनता श्री नेहरू को अपने पद से मुक्त कर दे ओर समाजवाद को वोट देकर श्री जयप्रकाश नारायण को उनकी जगह पद स्थापित कर दे।[51]

लोहिया को जयप्रकाश पर काफी भरोसा था। और जो लोग दोनों के बीच पद था, लोकप्रियता को लेकर विवाद खड़ा करने की कोशिश करते हैं, उनको मुँह तोड़ जबाव देते हुये दिनांक 30 मार्च 1954 को जयप्रकाश के नाम अपने पत्र में लोहिया ने लिखा- ''अब मेरी समझ में फिर देश और पार्टी को हिलाने का समय आ रहा है। जैसा तुम हिला सकते हो वैसा और कोई नहीं हिला सकता । हां हिलाने वाला खुद न हिले।[52] लोहिया के इस आहवान की पुकार जयप्रकाश ने सुनी, बहुत वर्षो बाद 1974 में, आपातकाल के विरूद्ध जब उन्होंने ''दूसरी आजादी'' की स्थापना के लिए जन आंदोलन का नेतृत्व कर 1977 में जनता पार्टी की सरकार केन्द्र में स्थापित कराई। इस प्रकार लोहिया के उनके प्रति विश्वास की रक्षा की।

अपने बारे में लोहिया अक्सर कहते थे ''मैं नीति का आदमी हूँ। समन्वय का यानि की विविध भारती का आदमी नहीं हूँ। जो विविध भारती का आदमी होगा वह राजा बनेगा।[53] इस प्रकार लोहिया पद मोह से सदैव मुक्त रहे ओर उन पर पद को लेकर किसी के खिलाफ मुहिम का आरोप तथ्यों पर आधारित नहीं है।

लोहिया ओर नेहरू के सम्बन्ध :-

लोहिया गाँधी ओर नेहरू की विचार धारायें एक दूसरे के विपरीत थी नेहरू का व्यक्तित्व विलासिता से परिपूर्ण था जबकि लोहिया जी की दिनचर्या में सादगी ओर गरीबी थी कही किसी प्रकार का वनावटीपन व खोखला पन नजर नही

आता था। उनका जीवन हमेशा बसुदैव कुटुम्बकम की भावना पर केन्द्रीभूत था। लोहिया हमेशा अहिंसा वादी थे ओर भारतीय राजनीति को प्रजातान्त्रिक मूल्यो पर केन्द्रीत करना चाहते थे।

लोहिया के खिलाफ व्यक्ति सन्दर्भ में अक्सर यह आरोप भी लगाया जाता रहा है, कि वो श्री नेहरू के अधं विरोधी थे। अमरिका से प्रकाशित ''टाइम'' साप्ताहिक ने नेहरू जी की मृत्यु के बाद फूलपुर में हुये उपचुनाव में विजयलक्ष्मी पंडित के विरूद्ध संसोपा के उम्मीदवार के चुनाव प्रचार के तरीकों पर आक्षेप लगाते हुये - 4/12/64 अंक मे लोहिया को ओझा, अवसरवादी, प्रतिहिंसक सिद्धांतो के उच्च आदर्शों से परिपूर्ण न होकर नेहरू परिवार के प्रति निजी द्वेष से प्रेरित, निरुपित किया।[54] लोहिया ने इसके खिलाफ मानहानि का दावा ठोक कर दिल्ली की अदालत में प्रतीक के रूप में दस पैसे हर्जाने के रूप में दिलाये जाने की मांग की।[55] इसके बाद भी प्रेस द्वारा खासतौर पर अंग्रेजी प्रेस द्वारा लोहिया पर नेहरू विरोधी होने का ठप्पा लगातार लगाया जाता रहा और भारत की अंग्रेजी पढी जनता ने, बिना जांच पड़ताल ओर खोजबीन के, इसे एक तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया। नेहरू ने स्वयं अपने भाषणों मे यह कह कर कि लोहिया मेरे दादा को चपरासी कहते हैं, इस बात को उछाला ओर प्रचालित कराया।[56] बाद में लोहिया के संसद में प्रवेश के बाद श्री नेहरू ओर उनके साथियों ने इस लकीर को, हर संभव मौके पर, लगातार पीटा।[57]

वास्तविकता यह है कि लोहिया ने अपना राजनैतिक जीवन श्री नेहरू के अनुयायी के रूप में प्रारंभ किया था। उन्होनें स्वयं स्वीकार किया है ''मेरी पाढ़ी के लोगों के लिए गाँधी कल्पना थे, जवाहरलाल जी कामना और नेताजी सुभाष कार्य''।[58] श्री नेहरू ने यूरोप पलट लोगों के प्रति सहज आकर्षण पैदा होता था। अतः लोहिया ने भी कुछ यूरोप पलट होने के नाते कुछ अपनी बुद्धि और मेघा के

कारण नेहरू को आकर्षित किया। फलस्वरूप नेता-अनुयायी का संबंध आगे चलकर घनिष्ठ सहयोगी के रूप में परवान चढ़ा।

श्री नेहरू ने लोहिया को "उगता हुआ सूरज" कहकर 1935 में लखनऊ काग्रेंस अधिवेशन में राष्ट्र विभाग के मंत्री पद पर नियुक्त किया। और लोहिया इस पद पर कार्य करते समय श्री नेहरू के इलाहाबाद स्थित मकान स्वराज्य भवन में ही रहे। लेकिन 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन शुरू होने के पहले की अवधि में नेहरू के बारे में लोहिया का मोह भंग द्वितीय विश्व युद्ध के समय काग्रेंस की युद्ध नीति को लेकर खासतौर पर नेहरू द्वारा अंग्रेजों की पुरजोर बकालात करने के वक्त से प्रारंभ हुआ जो लगातार आगे के वर्षो में बढता चला गया।[59] लोहिया की असमाप्त जीवनी के लेखक ओमप्रकाश दीपक के अनुसार "मै समझता हूँ नेहरू द्वारा 1942 के विद्रोह में समाजवादियों के कार्यो का समर्थन और विद्रोह का श्रेय लेने की चेष्टा भी लोहिया को नेहरू से दूर ले होगी।[60] बावजूद दोनों के बीच पनपते मतभेदों के नेहरू ने लोहिया को 1947 में कांग्रेस कार्य समिति में विशेष रूप से आमंत्रित किया।[61] प्रारंभ में लोहिया राज्य के निर्माण ओर परिवर्तन के संगठन के निर्माण की खातिर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कांग्रेस से पृथक होने के विरोधी थे।[62] लेकिन जब पृथक हो जाने का निर्णय हो चुका तो पीछे मुड़कर देखने की नीति उन्हें सुहाती थीं। फिर वो पूरी ताकत से सोशलिस्ट पार्टी को एक विरोधी पार्टी के रूप में विकसित कर कॉंग्रेस को सत्ता से हटाने का संकल्प पूरा करने के प्रयासों के हामी थे। आजादी के बाद सरकार के कार्यो ने, गाँधी से विमुखता ने, भोगवाद के विकास ने भ्रष्टाचार और फिजूलखर्ची ने लोहिया को पूरी तौर पर नेहरू से निराश और नाराज कर दिया। और लोहिया ने पूरी ताकत के साथ इस भोगवाद-फिजूल खर्ची पर खासतौर पर उस समय जव देश की अधिकांश जनसंख्या भुखमरी के कगार पर थी, कड़े प्रहार करना प्रारम्भ किये। उन्होंने प्रधानमन्त्री के ठाठबाट, उनके

कालीन, कुत्ते और प्रतिदिन के खर्चों की परतें उघाड़ना शुरू की।

लोहिया उन समाजवादी में से थे, जिन्होंने समाजवाद का राष्ट्रीयकरण करके उसे अपने देश की परिस्थितीयों के अनुसार ढ़ाला था। नेहरू और लोहिया एक-दूसरे के विराधी थे, जैसे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव दोनों का राजनीतिक चिन्तन अलग-अलग था। एक समाजवाद की बात करता था, दूसरा भारत में मशीनीकरण की। अर्थात दोनों का आर्थिक अनुचिन्तन अलग-अलग था एक समाजवाद की बात करता था। दूसरा भारत में मशीनीकरण की। अर्थात दोनों का आर्थिक अनुचिन्तन अलग-अलग था एक राष्ट्र और समाज की सेवा की और दूसरा विकेन्द्रीकरण की ओर।

राजनैतिक भविष्य द्वारा :-

नेहरू गाँधी और लोहिया भारतीय राजनीतिं के पुरोधा माने जाते थे, परन्तु लोहिया आडम्वर और निष्क्रिय से दूर वो वास्तविक और यर्थाथ जीवन में विश्वास रखते थे। व्यवाहारिकता और प्रयोगात्मकता उनके जीवन में प्रमुख गुण थे अस्पष्टता ओर अर्थहीनता पर विश्वास नहीं करते थे वो हमेशा दुरदृष्टिता के सिद्धान्त पर लोगों को चलने का प्रयास करते थे।

लोहिया भविष्यवक्ता नहीं थे। न ही उन्हें ज्योतिष, तंत्र-मत्रं ओर सिंद्धियो आदि के प्रपंच मे विश्वास था। लोहिया ने खुले तौर पर जनेऊ, तिलक ओर चोटी जैसे प्रतीक आडंवर की मुखालफत की सदियों पुरानी उदासी ने उन्हें नाराज किया था। इसी उदासी और चुप्पी को तोड़ने लोहिया ने समाजवाद और विद्रोह के प्रति अपने को समर्पित कर दिया था।

लोहिया की वाणी अत्यन्त तीक्ष्ण थी। शब्द प्रजर होने के साथ तीखे होते थे। उनमें एक अजीब किस्म की मारक क्षमता थी, जो सीधे अपने निशाने पर

वार करती थी उसे आहत करके छोड़ती थी। अपनी मान्यताओं और आस्थाओं के प्रति अटूट आस्था के कारण लोहिया किसी को बख्शते नहीं थे। प्रहार करते समय भावनाओं का ध्यान नहीं रखते थे। और इसी कें कारण उनके कई दुश्मन बन जते थे। कवि रघुवीर सहाय की 30 दिसम्बर 1990 को हुई मृत्यु पर श्रद्धाजलि प्रगट करते हुए हिन्दुस्तान टाईम्स के सम्पादक ने अपने संपादकीय में लिखा ''जो लोहिया अपनी तीखी जुबान से ध्वस्त करते थें वही रघुवीर सहाय अपने पेन से करते थे। इसी के कारण दोनों के मित्रों की तुलना में दुश्मन ज्यादा थे।[63]

लोहिया उन लोगों को सहन नहीं कर पाते थे जो बड़ी-बड़ी बातों के पीछे अपनी-निष्क्रियता अथवा कि असलियत को छिपाने की कोशिश करते थे। उन्होंने व्यक्त किया ''अस्पष्टता और अर्थहीनता भारतीय चिंतन के विशिष्ट दोष हैं। हम लोग सदैव सिद्धान्त एवं दर्शन की बात करना पसंद करते हैं।[64] प्रसिद्ध युवा समाजवादी रघुठाकुर के अनुसार शायद इसीलिए लोहिया सिद्धांत के खूँटे की बात करते थे। वे जानते थें कि रणनीति लचोली और कई बार सिद्धांत की कसौटी पर शतप्रतिशत खरी न उतरनी वाली होती है-इसीलिए व्यवहारिकता और सिद्धांत का समन्वय इस प्रकार होना चाहिए ताकि व्यवहारिकता के नाम पर सिद्धांत का खूँटा न छूटे और सिद्धांत के नाम पर व्यवहारिकता लुप्त न हो जाये।[65] समाजवादियों से इसे त्याग देने की अपील की थी। उन्होने भूतपूर्व राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्र प्रसाद द्वारा राष्ट्रपति भवन में ब्राह्मणों के पैर धोने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये जिनके हाथ सबके सामने ब्राह्मणों के पैर धो सकते हैं उनके पैर शुद्रों हरिजन को ठोकर भी मार सकते हैं।[66] कहकर घटना की निन्दा की थी। उन्होने लोकसभा में कहा था ''जब तक हिन्दुस्तान का वैज्ञानिक पुरानी विधा का पढ़कर उसका अनादर करना नही सीखेगा तब तक नयी विधा का अविष्कार नहीं कर सकता''।[67]

लेकिन यहाँ हम लोहिया द्वारा की गई उन सटीक राजनैतिक

भविष्यवाणियों का उल्लेख करेगें जो या तो सच साबित हो चुकी है या होने जा रही है। ये भविष्यवाणियां सच्चाई को सिद्ध करती है कि लोहिया की समस्याओं पर उनके निदान पर पकड़ कितनी गहरी थी जो निश्चित ही उनके गहन अध्ययन और गहरी पैठ के निष्पक्षविश्लेषण का परिणाम था।

लोहिया ने देखा कि कॉंग्रेस प्रत्येक आम चुनाव के पहले कोई न कोई जनता को लुभाने वाली घोषणा करती थी। कभी समाजवाद लागू करने की, कभी सहकारी खेती आदि। 1967 में इसी का आधार पर उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि सरकार चुनाव के पूर्व अणु परीक्षण कर सकती है।[68] जो आगे चलकर सच साबित हुई। तब का पूर्वी पाकिस्तान और आज के बांगला देश के सन्दर्भ में लोहिया 1950 से ही वहाँ की जनता की लोकतांत्रिक आंकाक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत सरकार द्वारा सक्रिय सहयोग की वकालत करते थे-अन्त में उनके सोच का ठोस रूप उनकी मृत्यु के बाद आकार ले पाया। लोहिया लगातार सरकारी हिंसा के कारण समाज में फैला रहीं हिंसक वृत्ति के खतरों में आगाह करते थे। डाक्टर राम मनोहर लोहिया ने विषमतायें को समाप्त किया और समता को स्थापित किया। वो हमेशा समाजिक बुराई और वैमनुष्यता को समाप्त करना चाहते थे और नये युवाओं को स्थापित कर एक नये आदर्श और स्वध्याय समाज को स्थापना करना चाहते थे। उनके विचारों आचरण और अध्यक्षीय भाषण आम जनमानस के लिए प्रेरणा के स्त्रोत थे।

विश्व नागरिक :-

डा0 लोहिया एक नव समाजवादी व्यवस्था के प्रवक्ता बनकर जनमानस को आकृष्ट किया केवल भारतीय लोगों को नही बल्कि विश्व के समस्त नागरिकों को उनकी समाजवाद की सकल्पना भारतीय राजनीति के लिये एक ऊर्जा को स्त्रोत है। वे एक अच्छे मनीषी, चिन्तक ओर राजनेता थे। तथा उन्होनें विभिन्न तरीके से लोकतान्त्रिंक स्वरूप की व्याख्या की और भारतीय जनमानस को उन्मुक्त बनाने का

प्रयास किया। उनके विचारों में समाजिक सनचेतना वे सक्रांति की धारा हमेशा प्रवाहित होती रहती थी।

लोहिया सारे विश्व के चहते और लोहिया सच्चे अर्थो में विश्व नागरिक थे। भारतमाता को उन्होनें पृथ्वी माता के रूप में देखा ओर महसूस किया था। एकदफा बिना पासपोर्ट के उन्होंने स्वयं वर्मा की यात्रा कर भी डाली।[69] इसके साथ ही लोहिया ने चाहा था कि व्यक्ति को कहीं भी मरे और जहाँ मरे वहीं अतिंम संस्कार की आजादी होनी चाहिए। शवों को स्वदेश लाने की पृथा से उन्हें चिढ़ थी। लोहिया नर--नारी समानता के प्रबल पैरोकार थे ओर नारी के सम्मान ओर प्रतिष्ठा के सहज संरक्षक थी। लोहिया रूढ़ि भंजक थें। उनके लिए सावित्री की तुलना में द्रोपदी अधिक वंदनीय थी। अक्सर लोगों ने उनकी भूमिका की तुलना झाडूदार से की हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने उन्हें ''रूढ़ि भंजक, नकारवादी और एक गैर क्रांतिकारी समाज का क्रांतिकारी कहा।[70] उन्होंने इस देश के पिछड़े वर्गो को आगे आने के लिए और मार्गदर्शन दिया और अपनी पार्टी के सगटंन में उसको लागू भी किया।

वस्तुतः हिन्दुस्तान के दलितों, शूद्रों, पिछड़ों, मुसलमानों और औरतों के बारे में सोचने वालों में गाँधी के वाद दूसरा नाम लोहिया का ही उभरकर सामने आता है। लोहिया के प्रसिद्ध समाजवादी साथी मजदूर नेता जाजे फर्नाडिस के अनुसार सामाजिक गैर बराबरी दूर करने के लिए दो व्यक्तियों एक बाबा अम्बेडकर और दूसरे डा0 राममनोहर लोहिया ने सबसे ज्यादा सोचा है। उनका सोच रहा समाज के सभी तवकों को साथ लेकर चलना ओर चलते समय पिछड़ों को दलितों को विशेष अवसर देना। यही उनकी कल्पना थी।[71]

लोहिया के व्यक्तित्व ओर चरित्र में एक धारावाहिकता थी। वो जैसा सोचते वैसा ही करते थे। उन्होंने अपनी सुविधा अथवा स्वार्थ के लिए अपने द्वारा

बनाये सिद्धांत को न तो तोड़ा, न संशोधित किया। उनके भोले स्वभाव, सहृदय और उत्फुल्ल व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गाँधी जी ने लोहिया से कहा; मैं बहादुर हूँ, लेकिन ओर भी बहादुर हो सकते हैं; फिर हंसकर कहा शेर भी तो बहादुर हैं। उन्होने कहा कि मुझसे भी अधिक विद्वान लोग हैं, वकील भी तो विद्वान होता है। लेकिन मुझमें "शील" है, चरित्र की धारावाहिकता और यह गुण किसी दूसरे में नही है। मुझे लगता है मेरे प्रति उनके स्नेह और सूचनाओं की कमी के कारण उन्होंने मेरे बारे में गलत धारणा की हो। डा0 लोहिया का व्यक्तित्व व कृतित्व हमेशा विश्सवीय परिपेक्ष की ओर ले जाता है जिनके व्यक्तित्व में विभिन्न प्रकार की चमक क्रांति और आभा थी। कही किसी प्रकार का बनावटीपन ओर छल नही था। वे हमेशा समाजवाद की कल्पना करते थे समाजवाद ही उनके जीवन का धर्म और कर्म था।
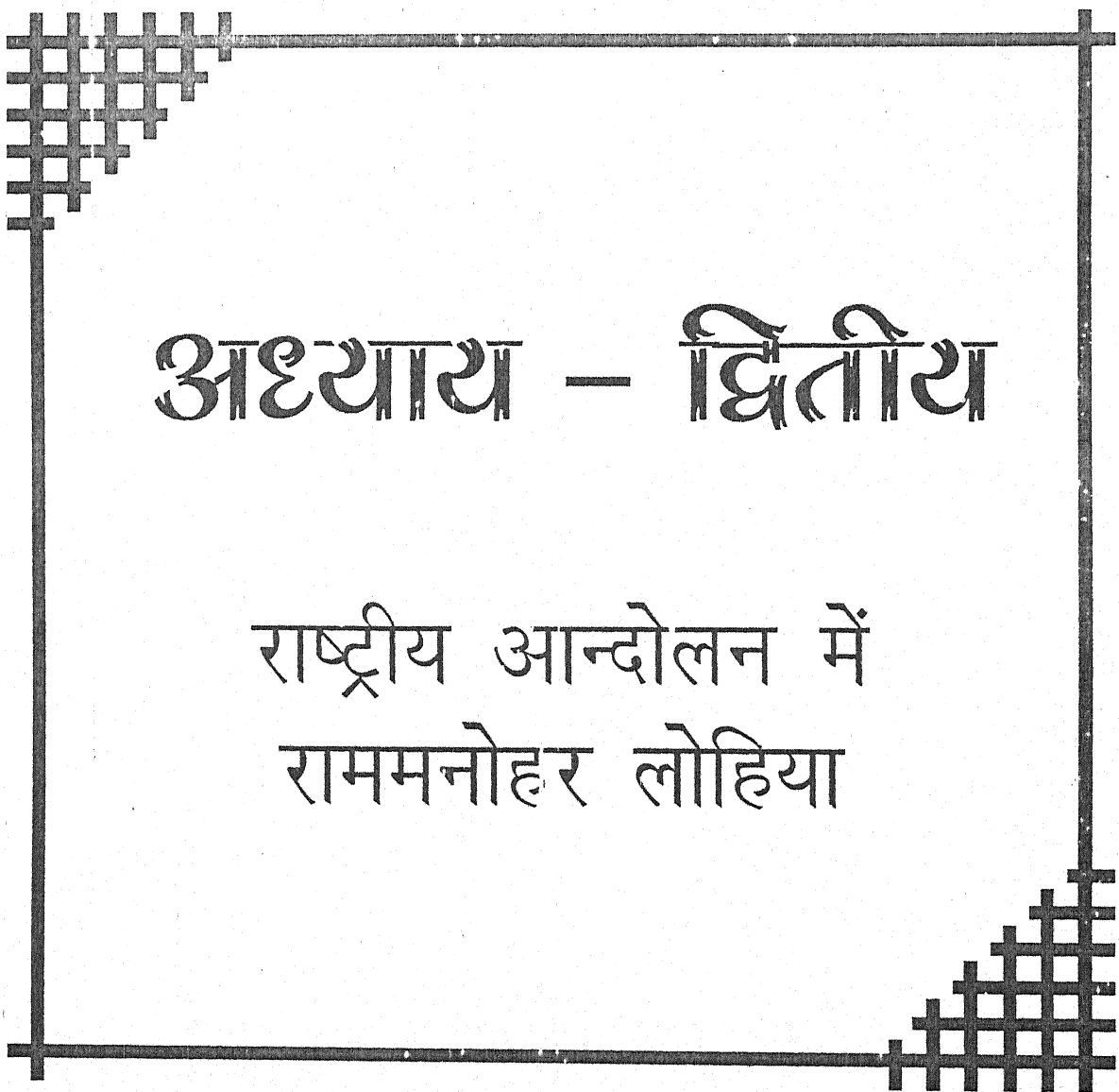
सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर, अवधूत लोहिया, प्रकाशक शिवानी बुक्स नई दिल्ली, संस्करण, 2006, पृ0 9
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही
12. वही
13. वही
14. राममनोहर लोहिया, Wheel of History, पृष्ठ सं0 13-15
15. राममनोहर लोहिया, Aspects of Socialist Policy, पृष्ठ सं0 76-77 (बम्बई 6 टुलचरोड, 1951)
16. राममनोहर लोहिया, Wheel of History, पृष्ठ सं0 37
17. राममनोहर लोहिया, Wheel of History, पृष्ठ सं0 51
18. राममनोहर लोहिया, Will to power and other writing, पृष्ठ सं0 132 (हैदराबाद नवहिन्द पब्लीकेशन, 1956)

19. राम मनोहर लोहिया पृष्ठ सं0 594 प्रकाशक लक्ष्मी नरायण अग्रवाल 2006, आगरा।

20. डा0 वी0पी0 वर्मा ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन पृष्ठ सं0 594 प्रकाशक लक्ष्मी नरायण अग्रवाल 2006 आगरा

21. डॉ0 ए0 अवस्थी, डॉ0 आर0के0 अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक एवं चिन्तन, पृ0सं0 416, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर

22. डॉ0 ए0 अवस्थी, डॉ0 आर0के0 अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक एवं चिन्तन, पृ0सं0 284, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर

23. वही, पृ0सं0 284

24. वही, पृ0सं0 285

25. वही, पृ0सं0 286

26. राजेन्द्र मोहन भटनागर, अवधूत लोहिया, पृ0 286

27. वही, पृ0 287

28. वही, पृ0 244

29. वही, पृ0 297

30. वही, पृ0 23-24

31. वही, पृ0 32-34

32. वही, पृ0 105

33. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 113

34. ओमप्रकाश दीपक, असमाप्तजीवनी, पृ0 35

35. लोहिया, रामकृष्ण शिव, लोहिया के विचार, पृ0 315

36. लोहिया, भारत की नदिया, लोहिया के विचार, पृ0 274

37. महादेवी वर्मा, लोहिया, बहुआयामी व्यक्तित्व, आमुख से

38. वही,

39. वहीं,

40. वहीं

41. कमला देवी चट्टोपाध्याय ने लोहिया पर अपने लेख में उन्हें "अनप्रिडिक्टेविल" कहा है। लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 111.

42. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 10

43. धर्मवीर भारती, लोहियाःबहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 13-16

44. इन्दुमति केलकर, लोहिया, आर्शीवाद से।

45. प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नागपुर विशेष अधिवेशन में अध्यक्ष आचार्य कृपलानी के संबोधन से। दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 28 नवंबर, 1954. समाजवादी आंदोलनः तनाव का दौर, पृ0 374.

46. वही

47. प्रसोपा के नागपुर विशेष अधिवेशन के अवसर पर आयोजित जनसभा में लोहिया के भाषण से। समाजवादी आंदोलनःतनाव का दौर, पृ0374.

48. सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, जय प्रकाश और लोहिया, प्रतिपक्ष, दिल्ली, अक्टूबर, 87, पृ0 46.

49. नेविल मैक्सवेल, आशावादी राजनीतिज्ञ, सामान्यजन, मार्च 90, पृ0 27.

50. दिनकर, संस्मरण और श्रद्धांजलियां, पटना, 1969, पृ0 173.

51. लोहिया, विल टू पावर, पृ0 131-134

52. समाजवादी आंदोलनः तनाव का दौर, पृ0 275.

53. लोहिया द्वारा 12 मई 1967 को त्रिवेन्द्रम में दिये भाषण से, लोकसभा में लोहिया भाग, 14, पृ0 495.

54. लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 409.

55. वही
56. रजनीकांत वर्मा. लोहिया, पृ0 100
57. लोकसभा वाद-विवाद, दिनांक 21.8.63, कां. 1873, 97 एवं दिनांक 22.8.63, कां. 2194
58. लोहिया भारत विभाजन के अपराधी, पृ0 83
59. जेड0ए0 अहमद, लोहिया:बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 226
60. ओम प्रकाश दीपक, असमाप्तजीवनी, पृ0 71
61. लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 409
62. समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, पृ0 34-35
63. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 16
64. वही
65. वही
66. लोकसभा में लोहिया ने कहा ''हमने यह भी सुना है कि महामृत्युत्र्जय का जाप-करवाया जाता है, ज्योतिषी लोगों से सलाह ली जाती है। यह अन्धविश्वास है। क्या ऐसे देश में विज्ञान बढ़ सकता है? लोकसभा में लोहिया, भाग 3, पृ0 25
67. लोहिया, वर्ण और योनि के कटघरे, लोहिया के विचार पृ0 140
68. लोकसभा में लोहिया, भाग 10, पृ0 144.
69. भोला चटर्जी, लोहिया, बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 177
70. जन, दिल्ली, नवम्बर, 1969, पृ0 15
71. जार्ज फर्नांडिस, समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, पृ0 22

अध्याय - द्वितीय

राष्ट्रीय आन्दोलन में राममनोहर लोहिया

राष्ट्रीय आंदोलन में राममनोहर लोहिया

डा0 लोहिया राजनीतिज्ञ ही नहीं राजनीति के चिन्तक भी थे। उन्होंने राजनीति को कर्मबद्ध कर जीवनोमुखी बनाया था। वे विद्वान थे, सेवाभाव से लबालब थे। समाजवाद के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। वे एक मात्र अर्थाधृत राजनीति के पक्षधर नही थे। वे सामाजिक परिवर्तन के द्वारा राजनीतिक आंदोलनो एवं चेतना को जागृत करना चाहते थे। वे भेदभाव, असमानता वर्गवाद धर्म्मन्धता, प्रभृति को मिटाकर नवीन समाज की स्थापना कर राजनीति में सक्रियता चाहते थें। जो सर्वहित कारी तथा समतावादी हो। वे मनुष्य को दयनीय नही देखना चाहते थे। आजादी के विभिन्न आंदोलनो में लोकतान्त्रिक व्यवस्था की गरिमा एवं गौरव को आम जन मानस से जोड़ना चाहते थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति लोकतान्त्रिक एवं संविधानात्मक अनुच्छेदों से जुड़े स्वयं तथा अपने राष्ट्र का कल्याण कर सके।

डा0 लोहिया विश्व नागरिक थे उनका चिन्तन देश की परिसीमा को लांघकर समस्त मानव जाति के शिखर के लिए था। उन्होंने अपने विचारों से जीवन जिया और वे दुनियाँ के सामने इस बात का एक उदाहरण बने कि प्रत्येक व्यक्ति ऐसा कर सकता है, बशर्त उसमे अपने आस-पास के प्रतिआस्था तथा सेवाभाव की उत्कुष्ट भावना हो। वे महात्मा नही थे। वे समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ ओर मानवता के महान समर्थक थे वे विद्वान थे। पाश्चात्य दुनिया से उनका गहरा व आतत्मीय सम्बन्ध रहा। वे भारत को एक आदर्श राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। वे हमेशा मानवप्रेम की भावना रखते थे। वे सत्य के प्रति समर्पित थे और सत्य की स्थापना के लिए हर क्षण तत्पर नजर आते थे।

23 मार्च 1910 जब राममनोहर लोहिया ने अकबरपुर में अपनी माँ की गोद में आँखे खोली तब हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आंदोलन 1905 के बंग भंग विरोधी आंदोलन; स्वेदशी के कार्यक्रमों की सफलता लाल-बाल-पाल ओर श्री अरविन्द घोष के नए ओजपूर्ण नेतृत्व की वजह से जनता में जोश, उत्साह ओर विदेशी सत्ता के खिलाफ हमला बोल के संकल्प से पैदा हुए आत्म विश्वास से सराबोर थे।

राममनोहर के पिता श्री हीरालाल स्वयं काँग्रेस के अच्छे कार्यकर्ता और गाँधी जी के अनुयायी थे। बालक राममनोहर के मन पर अपने पिता और देश में चल रहे विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रयाव पड़ा। 1918 में अहमदाबाद के काँग्रेस अधिवेशन में हीरालाल जी अपने इकलौते बेटे राममनोहर को अपने साथ ले गये थे। 1918-20 के वर्ष राष्ट्रीय आन्दोलनों में बड़ी उथल-पुथल के दिन थे। गाँधीजी अफ्रीका में अपने सत्याग्रह के प्रयोग से सफल अभियान के बाद भारतीय राजनीति के दरवाजे अपने लिए खुलवा चुके थे। लोहिया जी प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि के थे, संवेदनशील थे और पिता के प्रभाव में राष्ट्रीय आन्दोलन से अनुप्राषिक थे।

लोहिया जी ने हमेशा गाँधी तिलक एवं बछेन्द्री पाल के रचनात्मक कार्यक्रमों को हमेशा नवसृजन की ओर ले जाने के प्रयास किया। उनके विचारों में विभिन्न आन्दोलन एक यज्ञ के रूप में थे।

लोहिया जी ने 50 वर्षों के राष्ट्रीय आन्दोलन में जो गलतियां देखी उनकी और इशारा किया ''ये सभी साम्प्रदायिक या अलग प्रतिनिधित्व और प्रान्तीय स्वाधीनता और शक्ति के बँटवारे आदि से सम्बन्ध रखने वाली व्यावहारिक गलतियां थी। इन सभी के पीछे राष्ट्रीय आन्दोलन की रणनीति की कमजोरियां जोखिम उठाने और इतिहास के क्रम को समझकर चलने में उसकी अयोग्यता और अनिच्छा थी।''[1]

लोहिया जी ने हमेशा आन्दोलनों को बुद्धिमत्ता तरीके से परखा उन्होंने

कभी कोई गलत रास्ते नहीं अपनायें जिससे समाज और राष्ट्र कमजोर होता हैं। वे हमेशा भारत की जनता को ईमानदारी और सच्चाई से आन्दोलनों में भाग लेने के लिए प्रेरणा देते थे। उन्होंने हिन्दुस्तान में हमेशा समाजवाद का साथ दिया और जितने भी आन्दोलन हुए उन सभी को समाजवाद पर केन्द्रीयभूत करने का प्रयास किया। पूँजीशाही और समाजवाद दोनों की बुराईयों उन्होंने अपने ढ़ग से नष्ट करने का प्रयास किया, लेकिन उनका असली मकसद् था। समाजवाद को समझों और उसको जानों जिससे भारत का प्रत्येक नागरिक एक आदर्श परम्परा को स्थापित करके एक नई विचारधारा से जुड़ सकें।

डा0 लोहिया ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को भारत की आत्मा माना वे हमेशा आन्दोलनों के प्रति लौमहर्षक रहें। उनकी विचारभूमि अतीव द्वंद्वमयी और आक्रमक थी। वे लीक से हटकर और जीवन से जुड़कर चलने वाले ऐसे सत्यपुरुष थे, जिसे ढूढ़ने के लिए कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं हैं। वे पूर्ण अहिंसावादी थे तथा प्रत्येक आन्दोलन को सत्य की सीढ़ियों पर स्थापित करना चाहते थे। लोहिया की रचनात्मक राजनीति एक भारतीय समाज के लिए प्रज्ञातत्वमय थी। ''डा0 लोहिया मे जन्म से ही दीन दुखियों दलितो पीड़ितो अपाहिजो आदि के प्रति करूणा शंकुल सहानुभूति थी।''[2]

वे सिद्धान्तनिष्ठ राजनीति के कट्टर पक्षधर थे। अन्याय, शोषण, गुलामी आदि के प्रति उनका स्वर आक्रोशित था। इस कारण उन्होने अनेकानेक बार अपमान सहे। यातनाएं भोगी परन्तु उन्होने अपने सिद्धान्तों को नही त्यागा। वे सदैव कर्तव्य निष्ठ थे। ''उनको इसलिए रामधारी सिंह दिनकर ने भाग्यवाद का विरोधी निश्चल आदर्श वादी कहा है। और उनके व्यक्तित्व को आजीवन विस्फोटक माना।''[3]

डा0 लोहिया ने आंदोलनो के दौरान साम्प्रदायिक समरसता को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होने विश्व मंच पर भारत के विभिन्न आन्दोलनों को सुदृढ़

दर्पण की तरह साफ रखने का प्रयास किया। उनकी भावना थी कि नेहरू की जो विदेश नीति एवं आन्दोलनों से विकृतियां पैदा हो रही है। उनको किस तरह से नष्ट किया जाए। वे सम्पूर्ण राष्ट्र मे आमूल चूल परिवर्तन करके पक्षपात रहित मानसिकता को स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने भारतीय राजनीति में अपना श्रेष्ठ योगदान दिया और भारतीय राजनीति की उपेक्षता को सापेक्षता में बदलने का प्रयास किया। डा0 लोहिया जनवादी एवं सिद्धान्तवादी आन्दलनकारी थे। उन्होंने देश को भूखी, नंगी, गरीव जनता के लिए लोकतन्त्र के क्या मायने हो सकते है और उसके क्या मूल्य हो सकते है। ये सब उन्होंने आन्दोलनों के दौरान लोगों को सुधारात्मक एवं रचनात्मक नीति से जोड़ा।

लोहिया ने एक नवजागरण काल में नव सृजन और नवमूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया। लोहिया सिद्धान्त तथा नैतिकता को मात्र सत्ता से ही ऊपर मानने वाले नही थे। वे हमेशा आम जनमानस का भारतीय लोकतन्त्र की आत्मा मानते थे। उनके राजनैतिक जीवन पर जलियाँवाला कांड 19 अप्रैल 1919 को हुआ जिसमें बहुत से निर्दोष भारतीयों का नर संहार हुआ। उसका भी उनके मस्तिष्क पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन (1905-08 तक), दमन समझौता तथा फूट डालो राज करो (1909-1914), इसके अतिरिक्त असहयोग और खिलाफत आन्दोलन (1921-22), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-31) एवं (1942-45) भारत छोड़ो आन्दोलन। ये सभी आन्दोलन लोहियाजी के मस्तिक को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से प्रभावित करते रहे।

विदेश में राष्ट्रीय आन्दोलन के लक्ष्यों का प्रचार :

राममनोहर लोहिया ने राष्ट्रीय आन्दोलनों का यूरोप के देशों में प्रचार-प्रसार किया। उनका मुख्य रूप से फ्रांस, जर्मनी एवं जिनेवा हैं। लोहियाजी का

इन आन्दोलनों का प्रचार-प्रसार करने का मुख्य लक्ष्य ये था कि भारत को किसी न किसी तरीके से आजादी मिलें।

लोहिया बर्लिन प्रवास में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों के लक्ष्यों को प्रकट करने और अंग्रेजी शासन के झूठे प्रचार की धज्जियां उड़ाने का कार्य लोहिया ने जमकर किया। ''अपने मित्र गोवा के डा0 जूलियोमैंने जिस को साथ लेकर लोहिया जेनेवा पहुँचे जहाँ उन दिनों लीग-ऑफ नेशन्स का सम्मेलन हो रहा था और जिसमें भारतीय प्रतिनिधि के रूप में बीकानेर के महाराज गंगासिंह अग्रेजी हुकूमत के पिट्0 के रूप में हिस्सा ले रहे थे।''[4]

डा0 लोहिया ने जेनेवा में पहुचकर अपने व्यक्तित्व के द्वारा उस सम्मेलन में हिस्सा लिया और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार-प्रचार में अपनी मुख्य भूमिका निभाई।

अगले दिन लोहिया ने लीग के अध्यक्ष रूमानियां के भी टिटले स्कत्यू के नाम एक खुला पत्र स्थानीय अखवार ''लूश्रावे हयूमनाइट'' में छपवाकर उनकी प्रतियाँ सम्मेलन कक्ष के बाहर खड़े होकर जाते हुए प्रतिनिधियों को बाँटी। अपने पत्र में उन्होंने कहा कि ''भारत में आज शांति नही है और अग्रेज सरकार को भारत के लोगों का सर्मथन प्राप्त नहीं है।''[5]

लोहिया ने इस प्रकार हिन्दुस्तान की असली दशा का विवरण अपने पत्र में देकर देश का सही प्रतिनिधित्व किया और राष्ट्रीय आन्दोलन से अपनी समृद्धता को प्रकट किया। इसके साथ ही लोहिया ने जर्मन की राजधानी बर्लिन में प्रवासीय भारतीय छात्रो की एक संस्था बनाई जिसका उन्होंने ''मध्य यूरोप हिन्दुस्तान संघ नाम'' रखा और वो स्वयं इस संस्था के मंत्री बने। सम्भवतः प्रवासी छात्र छात्राओं की यह पहली संस्था थी जिसने भारतीय राष्ट्रीयता का और देशभक्ति का

प्रचार-प्रचार किया इसके अतिरिक्त जर्मनी में कम्युनिस्टों की साम्राज्यवाद विरोधी लीग नामक एक अन्य संस्था भी थी जिसने भारत के आन्दोलनों को गति देने का प्रयास किया।

लोहिया बौद्धिक एवं मानसिक दृष्टि से काफी उत्कृष्ट एवं अतुलनीय थे। उन्होंने समतावादी समाज की स्थापना करने के लिए हमेशा किसी को छोटा-बड़ा नही सम्भावना सभी को समान दृष्टि से देखा और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों को सक्रिय और जीवन्त बनाने के लिए अपना विशिष्ट योगदान दिया। लोहिया जी ने कभी किसी जाति या किसी वर्ग को नहीं माना बल्कि वह सभी को समान दृष्टि और समान विचार धारा से देखा करते थे। कहीं कोई पक्षपात नही था। उनके राजनैतिक जीवन में बहुत सफलतायें और असफलतायें आई लेकिन मानव जाति की सेवा करने के लिए उन्होंने सभी आन्दोलनों को जीवन का यज्ञ एवं वृत माना।

लोहिया जी जब वर्लिन से हिन्दुस्तान आए तो उनमें हिन्दुस्तान की राजनैतिक संरचना और उसका स्वरूप कुछ हट करके था लेकिन उन्होंने अपने जीवन में गाँधी और जमुना लाल बजाज को प्रेरक माना क्योंकि इनका राजनैतिक जीवन गाँधी और जमुना लाल बजाज की तुलना में कुछ अधिक निराशाजनक था क्योंकि भारत की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर देखा कि यहां का राजनैतिक स्वरूप अंग्रेजी हुकूमत ने बदल दिया था।

लोहिया के विचारों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना थी उन्होंने हमेशा पूँजीवाद और साम्प्रदायवाद का खुलकर विरोध किया। उनके विचारों में हमेशा त्याग और जनसेवा करने की भावना रहती थी वे हमेशा यही चाहते थे कि भारत में संवैधानिक सुधार हो और प्रजातान्त्रिक व्यवस्था बने जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र जागृत हो और समाज का प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति उससे अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें।

वे समाजवाद के पुरोधा थे तथा समाजवाद ही उनके जीवन का व्रत और तप था। जिसके द्वारा वे भारत के पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करना चाहते थे उन्होंने कभी किसी प्रकार संवर्ण और दलितों को अपनाया। कभी कोई ऐसा राजनैतिक व्यक्त्य या टिप्पणी नही दी जो राष्ट्र के लिए धातक हो सकती थी।

लोहिया और गाँधी राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रेरक थे, परन्तु द्वितीय सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी अधिक समय तक नहीं चल सका क्योंकि उसके पीछे बहुत से वैचारिक मतभेद थे और उसके साथ-साथ अंग्रेजी हुकूमत के विभिन्न प्रकार और उनकी शोषण पूर्ण नीतियाँ थी। लोहिया हमेशा शोषणवाद व पूँजीवाद के खिलाफ रहें। उन्होंने कभी भी नही सोचा कि भारत के गरीबों और भूखें किसानों का शोषण हो और उच्च वर्ग हमेशा उनका दमन करता रहें।

लोहिया जी पंगु राजनीति को गतिशील बनाना चाहते थे उनके विचारों में कांग्रेस को सक्रिय बनाया जाए और उसको उतना अधिक से अधिक भारत के प्रत्येक जनमानस से जोड़ दिया जाए। जिससे भारत की खोखली राजनीति एक नवजागृत हो करके अच्छी और स्वच्छ भूमिका को तैयार करें। जिससे भारत के प्रत्येक नवयुवक क्रान्तिकारी बन सकें। जिससे भारतीय समाज में एक नवीन विचार धारा का जन्म हो जो राष्ट्र के हित में उपयोगी एवं लाभकारी हो।

गाँधी जी ने हमेशा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में किसी भी प्रकार का कम्युनिस्टों का सहयोग नहीं लिया और वे उनका सहयोग चाहते भी नही थे, क्योंकि उनकी विचार धारा गाँधी और जयप्रकाश जी से अलग थी। भारतीय कम्युनिस्टों ने कभी गाँधी और लोहिया का सहयोग नहीं किया क्योंकि उनमें वैचारिक मतभेद और भिन्नतायें थी।

डा0 राममनोहर लोहिया उन विदेशी पढ़े-लिखे विद्वानों में से थे, जो

साम्यवादियों से असहमत होकर गाँधी जी और कांग्रेस के प्रति सकारात्मक सोच रखते थे। लेकिन साम्यवदियों के गुणात्मक रूप से उनका दृष्टि कोण और विचारधारा भिन्न थी, जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों के पटाक्षेपों पर सोचने के लिए बाध्य करती थी। वे भारतीय अर्थव्यवस्था का ग्रामीणीकरण चाहते थे, शोषण नही जिससे समाज का कमजोर से कमजोर वर्ग का व्यक्ति उससे अधिक से अधिक लाभन्वित हो सकें और भारतीय अर्थव्यवस्था को पूँजीवाद न जुड़कर भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए चहुमुँखी विकास पर केन्दीयभूत हों।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना :

लोहिया सामाजिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता को संघर्ष में शामिल कर स्वतन्त्रता संग्राम को बहु आयामी एवं व्यवहार परख बनाना चाहते थे। उन्होंने विभिन्न प्रकार के भारतीय राजनैतिक चिन्तन में हमेशा दिशान्मुखी और बहुमुँखी बनाने का प्रयास किया। लोहिया एक अच्छे विचारक, चिन्तक और समाजसेवी थे। वे हमेशा साम्राज्यवाद के स्थान पर समाजवाद को स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने कभी भी संसदीय गरिमा के खिलाफ ऐसी कोई टिप्पणी नही की। जिससे विधायी प्रक्रियायें प्रभावित होती। उन्होंने हमेशा परिस्थितियों के अनुसार पार्टी की विधान कार्यक्रमों और विभिन्न प्रकार के वैचारिक स्तरों को आपस में समाहित किया।

लोहिया ने हमेशा स्वतन्त्रता संग्राम को अतुलनीय और बहुआयामी बनाना चाहा।

लोहिया जी ने समाजवादी समाज की स्थापना चाहते थे कि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान एक समाजवादी अवधारणाओं से जुड़े और इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार के वैचारिक मतभेदों को समाप्त कर एक नवीन समाजवादी परम्पराओं की धारा को सम्पूर्ण देश में प्रवाहित किया जाये। जिससे कश्मीर से कन्याकुमारी तक का प्रत्येक

नागरिक इस विचारधारा से जुड़ सकें। लोहिया ने अपनी पार्टी के अन्य साथियों के साथ वैचारिक स्तर पर बातचीत की और विभिन्न प्रकार के मतभेदों भी मिटायें।

लोहिया, गाँधी और आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे महान व्यक्तियों ने सदैव एक-दूसरे के विचारों को समझा परन्तु इन तीनों में भी समाजवादी समाज की स्थापना पर वैचारिक भिन्नताऐं थी और उनके विचारों में एक-दूसरे के लिए बहुत से अन्तर्द्वन्द भी थे। उसका मुख्य कारण सम्पूर्ण स्वतन्त्रता शब्द समाजवादी समाज की स्थापना पर पूर्ण रूप से खरा नहीं उतरता था।

सोशलिस्ट सदस्यों के विचार भारतीय कांग्रेस कमेटी के विपक्ष में थें, क्योंकि उनको ऐसा महसूस हो रहा था कि कांग्रेस एक भारत की एक विशाल पार्टी के रूप में कार्य करेंगी तो सोशलिस्ट पार्टी इस पार्टी के समझ कुछ अपने आप को कमजोर और हताश महसूस करेंगी। इस कारण से लोहिया और गाँधी के विचारों में भिन्नताऐं और अन्तर्द्वन्द थे।

कांग्रेस सोशलिस्ट का संपादन :

लोहिया पार्टी की सदस्यता से जुड़ने के लिए बहुत से लोग लालायित थे, और उसके साथ-साथ लोहिया के कंधों से जुड़कर कांग्रेस सोशलिस्ट के सम्पादन में अपनी विशिष्ट भूमिका निभायी।

कांग्रेस सोशलिस्ट का सम्पादन की भूमिका लोहिया जी ने की क्योंकि लोहिया ने सम्पादकीय योग्यता और विद्धवत्ता थी। इसलिए सम्पादन का कार्य सही और उचित तरीके से कर सकते थे।

सोशलिस्ट कम्युनिस्ट सहयोग का विरोध :

सोशलिस्ट कम्युनिस्ट और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नीतियों लोकतान्त्रिक प्रतिमानों पर केन्द्रीयभूत थी। परन्तु लोहिया और अशोक मेहता जैसे

समाजवादियों और समाजसेवियों के विचारों में तालमेल नही था। उसका मुख्य कारण सोशलिस्ट कम्युनिस्ट प्रजातान्त्रिक बिन्दुओं पर खरी नही उतरती थी।

डा0 लोहिया ने हमेशा कम्युनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का विरोध किया क्योंकि उनकी सोच और कम्युनिस्टों की सोच में काफी अन्तर था।

लोहिया ने समाजवादी पार्टी को एक नवीन पार्टी के रूप में भारतीय राजनीति को प्रदान की जिससे भारत की अन्य राजनीतिक पार्टियों जैसे कम्युनिस्ट और कांग्रेस की पराकष्ठा पर अपने चिन्ह छोड़ सकें।

कांग्रेस के प्रथम परराष्ट्र मंत्री :

कांग्रेस और उससे जुड़े कार्यकर्ता जैसे नेहरू, तिलक, गाँधी इत्यादि थे। परन्तु नेहरू जी ने हमेशा राष्ट्रीय आन्दोलन को एक विदेशी दृष्टि से देखा और हमेशा विभिन्न प्रकार के व्यक्तव्यों, लेखों और रीतियों के द्वारा ही परिवर्तन लानें का प्रयास किया। परन्तु डा0 लोहिया ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों को एक भारत की आचरण की व्यथा और उसकी संच्चाई को जानने का प्रयास किया।

लोहिया जी का विदेशी नीति के प्रति दृष्टिकोण गाँधी और नेहरू से अलग था क्योंकि उन्होंने हमेशा भारतीय राजनीति को जीवन की तपस्या और त्याग माना। वह राजनीति को जीवन का व्रत समझते थे। क्योंकि उसके द्वारा भारत में प्रजातान्त्रिक मूल्यों को गठित करके एक नवीन समाज की स्थापना करना था।

डा0 लोहिया हमेशा मूल सिद्धान्तों की बात करते थे। उनके सिद्धान्तों में समाजवाद, रंगभेद के खिलाफ विचारधारा, छुआछूत को दूर करने की नीतियों जाति-पाँत, नस्ल भेद के खिलाफ थे। उन्होंने हमेशा विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों में सभी वर्गो को जोड़ने का प्रयास किया और कहा कि सच्चे लोकतन्त्र का अनुसरण करने वाला वही है जो लोकतन्त्र की सही परिभाषा को समझता है और जानता है।

लोहिया ने अपने प्रकाशनों के माध्यम से कांग्रेस की विदेश नीति के निर्माण में और उसके मूल सिद्धान्तों के गठन में काफी सफलता प्राप्त की। इस बारे में लोहिया के योगदान की प्रशंसा करते हुए जे0एस0 अहमद ने लिखा है कि "वास्तव में इस विभाग के जरिये डा0 लोहिया ने स्वतन्त्र भारत के प्रथम गैर सरकारी विदेशमन्त्री की भूमिका का निर्वाह किया था।"

जिसको उन्होंने "मध्य यूरोप हिन्दुस्तानी संघ" नाम रखा और वो स्वयं इस संस्था के मन्त्री बने। सम्भवतः भारत के बाहर प्रवासी भारतीय युवकों की यह पहली संस्था थी जिसने भारतीय राष्ट्रीयता के प्रचार का कार्य किया। कम्युनिस्टों की "साम्राज्यवाद विरोधी लींग" नाम की एक अन्य संस्था भी थी।

5 मार्च 1931 को हिन्दुस्तान में गांधी-इरविन पैक्ट सम्पन्न हुआ। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद गाँधी ने अपने नींबू पानी में समुद्र किनारे के अवैध नमक को अपनी अंटी में रखी कागज की पुड़िया में से निकालकर डालते हुये वॉयसराय को अमरीकी स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ी प्रसिद्ध बोस्टन की टी-पार्टी की याद दिलाई।[6] इसी समझौते पर विचार करने के लिए बर्लिन में "मध्य यूरोप संघ" और "साम्राज्यवाद विरोधीलींग" दोनों के संयुक्त तत्वाधान में एक सम्मेलन हुआ। इसमें कम्युनिस्टों के समझौते के खिलाफ निन्दा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। लोहिया ने इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध करते हुये कहा "जब कोई विशाल जन प्रवृत्ति प्रगट होती है, तब उसके खिलाफ जाने से क्या फायदा। नियाग्रा के प्रप्रात कोनाव से पार करने की कोशिश करने वाले खुद खत्म होते हैं।"[7] लोहिया के प्रयास और प्रभाव से कम्युनिस्टों का प्रस्ताव 15-20 मत से गिर गया। यहीं नहीं अन्य पारित प्रस्ताव में कांग्रेस से अनुरोध किया गया कि वो अपने पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य को हमेशा याद रखे। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोहिया की भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधी के नेतृत्व के प्रति एक समझ का विकास उनके बर्लिन प्रवास में हो चुका था। तभी

कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लोहिया ने आगे चलकर राष्ट्रीय-आन्दोलन में सदैव गांधी का पक्ष लिया। जर्मनी में लोहिया समाजवादी-विचारों और उनके संगठनों के सम्पर्क में आये जिनमें कम्युनिस्ट भी शामिल थे। इस बारे में अपनी सहयोगी रमा मित्र को, जो 1960-61 में शोध कार्य के सिलसिले में बर्लिन गई थीं, लिखते हुये लोहिया ने लिखा" "मुझे जर्मन समाजवादी पसंद नही थे, लेकिन बौद्धिक दृष्टि से में उनके कुटुम्ब का सदस्य था। भावानात्मक दुष्टि से में कम्युनिस्टों के साथ था उनकों "जिन्दादिली की वजह से और नाजियों के साथ उनके ब्रिटिश विरोधी आवेग के कारण।[8] लेकिन लोहिया ने जाति या कौम, वंश वैभव की नींव पर खड़ी नात्सी पार्टी को पसंद नहीं किया।

1929 में उन्नीस वर्ष की उम्र में लोहिया बर्लिन गये थे और 1933 के आरंभ में तेईस वर्ष की उम्र के लोहिया बर्लिन से "डाक्टर" की उपाधि, समाजवादी विचार, साम्राज्यवाद, फासिज्म और युद्ध के प्रति घृणा, गाँधी और हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति सम्मान और उसमें सक्रिय हिस्सा लेने की तीव्र इच्छा को साथ लेकर स्वदेश लौटे। लोहिया के पिता हीरालाल व्यापार छोड़कर पूरा समय काँग्रेस के काम में देने लगे थे। पिता के व्यापार छोड़ देने का पहला प्रभाव नौनिहाल राममनोहर पर गरीबी के रूप में पड़ा। अतः जैसा कि आम प्रतिभाशाली लेकिन गरीब हिन्दुस्तानी के साथ होता आया है, लोगों ने जीवकोपार्जन के लिए लोहिया को कोई नौकरी कर लेने की सलाह दी। लेकिन लोहिया तो पहले से ही निश्चय करके आये थे कि वे राजनैतिक जीवन शुरू करेगे। इस बारे में जमना लालजी बजाज के साथ गाँधी से अपनी मुलाकात का जिक्र करते हुये लोहिया ने लिखा है।[9] कि यह बताये जाने पर कि "राजनीति करनाा चाहता हूँ", गाँधीजी ने उनसे प्रश्न किया "क्या खाते पीते घर के हो"? जमनालालजी के यह उत्तर देने पर कि इस बारे में उन्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है, गाँधीजी ने कहा था "फिर तो

ठीक है। हम लोग फिर मिलेंगे"। लेकिन लोहिया राजनीति में काम करने का जो हौंसला और उत्साह लेकर आये थे, देश के वातावरण को देखकर कुछ उलझन में पड़े। इसको समझने के लिए लोहिया के स्वदेश आगमन के पूर्व की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर थोड़ा दृष्टिपात करना होगा। उस समय देश का राजनैतिक वातावरण बिल्कुल निराशाजनक था। द्वितीय-गोलमेज परिषद के वापस लौटते हुए गाँधी ने कहा था "मैं खाली हाथ लोटा हूँ परन्तु मैंने अपने देश की इज्जत पर बट्टा नहीं लगने दिया"। 28 दिसम्बर 1931 को गाँधीजी के स्वदेश में कदम रखने के तीन सप्ताह के अंदर ही कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर सरकार द्वारा उसके कार्यो पर निषेध लगा दिया गया था। उसके हजारों कार्यकर्ता- 35000 वालंटियर जेल में डाल दिये गये।[10]

श्री नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया था। खान अब्दुल गफ्फार खाँ वर्मा में नजरबंद थे। 4 जनवरी 1932 को गाँधी की गिरफ्तारी के बाद देश में निराशा और असफलता की भावना फैल गई थी उधर लन्दन में नवबंर, 1932 में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ जिसमें न काँग्रेस, ने देशी राजा ओर न लेबर पार्टी के लोग शामिल हुये थे। अनिर्णय की हालत में प्रधानमंत्री रैग्जे मैक्डॉनल्ड ने सांप्रदायिक मसलेपर अपना फैसला घोषितकर मुसलमानों के साथ दलित वर्ग का भी पृथक राजनैतिक ईकाई करार दिया था, ओर लेजिसलेचरों में उनके लिए निश्चित सीटें सुरक्षित कर दी थीं। गाँधी ने इस अंग्रेजी षड़यन्त्र के विरूद्ध 20 सितम्बर 1932 को जागरण अनशन शुरू किया जिसे उन्होंने 26 सितम्बर को दलित नेता डा0 अंबेड़कर के साथ पूना में समझौते के बाद समाप्त किया।[11] लेकिन उसी वर्ष मार्च में संवैधानिक सुधारों पर जो व्हाइट पेपर जारी किया गया था वह अत्यन्त निराशाजनक था। आलइन्डिया ट्रेड यूनियन फेडरेशन ने इस योजना को यह कहकर धिक्कारा कि "वह समाजवाद और राष्ट्रीयता को कुचलने के लिए पूँजीवाद और सांप्रदायिकता का दोहरा

हथौड़ा था''।[12] इस प्रकार द्वितीय सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी अधिक सफल न रहा। कांग्रेस तथा देश सरकार की दमन नीति से हार मान चुका था। ऐसी स्थिति में जहाँ मदन मोहन मालवीय, गाँधीजी को यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि कांग्रेस का एक प्रतिनिधिमण्डल भारत की बात रखने इंग्लैण्ड जाना चाहिए।[13] वही दूसरी ओर कुछ नेता कौंसिलों में प्रवेश की योजना स्वीकार कर लेने के लिए गांधीजी पर दबाव डाल रहे थे। इस गुट के नेताओं की एक बैठक 1 अप्रैल 1934 को दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें डा0 अन्सारी के0एम0 मुंशी, विधान चन्द्र राय और भूलाभाई सरीखे नेता शामिल हुये। इस बैठक में यह तय किया गया कि स्वराजय पार्टी को पुनर्जीवित किया जाये और अगली सर्दियों में होने वाले चुनाव में भाग लिया जाये।[14] गांधीजी ने कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम को, यह कह कर कि भिन्न मत रखते हुये भी क्षुब्ध और एकदम निष्क्रिय कांग्रेसजन की तुलना में वो ऐसे कांग्रेसजन की पार्टी का स्वागत करेगें जो उसके कार्यक्रमों को आगे बढ़ाये, अपना आशीर्वाद प्रदान किया।[15] लेकिन 18, 19 एवं 20 मई 1934 को पटना में जब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई तो कांग्रेस के अन्दर स्पष्ट रूप से दो विरोधी विचारधारायें उभर कर सामने आयीं। कौसिल प्रवेश के विरोधी चाहते थे कि लाहौर प्रस्ताव के अनुसार ''पूर्ण स्वतंत्रता'' प्राप्ति के लिए संघर्ष के कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ाया जाय। और इसे कामयाब बनाने के लिए कांग्रेस संगठन को अधिक क्रान्तिकारी बनाने की कोशिश की जाये। इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय आंदोलन के बहुत से नौजवान लोग समाजवादी विचारों को मानने वाले थे। लेकिन उनका कोई अपना संगठन नहीं था। सविनय अवज्ञा आंदोलन में गिरफ्तार किये गये। कुछ समाजवादी नौजवान नासिक जेल में बंद थे, जिनमें जयप्रकाशनारायण, अच्युतपटबर्धन, मीनूमसीनी, पुरूषोत्तम विक्रमदास, युसफ मेहरअली और अशोक मेहता शामिल थे। इन्होंने जेल में ही वामपंथी कांग्रेसजनों द्वारा कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी के गठन पर गंभीरता से विचार किया। इसके

अलावा भी 1930 से 1934 तक देश के कई भागों में जैसे विहार, उड़ीसा, बडौदा, बम्बई, बनारस, बंगाल आदि में विभिन्न नामों से समाजवादी दलों का गठन हो चुका था।[16]

1928 में औपनिवेशिक राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के प्रति कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की नीति परिवर्तित हो चुकी थी। यह निश्चय किया गया कि औपनिवेशिक राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में सुधारवादी संस्थाओं से किसी प्रकार का सहयोग न लिया जाये।[17] तृतीय इन्टरनेशनल के स्वर में स्वर मिलाते हुये भारतीय कम्युनिस्टों ने भी गांधीजी को पूँजीवादी वर्ग का वैचारिक प्रतिनिधि घोषित कर कांग्रेस से असहयोग का रास्ता अपनाया।[18] तभी जयप्रकाश ने लिखा कि "1930 में गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह प्रारंभ हुआ किन्तु साम्यवादी आन्दोलन से अलग ही रहे"।[19]

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना :

लोहिया सामाजिक एवं आर्थिक स्वातंत्र्य को संघर्ष में शामिल कर स्वतंत्रता संग्राम को वहुआयामी बनाना चाहते थे।[20] चूँकि साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति के बिना आर्थिक प्रणाली के रूप में समाजवाद सार्थक नहीं था, इसलिए लोहिया दिशान्मुख के लिए आगे आये। अतः 1934 की तात्कालिक परिस्थिति में लोहिया इन स्पष्ट विचारों के साथ, साथ ही कौंसिलों में प्रवेश की नीति की निरर्थकता और अवज्ञा आंदोलन को आगे बढ़ाने और तेज करने की मुहिम तेज करने की योजना के साथ, समान विचारधारा के साथियों के साथ, सोशलिस्ट पार्टी के गठन के लिए आगे बढ़े। 17 मई, 1934 को पटना के अंजुमन-ए-इस्लामिया सभागृह में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में सारे देश के समाजवादियों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने सारे देश में एक विधिवत संगठित सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना का फैसला किया जो कांग्रेस के अन्दर रह कर कार्य करें। लोहिया की मांग थी कि प्रस्तावित उद्देश्य "समाजवादी

समाज की स्थापना" के साथ "संपूर्ण स्वातंत्र्य" शब्द भी जोड़ा जाये। इसके लिए उन्होंने संशोधन भी पेश किया, लेकिन सिवाय आचार्य नरेन्द्रदेव के अन्य नेताओं ने इसका विरोध किया।[21] उनके विरोध का कारण शासन द्वारा पार्टी को स्वतंत्रता का लक्ष्य घोषित करने का अवैध करार कर दिये जाने का भय था। गांधीजी को जब इस घटना का पता चला तो उन्होंने डा0 कन्हैयालाल मुंशी को पटना से 12 मार्च, 1934 को लिखे पत्र में अपने विचार प्रगट करते हुये लिखा "यदि कोई चीज इस विचार के साथ प्रारंभ हुई है कि सरकार क्या कर सकती है, तो वो अपना लक्ष्य किस प्रकार प्राप्त कर सकती है।[22]

इस प्रकार गांधीजी ने अपरोक्ष रूप में इस बारे में डा0 लोहिया के मत का समर्थन किया। लेकिन सोशलिस्ट पार्टी के गठन के दूसरे ही दिन पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक हुई उसमें एक प्रस्ताव द्वारा तो अवज्ञा आंदोलन को स्थगित रखने का फैसला लिया गया और दूसरे प्रस्ताव द्वारा कौंसिलों में प्रवेश का। हांलाकि सोशलिस्ट सदस्यों ने दोनों प्रस्तावों का विरोध किया। लेकिन उनके संशोधन प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये गये। उसके बाद यथा समय कांग्रेस ने कौंसिल प्रवेश किया और कांग्रेस फिर कानूनी हो गई।

"कांग्रेस सोशलिस्ट" का संपादन :

उधर 21-22 अक्टूबर, 1934 को बम्बई में "रेडीमनी टेरेस" वरली में सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन में सारे देश के लगभग 150 प्रतिनिधि शामिल हुये। लोहिया पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। "कांग्रेस सोशलिस्ट" नाम से पार्टी का एक साप्ताहिक समाचार पत्र कलकत्ता से प्रकाशित करने का फैसला हुआ। लोहिया के कंधो पर उसके सम्पादन की जिम्मेदारी डाली गई। इस दौरे में पार्टी में लोहिया के योगदान के बारे में लिखते हुये समाजवादी नेता अशोक मेहता ने लिखा "जर्मनी से लौटने पर राममनोहर के सामने कई ललचाने

वाले प्रस्ताव आये क्योंकि उनकी योग्यता की धाक जम चुकी थी। लेकिन वे अपनी शक्ति राजनीति में लगाने के लिए कटिबद्ध थे। सन् 1934 में गठित नये सोशलिस्ट ग्रुप में उन्होंने अनुकूल भाईचारा पाया। बहुत जल्द ही वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता के रूप में उभरे। उन्होंने पार्टी का पत्र "कांग्रेस सोशलिस्ट" शुरू किया और सन् 1939 में उस पत्र के बन्द होने तक उसके संपादक रहें। प्रार्थी में उनके प्रेरणाप्रद प्रभाव के बारे में केवल उनके साथी ही पूरी तरह जानते हैं"।[23]

सोशलिस्ट कम्युनिस्ट सहयोग का विरोध :

1924 में गठित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का "सौशल फैसिस्ट" और पूँजीवाद का गरम स्वांग आदि विशेषज्ञों के साथ स्वागत किया था। किन्तु जैसे ही 1936 में कामिनटर्न की 7वीं कांग्रेस ने अपनी पुरानी, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की सुधारवादी संस्थाओं से असहयोग की नीति छोड़कर संयुक्त मोर्चे की नीति अपनाई, भारतीय कम्युनिस्टों ने भी टर्न लेकर समाजवादी और अन्य लोकतांत्रिक शक्तियों से सहयोग की बात करना प्रारंभ कर दिया। फलस्वरूप कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने 1936 के अपने द्वितीय मेरठ सम्मेलन में पार्टी की सदस्यता के दरवाजे कम्युनिस्टों के लिए खोल दिये। डा0 लोहिया ने प्रारंभ से ही कम्युनिस्टों से सावधान रहने की वकालत की। उन्होंने सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट सहयोग को "धृतराष्ट्र आलिंगन" की संज्ञा दी।[24] बाद में यह स्पष्ट हो जाने पर कि विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियाँ सोवियत संघ के पर राष्ट्र विभाग के एजेन्ट का काम करती है, और यह भी कि कम्युनिस्ट सोशलिस्ट पार्टी के केवल उसे नष्ट करने के उद्‌देश्य से प्रविष्ट हुये हैं। लोहिया, अच्युत पटवर्धन, मीनूमसानी और अशोक मेहता ने कम्युनिस्टों के साथ एकता के इस आत्मघाती प्रयोग का प्रबल विरोध करते हुए, पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया।[25] आखिर में 1940 में रामगढ़ कांग्रेस के समय कम्युनिस्टों को पार्टी से निकालने का फैसला हो

पाया। इस प्रकार लोहिया ने नवजात पार्टी पर आये खतरे को दूर करने और समाजवादी पार्टी को स्वतंत्र संगठन और स्वतंत्र विचार का आधार प्रदान करने में अपनी भूमिका का निर्वाह किया।

कांग्रेस के प्रथम परराष्ट्र मंत्री :

सन् 1939 तक कांग्रेस की अपनी कोई विदेशनीति नहीं थी। हांलाकि राष्ट्रीय आंदोलन में 1920 के बाद से कुछ ऐसे तत्व आने लगे जिनकी दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करने की कोशिश की। 1935 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन जवाहरलाल की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर उन्होंने कांग्रेस का आधुनिकीकरण करने का निर्णय लिया और उस योजना के एक अंश के रूप में उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का विदेश विभाग खोला। इस विभाग के मंत्री पद पर उन्होंने डा0 लोहिया को नियुक्त किया।[26] प्रवासी भारतीय विभाग आदि उनके विभाग की ही उपज थे। दिसम्बर, 1936 में फैजपुर कांग्रेस में अपने विभाग की रपट प्रस्तुत करते हुये लोहिया ने विदेश नीति के संबंध में कुछ बुनियादी आधार प्रस्तुत किये। उन्होंने सर्वप्रथम इस बात पर जोर दिया कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड की विदेशनीतियों का संबंध तोड़ देना चाहिए। दूसरे, कांग्रेस को आजादी अथवा जनजन्त्र के लिए लड़ने वाले देशों का सक्रिय समर्थन करना चाहिए। फैजपुर सम्मेलन में पं. नेहरू फिर से कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये और उन्होंने डा0 लोहिया के आधीन कांग्रेस के परराष्ट्र विभाग को पूर्ववत कार्य करते रहने का निर्णय लिया। इस विभाग को अपने कार्य में सफलता मिल रही थी। इसके साथ ही डा0 लोहिया भारतीय राजनीति में एक प्रतिभावान विचारक और परराष्ट्रनीति के विज्ञान प्रवक्ता के रूप में स्थापित होने जा रहे थे। लोहिया ने विभाग की ओर से महत्वपूर्ग पत्रिकाओं और परिपत्रों का प्रकाशन कराया। उनके द्वारा प्रकाशित पहली पुस्तिका ''आन द स्ट्रगल फार सिविल लिबर्टीज'' थी। इसके अलावा ''भारतीय विदेशनीति'', चीन और

हिन्दुस्तान, विदेशी ठेकेदारों की लूट के साथ सरकारी कर्मचारियों के वेतन जैसे विषय भी थे।[27] लोहिया ने इस प्रकाशनों के माध्यम से कांग्रेस की विदेशनीति के निर्माण में उसके मूल सिद्धान्तों के गठन में और उन्हें प्रचारित करने में काफी सफलता प्राप्त की। बिनलगांव, तीसरी दुनिया, रंग और नस्ल भेद का विरोध, साम्राज्यवाद के विनाश के लिए एकजुटता और सर्वत्र राष्ट्रीय आंदोलनों का बढ़ावा- ये कुछ ऐसे आधार उन्होंने गढ़े जो हमारे आजाद हिन्दुस्तान की विदेशनीति की आज तक की मुख्य विशेषतायें हैं। इस बारे में लोहिया के योगदान की प्रशंसा करते हुए, उन दिनों लोहिया के साथ ही कांग्रेस के दफ्तर में उनके सहकर्मी जेड0ए0अहमद ने लिखा "वास्तव में, इस विभाग के जरिए डा0 लोहिया ने स्वतंत्र भारत के प्रथम गैर सरकारी विदेशमंत्री की भूमिका का निर्वाह किया था।"[28]

युद्ध विरोधी योद्धा :

डा0 लोहिया एक अपराज्य योद्ध थे। खुले दिमाग, खुले मन, का पूर्णतः मानवतावादी, जीवन मूल्यों के प्रति अन्त तक संघर्ष करते रहने वाला पराक्रमी योद्धा निश्चल राजनीति का अन्त द्विहटा, समाजवादी साधना का योद्धा और जन-जन के अन्तः कर्ण में बैठने वाला डा0 लोहिया एक अप्रितम चरित्र का अध्येता था। असहज होकर सहज बने रहने के प्रति जागरूक रहते हुये उपयुक्त समय आने पर आक्रमण होने में देर नहीं लगता था। वह जानते थे कि समय की चूक अतीत के गहरे अन्धकूप में ढंकेली जाती है स्वतंत्रता के पूर्व का अहिंसक योद्धा स्वतन्त्रता के बाद में ध्वस्त होते हुये, जीवन मूल्यों के प्रति इतना क्षुब्ध तनाव में भरा और निराशा से घिर जाता है। डा0 लोहिया की नजर दुनिया में चल रहे घटनाचक्र पर बड़ी पैनी थी। कांग्रेस के विदेश विभाग को संभालते समय उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय-जगत में चल रहे घटनाचक्र के अध्ययन और उसके विशलेषण का भरपूर मौका मिला था। तभी 27 सितम्बर 1937 के दिन इलाहाबाद में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की आमसभा

में बोलते हुये उन्होंने कहा "संसार के साम्राज्यवादी देशों ने अपने हितों की रक्षा के लिए महायुद्ध की भूमिका तैयार कर दी है। पर भारतीय जनता युद्ध में भाग न लेगी। और यदि युद्ध शुरू हुआ तो इस मौके का इस्तेमाल अपनी आजादी की लड़ाई की गति को तेजी से बढ़ाने में करेगी।"[29] युद्ध के प्रति लोहिया का यह नजरिया कांग्रेस के समाजवादी साथियों के विचारों से मेल खाता था। लेकिन कांग्रेस में गैरकम्युनिस्ट तत्वों के बीच भी युद्ध को लेकर जिसमें तथाकथित जनतांत्रिक इंग्लैण्ड, प्रांत आदि एक और थे और जर्मनी तथा इटली की फासिल्ट सरकारें दूसरी ओर थी, दो धारायें उभर कर सामने आने लगीं थीं। एक धारा ऐसी थी जिसकी प्रेरणा का स्त्रोत इंग्लैण्ड की सभ्यता था। सामुदायिक सुरक्षा, फासिज्मविरोएं और जनतंत्र जैसे नारे इनकी प्रमुख अभिव्यक्ति थे। और हिन्दुस्तान में इसके प्रवक्ता अधिकतर इंग्लैण्ड में पढ़े हुये राजनीतिज्ञ थे, जिनके प्रमुख थे प0 जवाहरलाल नेहरू। दूसरी धारा के प्रणेता थे महात्मा गाँधी जिनकी मानवीय दृष्टि थी और जो हिन्दुस्तान के सन्दर्भ में साम्राज्यवाद का विरोध सभी राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और समानता, और नये विश्व का निर्माण करने की इच्छा के रूप में व्यक्त होती थी। युद्ध और युद्ध प्रयासों में खासतौर पर गुलाम देशों की जनता और उसके साधनों को झोंक देने की नीति का कठोर प्रतिरोध भी इसमें शामिल था। गांधी की इस नीति का ठोस निरूपण किया रामभनोहर लोहिया के और उन्हें इस कार्य में गांधीजी का खुलकर समर्थन प्राप्त हुआ। हांलाकि प्रारंभ में दोनों धाराओं में साम्राज्यवाद के विरोध की समानधारा होने की वजह से अन्तर का आभास नहीं हो सका था। लेकिन जैसे-जैसे महायुद्ध निकट आता गया, उस युद्ध के प्रति और उसके दौरान राष्ट्रीय आंदोलन के दृष्टिकोंण को लेकर दोनों धाराओं के बीच अंतर स्पष्ट दिखाई देने लगा। लगभग उसी समय 1938 में लाहौर में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी के सदस्य चुन लिये जाने पर, पार्टी के प्रस्तावानुसार, लोहिया ने कांग्रेस के परराष्ट्र विभाग के मंत्रीपद से इस्तीफा दे दिया।[30]

डा0 लोहिया ने हमेशा राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठाई तथा विदेशों में भी एक अच्छे नागरिक के रूप में जाने जाते थे यार्थतता के चिन्तक थे सत्ता से उन्हें कोई लगाव नहीं था। डा0 लोहिया एक सफल विचारक और विदेशी नीतियों के मर्मज्ञ ज्ञाता थे तथा भारतीय मानवतावादी विचार धारा में हमेशा पक्ष में रहते थे तथा आम जनजीवन के लिए डा0 राममनोहर लोहिया एक नवीनता के प्रतीक थे।

कांग्रेस की एकता के समर्थक :

डा0 लोहिया ने हमेशा कांग्रेस का समर्थक किया क्योंकि वे गांधी विचार धारा से जुड़े हुये थे। वे मानते थे कांग्रेस भारतीय राजनीति की आत्मा है कांग्रेस में हमेशा भाषा नीति, मूल्यनीति जाति नीति और भूमि नीति को शामिल रखकर उसका सामना किया जो आज भी भारतीय लोकतन्त्रामक प्रणाली के लिए सार्थक और उपयोगी है।

सन् 1939 का वर्ष शुरू हुआ तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में बड़ी तेजी से वदलाव आने लगा। महायुद्ध की पदचाप साफ सुनाई देने लगी थी। उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस का मत था कि युद्ध की स्थिति का लाभ उठाकर कांग्रेस को आजादी की लड़ाई तेज करनी चाहिए। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और लोहिया थी इस मत के प्रवल समर्थक थे। लेकिन लोहिया सुभाष बाबू द्वारा कांग्रेस पर गांधी के कथित एकाधिकार, अथवा गांधी द्वारा बललाये गये तरीकों की अक्षमता अथवा कि कांग्रेस में वामपंथी ताकतों के संगठन आदि के बारे में व्यक्त विचारों से पूरी तरह असहमत थे। क्योंकि उनका मानना था कि कांग्रेस में दक्षिण और वाम का झगड़ा स्वाधीनता संग्राम में फूट डालने वाला है। अतः त्रिपुरी कांग्रेस में जिनमें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यां द्वारा वोट दिये जाने के कारण सुभाष चन्द्र बोस अध्यक्ष पद पर दुबारा, गांधी के प्रत्याशी डा0 पट्टाभिसीतारमैया को हराकर,

विजयी हुये थे, उसे मतदान में लोहिया ने हिस्सा ही नहीं लिया। वे तटस्थ रहें। वाद में पं. गोविन्दवल्लभ पंत के इस प्रस्ताव का कि कांग्रेस अध्यक्ष अपनी कार्य समिति गांधी की इच्छानुसार बनायें समर्थन करते हुये लोहिया ने कहा "कांग्रेस संकटकाल से गुजर रही है। और इस साल ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लड़ाई करनी होगी। इस दृष्टि से एकता होनी चाहिए"।[31]

युद्ध में असहयोग :

डा0 लोहिया ने हमेशा हिंसक नीतियों का सहारा नहीं लिया। वे खिलाफ रहे युद्ध और हिंसा को, वे चाहते थे युद्ध के द्वारा हम कभी किसी पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि उसके स्थान पर एक आदर्श समाज की स्थापना हो जिसमें अहिंसक विचारधारा हमेशा प्रवाहित होती रहें और समाज में वेमनुष्यता और द्वेष को रोका जायें क्योंकि इनके द्वारा कभी किसी चीज का विकास नहीं हुआ है बल्कि विनाश हुआ है।

डा0 लोहिया ने राजनीति के द्वारा आम जनता को देश की प्रगति के साथ साझेदार बनाना चाहा। परन्तु सत्ताधारी दल जिस तरह की राजनीति का रहा था। उसमें वे अधिक पीड़ित थे तथा वे राजनीति का हमेशा एक में टुकड़े की तरह आदर्श पारदर्शिता के प्रतिमान पर केन्द्रीयभूत करना चाहते थे। उनके राजनीतिक विचारों में किसी प्रकार की विषमतायें और समीपतायें नही थी हमेशा भारतीय कांग्रेस की ध्वनि को एक रचनात्मक अवधारणा में जोड़ना चाहते थे।

"युद्ध से असहयोग" का अभियान लोहिया ने आजादी के महासंग्राम का पहला आंदोलन स्वीकार कर लिया था। और अपना सारा ध्यान, समय और शक्ति उन्होंने इस मुहिम में लगानी प्रारंभ कर दी। अपने युद्ध विरोधी अभियान और उसमें हिन्दुस्तान की जनता के असहयोग के कार्यक्रम को ठोस रूप प्रदान करने के

लिए लोहिया ने चार सूत्र प्रस्तुत किये।[32]

1. युद्ध भरती का विरोध

2. देशी रियासतों में जन आंदोलन

3. युद्ध प्रारंभ हो जाने पर ब्रिटिश मालवाहक जहाजों में माल लादने एवं उतारने से इन्कार करने वाले गोदी मजदूरों का संगठन।

4. युद्ध कर और युद्ध कर्ज को नामंजूर करना और नहीं देना।

लोहिया के मन में महायुद्ध के चरित्र को लेकर कोई दुविधा नहीं थी। न ही साम्राज्यवाद और फासिज्म के बारे में उनके मन में कोई भेद था। 1936 में ''कांग्रेस सोशलिस्ट'' पत्रिका में ''स्वराज्य क्यों और कैसे'' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा ''हमें यह समझ लेना चाहिए कि पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और फासिज्म एक ही चीज के अलग-अलग रूप हैं।''[33] जनतंत्र के नाम पर फासिस्ट राष्ट्रों से युद्धरत ब्रिटेन के खिलाफ आंदोलन शुरू करना अनुचित होगा ऐसे भावुक दुराग्रही लोगों को ललकारते हुये लोहिया ने कहा ''ब्रिटिश साम्राज्यशाही हिटलर और जापान के समान ही राक्षसी पाप है, वह वर्ग प्रभुत्व और उपनिवेशवाद की प्रेरक शक्ति बन चुकी है। साम्राज्यशाही के अन्त के बिना दुनिया सुरक्षित नहीं रहेगीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने फासिज्म को प्रोत्साहित किया है और इस खेल में उत्पादक क्रीड़ा अपनी औलादों को डर के मारे मारना चाहता है।''[34] अतः साम्राज्यशाही के खिलाफ ''सत्याग्रह तुरंत छेड़ा जायें'' यह मांग करते हुये लोहिया ने गांधीजी को 1 जून 1938 को एक पत्र लिखा। पत्र में विश्वशांति के लिए लोहिया ने एक अनुठी योजना प्रस्तुत की, उन्होंने लिखा, (1) सबको मै आजाद होंगी, वे अपने विधान का निर्णय बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित स्वराज्य पंचायत द्वारा करेगी। (2) सभी जातियों समान हैं और दुनिया के किसी हिस्से में कोई जातिगत विशेषाधिकार नहीं रहेगा। (3) दूसरे देश में

किसी सरकार की साख और लगी पूँजी जप्त कर ली जायेगी। (4) इन तीन उसूलों की पूर्ति पर चौथे उसूल निशस्त्रीकरण पर अमल आयेगा। गांधीजी ने लोहिया द्वारा प्रस्तुत इस योजना को तो स्वीकार कर लिया, लेकिन अनुशासन और अहिंसा के अभाव में तुरन्त सत्याग्रह छेड़ने में असहमति प्रगट की।[35] लोहिया ने महसूस किया कि कांग्रेस अन्दर एक ऐसा सबल पक्ष था, जो युद्धकाल में इंगलैण्ड के विरूद्ध संघर्ष करने के पक्ष में नहीं था। उनकी राय में इंग्लैण्ड उस समय जनतंत्र की रक्षा के लिए फासिज्म से लड़ रहा था। जवाहरलाल इस मत के प्रमुख प्रवक्ता थे। 21 मार्च 1939 को हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित प्रेस के साथ इन्टरव्यू के अनुसार, उन्होंने कहा "भारत की सहानुभूति उग्ररूप से फासिस्ट विरोधी है इसलिए वह चाहेगा कि फासिज्म पराजित हो और लोकतंत्र की जीत हो।"[36] श्री नेहरू के जीवनकार प्रसिद्ध पत्रकार एवं वर्तमान में कांग्रेस (ई) के प्रमुख प्रवक्ता और सांसद एम.जे.अकबर के अनुसार "नेहरू भारत को मित्र राष्ट्रों के साथ चाहते थे। उनकी एक मात्र शर्त यह थी कि यह निर्णय स्वयं भारतीयों का होना चाहिए और राज द्वारा देश पर थोपा हुआ नहीं होना चाहिए।"[37] कुल मिलाकर उनका रूख यह था कि अगर अंग्रेज सरकार किसी न किसी रूप में हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता देने के लिए वचनबद्ध हो जाये, तो वे उसके युद्ध प्रयत्नों में शर्त के साथ सहयोग करना चाहेगें। लेकिन इंग्लैण्ड द्वारा प्रथम महायुद्ध के बाद भारत को डोमिनियन दर्जा दिये जाने के वादे की जो दुर्गति की गई थीं, उसके कटु अनुभव को देखते हुये, ठीक ही, लोहिया ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि सौदेबाजी के जरिए आजादी हासिल करने के स्वप्न देखना सिवाय मृग मरीचिका के कुछ नहीं था। अतः लोहिया ने आगे बढ़कर महायुद्ध में न तथाकथित लोकतंत्र के पक्ष का, न ही साम्राज्यवाद के विरोध में फासिस्टों का पक्ष लेने की कार्य योजना प्रस्तुत की

पहली गिरफ्तारी :

डा0 लोहिया की दो गिरफ्तारियां, हुई ब्रिटिश शासन के दौरान हुई दोनों गिरफ्तारियों ने लोहिया जी को और अधिक सशक्त तथा ऊर्जामयी बनाया वो किसी गिरफ्तारियों से घबरायें नहीं क्योंकि जो भी गिरफ्तारियां हुई उनको बड़े सहजता एवं सरलता से सहन किया तथा कभी जीवन में उन्होंने पलायन नहीं किया।

लोहिया के इस प्रभावी युद्ध विरोधी जिहाद का परिणाम यह निकला कि सरकार ने उन्हें 24 मई, 1939 को कलकत्ता में एक सभा में भाषण देने के तत्काल बाद गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तारी थी, दूसरे दिन ये जमानत पर रिहा हो गये। लोहिया ने अपने मुकद्दमें की खुद पैरवी की, परिणामस्वरूप 14 अगस्त, 1939 को कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ने उन्हें रिहा कर दिया।[38] इस बीच लोहिया को पता चला कि श्री नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद के नाम पर विश्वशांति कांग्रेस को ''हिन्दुस्तान को आजादी देने के बदले में युद्ध में सहयोग'' का तार भेजा है। लोहिया ने धोखेंबाजी की सौदेबाजी का विरोध करने का निश्चय किया। उन्होने 24 जून 1939 को बम्बई में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में इस मुद्दे पर राजेन्द्र बाबू से खुलासा करने को कहा, उनके टालने पर लोहिया ने कहा ''आज ही सफाई होनी चाहिये नहीं तो सभा में प्रगट रूप से इस पर बोलूँगा।'' आखिर में सफाई दी गई कि तार में पलटन में सहयोग की बात नहीं है। इसी बैठक में दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों द्वारा असहयोग आंदोलन के संबंध में गाँधी द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव पर चल रही बहस में लोहिया ने संशोधन पेश करते हुये ''ब्रिटिश भारतीय'' शब्द की जगह केवल भारतीय शब्द रखा जाये दूसरे दक्षिण अफ्रिका में सिविलनाफरमानी के प्रयत्न में सभी दबी कौमें, भारतीय, नीग्रो अरब चाहे गोरी चमड़ी वाले गरीब लोगों को भी शामिल किया जाये।[39] श्री नेहरू एवं अन्य बड़े कांग्रेसी नेताओं के समर्थन से यह संशोधन स्वीकार कर लिये गये। लेकिन बाद में

गाँधी ने महादेव भाई द्वारा कहला भेजा कि या तो अ0भा0कॉ0क0 पूरा का पूरा प्रस्ताव ज्यों का त्यों स्वीकार करे या वापिस करे दे। लोहिया ने यह सोचकर कि यह आंदोलन गाँधी जी को ही चलाना है अतः यदि वो बात उन्हें स्वीकार नहीं है तो कम दरजे की सिविलनाफरमानी और बिल्कुल सिविलनाफरमानी न होने में चुनाव करते हुये उन्होंने संशोधन वापस ले किये। बैठक के बाहर सुभाषचन्द्रबोस द्वारा लोहिया से पूछने पर कि शक्तिशाली कौन है, महात्मा गाँधी या कांग्रेस दल ? लोहिया ने व्यक्त किया ''गाँधीजी की शक्ति कांग्रेस दल से निश्चय ही बड़ी थी। इस द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव से गाँधी की इच्छा अधिक बड़ी थी।[40]

इस प्रकार गाँधी, राष्ट्रीय आंदोलन और अंतरराष्ट्रीय घटनाचक्र तीनों के बारे में लोहिया की समझ एकदम सटीक, दो टूक और यथार्थ पर आधारित थी। वो अपनी सीमा और क्षमता दोनों से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए उनके सोच ओर आचरण में एक खुलापन था और शयद यही गाँधी के प्रति उनकी चाह और गाँधी द्वारा उन्हें पसंद किये जाने पर एक कारण भी था। जैसा कि आशंका थी,। सितम्बर, 1939 को हिटलर ने पौलेण्ड पर हमला कर दिया और तीन सितम्बर को ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। दिल्ली में वायसरॉय लिनलिथगो ने, ब्रिटिश सम्राट की घोषण के पूर्व ही, बिना भारतीय नेताओं से विचार विमर्श के, भारत की ओर से जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[41] पं. नेहरू उस समय चीन से स्वदेश लौट रहे थे। 8 सितम्बर को रंगून में ऐसोसियेट प्रेस को दिये इन्टरव्यू में वो मित्र देशों के प्रति अपनी सहानुभूति को छिपा न सके, उन्होंने कहा ''हम जर्मनी, इटली तथा जापान के उदेत होते साम्राज्यवादों के विरूद्ध हैं, और यूरोप के अस्त होते साम्राज्यवादों के साथ।''[42]

14 सितम्बर, 1939 को कांग्रेस कार्य समिति ने एक बयान जारी किया जिसका मसौदा श्री नेहरू ने तैयार किया था। बयान में सरकार से युद्ध के

उद्देश्य प्रकट करने को कहा गया था और आश्वासन दिया गया था कि आजाद हिन्दुस्तान ही युद्ध में सहयोग देगा। गाँधी जी ने बयान का अनुमोदन करते हुये उसके प्रस्तावक श्री नेहरू के बारे में कहा "इस बयान के लेखक एक कलाकार हैं। हांलाकि वो साम्राज्य के किसी भी स्वरूप के विरोधी हैं लेकिन वो अंग्रेजों के मित्र हैं। वास्तव में विचारों और वनावट में वो एक भारतीय होने की तुलना में अंग्रेज ज्यादा हैं।"[44] कांग्रेस के सामाजवादी खासतौर पर लोहिया कांग्रेस द्वारा युद्ध को लेकर अपनाई जाने वाली इस ढुलमुल नीति से नाराज थे। उन्होंने, वाइसराय से मिलने के बाद गांधी द्वारा दिये बयान को सुनकर, जिसे आल इंडिया रेडियों द्वारा काट-छांट कर प्रसारित किया गया था, उसके विरोध में एक पत्र गांधी को लिखा। गांधी ने तत्काल "हरिजन" में एक दूसरा वक्तव्य प्रकाशित कर कहा कि वेस्ट मिनिस्टर एबे के साथ चाहे रूस का क्रेमलिन चाहे अमरीका का जेफरसन स्मारक किसी भी बरवादी से उन्हें क्लेश होगा।[45] गाँधी जी ने लोहिया से यह भी कहा कि वो जब भी उनके किसी भी वक्तव्य में ऐसी कोई बात देखें उन्हें तत्काल लिखें। इस प्रकार लोहिया को उन्होंने जैसा लोहिया अनुभव करें उसे उनसे कहने की आजादी प्रदान कर दी जो विरलों को ही नसीब थी।

गाँधी को सत्याग्रह के लिए उकसना :

डा0 लोहिया ने हमेशा गाँधी को अपना सबसे अधिक नजदीक और प्रिय समझा क्योंकि वे उनकी कार्यशैली में सबसें अधिक प्रभावित और सन्तुष्ट थे। उनकी सोच गाँधी की तरह थी तथा लोहिया और गाँधी अलग-अलग जरूर थे परन्तु विचार धारायें व अवधारणायें एक ही थी।

गांधी को सत्याग्रह के लिए उकसाना :

लोहिया जानते थे कि अंग्रेजी शासन के खिलाफ कोई भी सत्याग्रह

केवल गाँधी जी ही चला सकते हैं। इसलिए उन्होंने अपना ध्यान गांधी को सत्याग्रह शुरू करने के लिए उकसाने की ओर लगाया। लोहिया ने गांधी के पत्र ''हरिजन'' के 1 जून के अंक में एक लेख लिखा- ''सत्याग्रह तुरंत''। गाँधीजी ने उसी अंक में दूसरा लेख ''सत्याग्रह अभी नहीं'' लिखकर- लोहिया के लेख का उत्तर भी दिया।[46] लोहिया का तीर निशाने पर लगा। उन्होंने गाँधी को सत्याग्रह के पक्ष और विपक्ष में, तात्कालिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में सोचने और यह मंजूर कर लेने पर मजबूर किया कि सत्याग्रह की आवश्यकता तो है चाहे फिलहाल न हो। लोहिया निराश नहीं हुयें, लगातार प्रयास उनकी कार्यशैली का प्रमुख अंग था। उन्हीं दिनों उन्होंने ''शस्त्रों का नाश हो'' लेख लिखकर उन भद्र और बुद्धिवादी भारतीयों पर आश्चर्य व्यक्त किया जो शस्त्रों की आरती उतार रहे थे। ''वे पागल हैं। शस्त्रों का नाश हो।'' लोहिया ने घोषित किया। 11 मई, 1940 के दिन दोस्तपुर, जिला सुल्तानपुर (उ0प्र0) में आयोजित जिला राजनैतिक सम्मेलन में बोलते हुये, तीस वर्षीय लोहिया ने कहा ''शोषण और गुलामी की बुनियाद पर खड़ी ब्रिटिश साम्राज्य की विशाल इमारत अब लड़खड़ा रही है। देश के दस प्रांतों में लोकप्रिय सरकारों की जगह गवर्नरी निरंकुशता कायम कर दी गई है। इसलिए अब सत्याग्रह छेड़ने के लिए यथेष्ठ औचित्य मौजूद है।''[47]

दूसरी गिरफ्तारी :

लोहिया के इस अनवरत युद्ध और साम्राज्य विरोधी प्रचार के घबराकर सरकार ने 7 जून, 1940 को दोपहर के समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के स्वराज्य भवन, इलाहाबाद स्थित कार्यालय से उन्हें गिरफ्तार कर लिया।[48] गिरफ्तारी के बाद उन्हें इलाहाबाद से सुल्तानपुर लाया गया जहाँ उन पर मुकदमा चलाया गया। 1 जुलाई, 1940 को भारत सुरक्षा कानून के तहत मजिस्ट्रेट मकबूल अहमद ने उन्हें दो वर्ष की सख्त कैद की सजा सुनाई। अदालत ने लोहिया के बारे में लिखा

''गुनहगार उच्चश्रेणी के विद्वान और सुसंस्कृत सज्जन हैं। लेकिन हमें सरकार और जनता के बीच में होने वाली झंझट से सरकार को बचाना है। ऐसे समय में गुनहगार के दोस्तपुर जैसे भाषण के असर को खत्म करना चाहिए, इसी दृष्टि से मैं उनको दो बरस की सख्त कैद की सजा देता हूँ।[49] लोहिया की गिरफ्तारी से विचलित गाँधी ने अपने एक पाठक के इस प्रश्न का उत्तर देते हुये कि क्या वो उनके प्रिय राममनोहर कि गिरफ्तारी के खिलाफ प्रतिकार आंदोलन शुरू करेगें ? अपने पत्र हरिजन के 15 जून 1940 के अंक में लिखा '' यह सच है कि डा0 लोहिया पहले से अधिक मेरे नजदीक आये हैं। हर एक गिरफ्तारी से मेरा मानसिक प्रातिकार पुकार उठता है। किन्तु युद्ध के खिलाफ मेरे पास कोई उपाय योजना नहीं हैं। इस वास्ते जिस तरह में युद्ध सहता हूँ वैसे ही युद्ध खारों की ये अत्याचारी कृतियां भी सहता रहता हूँ।'' इसके वाद गांधीजी ने 25 अगस्त के ''हरिजन'' में लोहिया द्वारा अदालत में दिये बयान के महत्वपूर्ण अंशों को छापकर टिप्पणी लिखी तो उनको सख्त कैद क्यों ? और आगे लिखा ''डा0 लोहिया और अन्य कांग्रेस वालों की सजायें हिन्दुस्तान को बांधने वाली जंजीर को कमजोर बनाने वाले हथोड़े के प्रहार हैं। सरकार कांग्रेस को सिविल नाफरमानी आरंभ करने और आखिरी प्रहार करने के लिए प्रेरित कर रही है, यद्यपि कांग्रेस जब तक इंगलिस्तान मुसीबत में है संघर्ष स्थगित करना चाहती है। इस प्रकार लोहिया गांधी को संघर्ष के लिए राजी करने के अपने प्रयत्नों में विचारों से अधिक अपने कर्म के द्वारा सफल होते साफ दिखाई पड़ते हैं। गांधी पर लोहिया एवं उनके समाजवादी साथियों का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था, तथा 15 सितम्बर, 1940 को बम्बई में अ0भा0का0 कमेटी की बैठक में उन्होंने कहा ''जब तक डा0 राममनोहर लोहिया और श्री जयप्रकाशनारायण जेल में है, तब तक मैं खामोश नहीं बैठ सकता।''

उधर लोहिया को अगस्त, 1940 में सुल्तानपुर से बरेली जेल में ले जाया गया था। उनके साथ कैद में अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया लेकिन उसके बाद भी लोहिया इन सारे कष्टों को दिलेरी के साथ सहन कर रहे थे।

वर्ष 1941 के अन्त में 6 दिसम्बर के दिन पर्लहार्बर पर जापानी आक्रमण के साथ ही महायुद्ध के परिदृश्य में महत्वपूर्ण मोड़ आ गया। अमरीका सक्रिय रूप से युद्ध में शामिल हो गया और राजनैतिक विकास की गति में अचानक तेजी आ गई। फरवरी, 1942 में चीनी नेता चियांगकाइ शेक और उनकी पत्नी भारत में आये और उन्होंने भारतीय नेताओं से निवेदन किया कि वे जापान के विरूद्ध युद्ध प्रयत्नों का समर्थन करें। उधर ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स में चर्चिल ने यह कहकर कि युद्ध प्रयत्नों के उद्देश्यों की घोषणा करने वाला एटलांटिक चार्टर भारत पर लागू नही होता, ब्रिटिश पक्ष से सहानुभूति रखने वाले इंगलैण्ड एलट भारतीय नेताओं को निराश कर दिया। और इस सम्बन्ध में लोहिया और उनके साथियो के विचारों की सच्चाई प्रगट होने लगी। लेकिन जापानियों द्वारा पर्लहार्बर पर हमले के छै माह के भीतर मलाया, इंडोनेशिया, फिलीपाइन, थाइलैण्ड, हांगकांग की जीतने के बाद सिंगापुर में प्रवेश और रंगून के पतन के तत्काल बाद से फिर से राजनैतिक घटनाचक्र में जबरदस्त मोड़ आ गया। सभी की निगाहें भारत की ओर मुडने लगी। परिणामस्वरूप चीन और अमरीका की सरकारों के दबाव में आकर ब्रिटिश सरकार ने युद्ध प्रयासों में भारतीय जनता के सहयोग को सुनिश्चित करने सर रिचर्ड स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजने का निश्चय किया। श्री क्रिप्स भारत के लिए नये नही थे। इसके पूर्व 1939 में युद्ध आरंभ होने के पहले जवाहरलाल नेहरू से मिलने अपनी व्यक्तिगत यात्रा पर भारत आ चुके थे। अतः ब्रिटिश सरकार ने उन्हें भारत भेजने की घोषणा के साथ, उनके भारत पहुचने के पूर्व ही अनुकूल वातावरण के निर्माण की खातिर श्री नेहरू, जिन्हें 30 अक्टूबर 1940 को व्यक्तिगत सत्याग्रह के पूर्व गिरफ्तार कर

लिया गया था, उन्हें एवं उनके साथ ही अच्युतपट बर्धन, लोहिया और नरेन्द्र देव जैसे अन्य नेताओं को रिहा कर दिया। जैसी क संभावना थी श्री नेहरू ने जेल से बाहर निकल कर जापानियों का प्रतिरोध, जिसमें सशस्त्र प्रतिरोध भी शामिल था, करने की घोषणा की यदि उन्होंने भारत में घुसने की कोशिश की। उधर भारत में डेरा डाले चीनी राष्ट्रपति चांग काइशेंक और उनकी पत्नी ने भी श्री नेहरू के द्वारा गाँधीजी को ब्रिटिश सरकार का बिना शर्त समर्थन करने के लिए राजी करने का प्रयास किया। लेकिन महात्मा गाँधी अब इस तरह की कोई भी सलाह सुनने तक को तैयार नहीं थे। वो अपना मन बना चुके थे। 22 मार्च, 1942 को श्रीमान क्रिप्स विमान द्वारा दिल्ली पहुँचे। लेकिन गाँधी ने क्रिप्स से मुलाकात के बाद उनके प्रस्तावों को यह कहकर कि "वे एक डूबते हुये बैंक पर दिया गया तिथिहीन चेक" थे ठुकरा दिया। गाँधीजी ने श्री नेहरू को क्रिप्स प्रस्ताव स्वीकार करने के खिलाफ पहले से ही सचेत कर दिया था। 27 मार्च 1942 के दात के डाक्टर के एक बिल के पीछे नेहरू के नाम नोट पर गांधी ने लिखा "ये प्रस्ताव देश को बर्बाद कर देगें"।

युद्ध नीति के प्रश्न पर नेहरू से मोह भंग :

लोहिया और नेहरू के बीच बहुत से मतभेद थें उनके विचारो में सरसता और गंभीरता नही थी नेहरू की सोच लोहिया से विल्कुल विपरीत थी, वे हमेशा भारतीय समाज को पश्चात दृष्टि कोण में देखते थे उन्होंने हमेशा भारतीय राजनीति को समाजवाद के दृष्टिकोण में नही देखा क्योंकि उनकी सोच में पाश्चात विचारधारा का दर्शन समाया हुआ था। लोहिया ने इस बीच क्रिप्स मिशन के ऊपर "क्रिप्स रहस्य" शीर्षक से एक अन्य लेख लिखा, जो काफी प्रचारित हुआ। लेख की साम्रग्री को लेकर भी लोहिया और गाँधी के बीच लम्बी बहस चली। लेख में लोहिया ने लिखा था कि "ब्रिटिश राज्य की विदशता है कि ब्रिटिश साम्राज्य बना रहे"। गांधी द्वारा इसका आशय पूछे जाने पर लोहिया ने बताया कि ब्रिटिश लोगो को, भारतीय

स्वतंत्रता की मांग का औचित्य समझ में आ जाने पर भी, उसे स्वीकार कर पाना असंभव होगा। क्योंकि वे अपने वर्तमान रहन सहन के स्तर को कभी कायम न रख सकेगें। यदि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य छोड़ना पड़े, विशेषकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य।'' कुल मिलाकर लोहिया युद्ध प्रारम्भ होने के बाद से लगातार गांधी को अंग्रेजो के खिलाफ लड़ाई शुरू करने को तंग करते रहते थे। लोहिया की इस मुहिम के परिणाम भी निकलने लगे थे। गाँधी ने हरिजन में ब्रिटेन को भारत छोड़ देने की जो मांग की थी, उसको अमलीजामा पहनाते हुये मीरा बहन के हाथों ''भारत छोड़ो'' प्रस्ताव का मसौदा मई, 1942 में इलाहाबाद में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भिजवाया। इस प्रस्ताव पर हुई बहस में श्री नेहरू ने गोल माल का रूख अख्तियार किया। नेहरू के इस रवैये से खीझकर उनके मित्र मौलान अब्दुलकलाम आजाद तक ने लिखा कि युद्ध को लेकर ''नेहरू के विचार भ्रामक और तर्कहीन थे। नेहरू के इस तरह के व्यवहार की उस समय हद हो गई तब 20-21 जुलाई को उत्तरप्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक में उन्होंने अध्यक्षता करते हुये उन भारतीय उद्योगपतियों को बेवकूफ कह डाला जो युद्ध साम्रगी सप्लाई करने से इन्कार कर रहे थे। बैठक में उपस्थिति लोहिया को जब यह सहन नहीं हुआ तो उन्होंने बीच में रोकते हुये कहा कि ''श्री नेहरू लोगों को अप्रमाणिकता सिखा रहे है।'' इस घटना के बाद से नेहरू के प्रति लोहिया के विचारो में भारी परिवर्तन आ गया। लोहिया जो अपने समाजवादी विचारों और आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण के कारण कांग्रेस के नेताओं में अभी तक नेहरू को अपने अत्याधिक निकट पाते थे- धीरे धीरे महायुद्ध को लेकर कांग्रेस की नीति के प्रश्न पर उनसे दूर हटते नजर आने लगे। यहाँ तक कि लोहिया सार्वजनिक रूप से सार्वजनिक मंच से नेहरू की युद्ध नीति की तीखे शब्दो में आलोचना करने लगें। उन्हीं दिनों आयोजित अल्मोड़ा के जिला राजनैतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से बोलते हुये उन्होंने श्री नेहरू के प्रति अपनी नापसन्दगी प्रगट करने हुये उन्हें ''तुरन्त

बदल कलाकार'' कहकर संबोधित किया। लोहिया का यह भाषण इलाहाबाद के अखबारो में मुखपृष्ठ पर छाया। लोहिया ने आगे कहा कि ''यदि नेहरू अपना मार्ग ठीक नही करेगें तो नौजवान जो आज दो आदमियो की बात सुनते हैं, केवल एक ही आदमी की बात सुनेगें।'' अल्मोड़ा सम्मेलन के बाद लोहिया श्री नेहरू से मिलने उनके निवास पर गये और बकौल लाहियावादी ने नेहरू पर कुछ असर डाला जिसके फलस्वरूप वे विदेशी शासको के प्रति कठोर रूख अपनाने के लिए सहमत हुये। नेहरू को राजी करने के बाद लोहिया ने 29 जुलाई 1942 के दिन गाँधीजी से फिर मुलाकात की। लोहिया की एक ही रट थी जल्दी लड़ाई छेड़ो। दर्द भरी आवाज में गांधी ने कहा ''मैं तुम्हारी उतावली समझता हूँ पर मैं तो उतावला होता, मैं बूढ़ा हूँ। जबाब सुनकर लोहिया के चुप रह जाने पर गांधी ने उन्हें धैर्य बधाते हुये दस दिन और रूक जाने को कहा। इस प्रकार अगस्त 1942 के ऐतिहासिक भारत छोड़ो आंदोलन की जमीन की तैयारी में बावजूद कांग्रेस के श्रेष्ठ वर्ग के अंग्रेज मित्र होते हुये, लोहिया और उनके नौजवान समाजवादी साथियों ने गांधी को, जो युद्ध के प्रारम्भ में अंग्रेज मित्र कांग्रेस नेताओं से प्रभावित नजर आते थें 1942 के वर्ष तक अंग्रेजी साम्राज्यशाही के खिलाफ लोकयुद्ध छेड़ने के लिए राजी कर लिया था।

भारत छोड़ो आन्दोलन :

लोहिया और नेहरू भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रमुख अगुवां थे क्योकि इन्होंने हमेशा भारतीय आन्दोलन को बनाने के लिये व्यापक तौर पर कई प्रकार के प्रयास किये भारत छोड़ो आन्दोलन भारत की स्वतंत्रता का प्रमुख आन्दोलन था इस आन्दोलन के द्वारा अधिक ब्रिटिश सरकार की बहुत सी दमनकारी नीतियों को परास्त किया। जैसा कि गाँधी ने लोहिया से कहा था वैसे ही ठीक दस दिन के बाद, 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में ''भारत छोड़ो'' प्रस्ताव पूरे बहुमत से स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव के समर्थन में बोलते हुये लोहिया

ने कहा ''पिछले कुछ महीनों में ब्रिटिश राज के प्रति हिन्दुस्तान की भावना में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। ब्रिटिश राष्ट्र अब वैसा अजेय राष्ट्र नही है। हिन्दुस्तान के सवाल पर ब्रिटेन ने जो मार्ग पकड़ा है, उसके खिलाफ आज असंतोष चरम सीमा पर पहुँच चुका है। गाँधी ने इस अवसर पर राष्ट्र के नाम संदेश देते हुये ''करो या मरो'' का मंत्र दिया। और यह मंत्र देकर क्रांति के अगुआ सेनापति गाँधी ने भारत के समस्त निवासियों के दिलो में क्रांति की ज्वाला भड़का दी। लोहिया जैसे इन्हीं क्षणों की युगों से प्रतीक्षा कर रहे थे। हांलाकि उन्हें अभी यह निश्चित नहीं मालूम था कि इस महत्वपूर्ण लड़ाई में उनकी क्या भूमिका होगी। हाँ इतना उन्होंने तय कर रखा था कि जहाँ तक संभव होगा, इस बार पुलिस के हाथ नहीं पडेगे। यह बात, बम्बई की एतिहासिक बैठक में शामिल होने के पूर्व, मुजफ्फरपुर बिहार में सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों की सभा में लोहिया द्वारा दिये भाषण के इन अंशो को पढ़कर प्रगट होती है। उन्होंने कहा था ''इस बार गफलत न होने पावे। आखरी लड़ाई होगी। क्रांति की तैयारी किये रहो। जैसे ही बम्बई से हरी झंडी दिखाई जाये बस, मौका मिलते ही टूट पड़ना होगा। इस बार पार्टी के जो सदस्य गिरफ्तार हो जायेगें वे निकम्मे समझे जायेगें असली माने में यह क्रांति समाजवादियों को ही चलानी है।'' 9 अगस्त, 1942 के बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध भी कर दिखाया। जैसा कि अनुमान था, 9 अगस्त 1942 की अलसुबह सरकार ने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम एवं योजनानुसार, गाँधी एवं कांग्रेस के अन्य बड़े नेताओं को बम्बई एवं अन्य शहरो में, जो जहाँ थे वहाँ से, गिरफ्तार कर जेलो में ठूंस दिया। लेकिन लोहिया एवं उनके समाजवादी नौजवान साथियों ने पूर्व में तय कर रखे निश्चय के अनुसार अपने आप को सामूहिक अथवा व्यक्तिगत गिरफ्तारी से बचा लिया। और फिर जैसा गाँधी ने आहवान किया था, जनता ने अपने आपको आजाद मानकर, आंदोलन का नेतृत्व भी अपने हाथों में संभाल लिया। बम्बई के साथ ही अन्य शहरों, नगरों व कस्वो में विद्रोह की आग

पूरी ताकत से भभक और भड़क उठी। अधिकतर थाने, रेलवे स्टेशन, रेल की पटरियाँ, टेलीफून के तार, डाकघर कुल मिलाकर ब्रिटिस सत्ता के प्रतीक केन्द्र व्यापक जन रोष के शिकार हुये। दूसरी ओर सरकार का दमनचक्र भी अंग्रेजी कूरता के नये रूपो के साथ प्रगट हुआ।

कांग्रेस रेडियो का संचालन :

ऐसे स्वतः स्फूर्त लेकिन असंगठित नेतृत्वविहीन आंदोलन को संगठित करने, दिशा और नेतृत्व प्रदान करने, विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति का कार्य कर रहे विभिन्न गुपों के बीच समन्वय कायम करने का प्रयास समाजवादियों ने ही किया। भूमिगत रहकर इतने विशाल आंदोलन को संभालने की विशाल जिम्मेदारी संभव नहीं थी। लेकिन प्रयास भी छोटा नहीं था। जयप्रकाशनारायण उस समय हजारी बाग की जेल में बंद थे। लेकिन लोहिया, अच्युत पटवर्धन, सादिकअली, पुरषोत्तम विक्रमदास, सदाशिव महादेव जोशी, साने गुरूजी, कमलादेवी चट्टोपाध्याय अरूणा आसफ अली, पूर्णिमा बनर्जी आदि ने मिलकर एक संचालक मंडल का गठन किया। संगठन का कार्य अच्युत पटवर्धन ने संभाला। लोहिया पर नीति निर्धारण का कार्य सौंपा गया। लोहिया ने अपने विचार और कार्यक्रम में मानव हत्या और मानव हानि को छोड़कर भूमिगत आंदोलन चलाने की योजना प्रस्तुत की। इसके अनुसार तार-यंत्र तोड़ना, इथियार ढ़ोने वाली रेलगाड़ियों को बारूद से उड़ाना, यातायात को बेकार करना आदि भूमिगत आंदोलन के प्रमुख अंग थे। केन्द्रीय संचालन मंडल द्वारा कार्यक्रम की मंजूरी के बाद उसका पैगाम देश के हर प्रांत में पहुंचाने की योजना बनाई गई। इस योजना में बुलेटिन, अखबार, पुस्तिकायें-परचों के अलावा गुप्त रेड़ियों केन्द्र चलाने की योजना भी शामिल थी। तदनुसार, लोहिया की प्रेरणा से बम्बई और कलकत्ता में दो गुप्त रेडियों केन्द्रो की स्थापना की गई। बम्बई रेडियों केन्द्र का काम चलाने में उषा मेहता लोहिया की सहायिका थीं। इस केन्द्र का नाम "कांग्रेस रेडियों" रखा गया था।[50] 13

अगस्त, 1942 से लेकर 14 नवम्बर, 1942 तक यानि कि 94 दिनों तक रेडियों ने जिस प्रकार क्रान्ति का यशस्वी मार्गदर्शन किया वह अभूतपूर्व है। रेडियो से प्रसारित होने वाले अधिकतर भाषण लोहिया के होते थे, जिन्हें वे अपनी तीखी वाणी में प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त करते थे। अंत में पुलिस ने जब सुराग लगाकर रेडियों केन्द्र पर छापा मारा, लोहिया वहाँ से निकल चुके थे। गिरफ्तार हुये दो साथियों ने जुल्म सहकर भी लोहिया का ठिकाना नहीं बताया। रेडियों के अलावा क्रान्ति के विस्तार के लिए लोहिया ने एक पुस्तिका (नंगजू आगेमबढ़ो) और ''करेंगे या मरेंगे'' नाम के भूमिगत प्रपत्रों के प्रकाशन और वितरण का कार्यक्रम भी चलाया।

बम्बई, कलकत्ता में लोहिया के पीछे बढ़ते जा रहे पुलिस के जाल से बचने के लिये लोहिया नेपाल पहुंच गये।

शारीरिक उत्पीड़न और मानसिक यातना :

डा0 लोहिया जी ने वहुत से कष्ट सहे उनमें बहुत-सी शरीरिक और मानसिक यातनायें और पीड़ाये थी वो कभी यातनाओं और पीड़ाओं से घबरायें नहीं वो अपने आप में एक सशक्त और यातना सहन करने वाले एक महान क्रान्तिकारी और पथप्रदर्शक थे।

लोहिया की गिरफ्तारी बम्बई में हुई थी इसलिए बम्बई प्रांत अथवा कि उनके संयुक्त प्रांत की किसी जेल में उन्हें रखा जाना चाहिए था। लेकिन सरकार की नियत खराब थी। नाजी कैम्पों से अधिक यन्त्रणा देने वाला अंग्रेजी अड्डा, पैशाचिक-नारकीय कृत्यों के लिए वदनाम ''जेहाँ मध्ययुगीन तरीकों से तो यातनायें दी जाती थी, किन्तु नई किस्म की अजीब यातनायें भी दी जाती थीं।''[51] लाहौर का किला था। भगत सिंह को भी इसी किले में रखकर यातनायें दी गई थी। 18 सितम्बर, 1943 को अमृतसर में गिरफ्तार कर जय प्रकाश को भी इसी किले में

लाकर रखा गया था।[52] अतः लोहिया को भी लाहौर किले की कोठरी में लाकर बंद कर दिया गया। प्रारंभ में कोठरी तक हर समय बंद गाड़ी में लाये जाते रहने के कारण, लम्बे अरसे तक लोहिया को यह पता न चल सका कि वह दुनिया के किस भूखण्ड में कहां बंद किये गये हैं। लाहौर जेल की कोठरी सर्द, बन्द और अँधेरी थी। लोहिया को हर समय वजनी हथकड़ी पहने रहना षड़यंत्रता था। वहां के अफसर और कारकून सताने और यंत्रणा देने में माहिर थे। एक बड़ा अफसर जो लोहिया के लिए खास मुकर्रर किया गया था, वह भगतसिंह के लिये भी मुकर्रर किया गया था।[53]

कैबीनेट मिशन का विरोध :

लोहिया जी ने हमेशा केबिनेट मिशन का विरोध किया जो उसके पक्ष में नहीं थे उनका मुख्य कारण प्रान्तीय के बिल्कुल खिलाफ थे। उनके दृष्टिकोण में इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री एटली के प्रस्ताव से सहमत नही थे। उन्होंने हमेशा इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री का विरोध किया।

उस समय कैबीनेट मिशन दिल्ली आया हुआ था। इंग्लैण्ड में चुनाव के बाद लेबर पार्टी की जीत हो चुकी थी और प्रधानमंत्री एटली ने भारत को जल्दी से जल्दी आजादी देने की दृष्टि से कुछ प्रस्तावों सहित अपनी कैबीनेट के तीन सदस्यों को भारत भेजा था। उनमें एक प्रस्तावी संविधान सभा के गठन के बारे में था। लेकिन उसका गठन बालिग मताधिकार के आधार पर न होकर, प्रांतीय विएंायिकाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष चुनावों के जरिये किये जाने का प्रावधान था। हिन्दुस्तान को तीन क, ख और ग भागों में बांटा गया था, इसके साथ ही महत्वपूर्ण मामलों में लींग और जिन्हा को निषेधाधिकार दिया गया था। लोहिया और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को यह सब कतई मन्जूर न था। अतः अरूणा आसफ अली, जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन और राममनोहर लोहिया ने कैबीनेट मिशन पर जारी किये गये अपने संयुक्त

ब्यान में कहा "प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ब्रिटिश प्रभुत्व के पूरी तरह खत्म हुये बिना पूर्ण आजादी की वात, वेमतलव है। एक मात्र ईमानदार रास्ता यह है कि बालिग मताधिकार के आधार पर सीधे चुनाव द्वारा पूर्णतः नई संविधान सभा बनाई जाय।"[54] समाजवादी मेहसूस कर रहे थे कि बातचीत के माध्यम से खंडित देश में खंडित आजादी प्राप्त होने की आशंका है। अतः उन्होंने स्वतंत्र हिन्दुस्तान के ऐसे राज्य के निर्माण के लिए जो एकताबद्ध रूप में गौरवशाली तरीके से विकसित हो- जनता की शक्ति के एकमात्र हथियार पर निर्भर रहने की मुहिम, इस दिशा में कार्य और संगठन के सृजनात्मक कदम को अंतिम उभान की तैयारी करने का निश्चय किया। समाजवादियों के साथ ही, गाँधीजी भी कैबिनेट प्रस्तावों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। कैबीनेट मिशन के साथ बातचीत शुरू होने के समय से ही गाँधीजी कांग्रेस के नेताओं को चेता रहे थे, उन्होंने कहा था "अपने इस नये काम में आप घुटने टेक कर भी प्रवेश करेंगे, तो उससे आपको कोई लाभ न होगा। उन लोगों के साथ हुई बातों से मुझे संतोष नहीं हुआ है। इसके विपरीत मेरी शंका अधिक गहरी बनी है। संविधान सभा में जाने में भी कोई सार नहीं है"।[55] लेकिन कांग्रेस के चोटी के नेता उतावले बन गये थे, और गाँधीजी की उपेक्षा करके भी अंग्रेजों के हाथ से बंटवारे वाला स्वराज्य ले लेने के लिए तैयार हो गये थे। कांग्रेस की कार्यकारिणी ने गाँधीजी की उपेक्षा करके कैबिनेट मिशन की योजना स्वीकार कर ली। इस बैठक के बारे में गांधीजी के सेकेट्री प्यारेलालजी ने लिखा "कार्यकारिणी समिति की सभा गुमसुम होकर बैठी रहीं। कुछ देर तक कोई कुछ भी नहीं बोला। अपनी अचूक सावधानी के साथ मौलाना साहेब ने तुरन्त ही परिस्थिति की बागडौर अपने हाथ में ले ली। उन्होंने पूछा "आप क्या चाहते है ? क्या अब बापू को यहां और ज्यादा रोकने की जरूरत है ? कोई कुछ बोला नहीं।"[56] उस समय अपनी घोर उपेक्षा से आहत गाँधीजी ने सरदार पटेल से कहा "दोष किसी का नहीं। दोष परिस्थिति का है। मैं

देख रहा हूँ कि हम अलग-अलग दिशा में जा रहे हैं।[57] इसके बाद घटी घटनाओं पर निगाह डालने से निश्चय ही यह प्रतीत होता हैं कि लोहिया और उनके समाजवादी साथियों के तर्क और गाँधी की अन्तः प्रेरणा सच्ची थी। केवल राजनैतिक दृष्टि से विचार करने वाले कांग्रेस के बड़े नेता उसे समझ नहीं सके। सितम्बर, 1946 में अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। शुरू में मुस्लिम लीग उसमें शरीक नहीं हुई, बाद में हुईं। गाँधी की घोर उपेक्षा करके और समाजवादियों की सलाह की अनुसुनी करके की गई गलत कार्यवाहियों के फलस्वरूप इन सारी घटनाओं की जो परम्परा खड़ी हुई, वहीं अंत में देश को बंटवारे की दिशा में खींचे ले गई।

फरवरी, 1947 में ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि देर में देर जून, 1948 तक हम सत्ता सौंपकर हिन्दुस्तान से जाना चाहते हैं। इसी के साथ नये वायसराय के रूप में लार्ड माउण्टबेटन की नियुक्ति की गईं। इसके बाद की घटनाओं के बारे में प्यारेलालजी ने लिखा "जाने अनजाने पुराने नेताओं का सारा मण्डल, बाहरी आकाश की आकाशगंगा के नक्षत्रमण्डल की तरह, अगोचररीति से , दूसरे सूर्य की कक्षा में वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन की कक्षा में खिंचा चला जा रहा था। इसके बाद तो गाँधीजी की सलाह लिये बिना अथवा उन्हें खबर दिये बिना भी महत्व के निर्णय लिये गये।"[58]

इसका सबूत स्वयं गाँधीजी द्वारा नोआखंली से दिसम्बर, 1946 में नेहरू के नाम लिखे एक पत्र से मिलता है जिसमें उन्होंने साम्प्रदायिक समस्या और कैबिनेट मिशन के बारे में राजनैतिक परिस्थति के विषय में प्रगट अपनी राय को सही निरूपित करते हुये, नेहरूजी से कहा "इसलिए में सुझाता हूँ कि राष्ट्र के इस पुराने और परखे हुये सेवक के साथ बार-बार विचार विमर्श करते रहिए।"[59] परन्तु कांग्रेस के वरिष्ठ साथी अब गाँधीजी की सलाहानुसार चलने को तैयार नहीं थे। गांधीजी को इसका आभास हो चुका था। दूसरी और लींग और जिन्ना की हठ तथा

साम्प्रदायिक दंगों को फैलता दावानल उन्हें चिंतित किये हुये था। इस सबसे निकलने का एक रास्ता यह था कि कांग्रेस के थके हुये श्रेष्ठ वर्ग को अलग छोड़कर एक नई लड़ाई के लिए अंग्रजों को चुनौती देना। लेकिन इसकी संभावना न देखकर गाँधी ने युक्तिपूर्वक वाइसराय से कहा कि वे "अन्तरिम मंत्रिमण्डल को बर्खाख्वास्त कर दें और जिन्ना को नयी सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करें।" लेकिन उनकी इस पहल ने उनके खास अनुयायियों को और संशकित कर दिया। अब चूँकि सत्ता उनकी पहुंच में आ चुकी थी इसलिए गांधी उनके लिये बेकार हो चुके थे। नेहरू और जिन्ना में से कोई भी दूसरा पद स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था अतः बंटवारे के बाद अलग हिस्से के प्रथम पद पर आसीन होने की आतुरता में विभाजन स्वीकार कर चुके थे। ऐसी हालत में राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के लिए अब कोई भी लड़ाई अंग्रेज, कांग्रेस और मुस्लिम लींग तीनों के खिलाफ लड़नी पड़ती है।

गोवा में स्वतन्त्रता और नेपाल में लोकतन्त्र की मशाल जलाई :

डा0 राममनोहर लोहिया ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में पुर्तगालियों के राजा के खिलाफ आवाज उठाई क्योंकि गोवा को स्वतन्त्र करना चाहते थे। और वहां पर लोकतन्त्र की बहाली स्थापित की डा0 लोहिया का जीवन और उनका कृत लोकतन्त्र के मूल्यों को स्थापित करने में समाहित था। डा0 लोहिया ने हमेशा दुनिया में साम्राज्य शाही शक्तियों के खिलाफ आवाज उठाई और उन से संघर्ष किया।

डा0 राममनोहर लोहिया का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान पुर्तगाली शासन के आधीन हिन्दुस्तानी भाग गोवा में उनके द्वारा प्रारंभ किये गये स्वतंत्रता आंदोलन और राणाशाही के निरकुंश शासन में जकड़े नेपाल में लोकतन्त्र की बहाली के लिए जारी संघर्ष का लोहिया द्वारा अपने विचार और कर्म द्वारा दिये गये मार्गदर्शन और सहभाग के उल्लेख के विना, सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। मुझे लगता है दुनिया की दो प्रमुख साम्राज्यशाही शक्तियाँ अंग्रेज और पुर्तगाल तथा एशिया

की कुट निरंकुश राजसत्ता राणाओं के खिलाफ एक ही समय में जूझने वाले एक मात्र भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम सैनिक राममनोहर लोहिया ही थे। असल में अप्रैल 1945 में आगरा की अंग्रेजी जेल से रिहा होकर, लोहिया अपने जर्मनी के विधार्थीकाल के मित्र जूलियो मेनेजिस, जिनके साथ लोहिया ने जिनेवा पहुंच कर लींग ऑफ नेशन्स के सभाहाल में सीटियां बजाकर लोगों को ध्यान अंग्रेजी जुल्म की ओर खींचा था, उनके आमंत्रण पर आराम करने के उद्देश्य से गोवा की मनोहारी भूमि पर पहुंचे थे।[60] गोवा भारत का भारत का एक अंग होते हुये भी गत पांच सौ वर्षों से पुर्तगाली शासन का शिकार बना हुआ था। वहां की जनता को मामूली से छोटे-मोटे नागरिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। अतः 42 के आंदोलन के नायक लोहिया के गोवा पहुंचने की खबर गोवा भर में जंगल में आग की तरह फैल गई। लोग लोहिया को देखने और बात करने आने लगे जिनमें अध्यापक, विद्यार्थी, साभाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता भी शामिल थे। सभी ने लोहिया से उनके संघर्ष को दिशा निर्देश और नेतृत्व प्रदान करने के रूप में मदद की मांग की । इस आपस की बातचीत के फलस्वरूप 15 जून 46 को पंजिम में प्रारंभिक सभा करने की बात तय हुई। सभा में लोहिया ने गोवा वालों को नागरिक अधिकारों की बहाली एवं आजादी के लिए ''सविनय अवज्ञा का आंदोलन'' चलाने का कार्यक्रम दिया। और अगली बड़ी सभा 18 जून को मडगांव में आयोजित की गई। उस दिन लगभग 20,000 हजार की संख्या में गोवा वासियों की उत्साही भीड़ सभा स्थल को एक छोटी-मोटी फौजी छावनी में बदल दिया था। जगह-जगह पुलिस और फौज के दस्ते शस्त्रों के साथ तैनात किये गये थे। और ऐसे तनाव के आतंकी माहौल में लोहिया सभा स्थल पर पहुंचे। और जैसे ही बोलने के लिए खड़े हुये वहां के प्रशासक मिरान्डा ने लोहिया के पास पहुंचकर उन पर रिवाल्वर तान दी लेकिन लोहिया ने सहमें विना आत्मविश्वास के साथ मिरान्डा के रिवाल्वर वाले हाथ को नीचे झुकाते हुये कहा ''धीरज से काम लो, देखते नहीं

कितनी भीड़ है। खून खराबा होगा तो शांति कायम रहेगी क्या ? गोवा के इतिहास में वहां की जनता ने किसी बड़े अफसर को पहली बार अपमानित होते और उसे चुपचाप सहते हुये देखा। साथ ही पहली बार उन्होंने एक निहत्थे आदमी को सरकार की खुली अवज्ञा करते देखा। लोग दंग रह गये। इस प्रकार लोहिया ने गोवावासियों के मन में, अपने निर्भीक व्यवहार और साहस के साथ परिस्थिति का सभी के सामने सामना करके, स्वतन्त्रता की ज्योति जलाकर उन्हें हिम्मत के साथ संघर्ष चलाने के लिये प्रेरित किया।

डा0 राममनोहर लोहिया ने गोवावासियों के मन में विभिन्न प्रकार की क्रान्ति पैदा कर दी और ये क्रान्ति मानव जीवन का प्रचार और प्रसार और साम्राज्यशाही शक्तियों को समाप्त करना और उसके स्थान पर नई नीतियों एवं आत्मविश्वास को जगाना गोवा के नागरिकों में यही डा0 राममनोहर लोहिया की विचारधारा थीं।

18 जून, 1946 का दिन गोवा के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का एक अविस्मरणीय और मेनेजिस दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया था। लेकिन उसके बाद के चार दिनों तक लगातार गोवाभर में पुरूष, महिलायें और बच्चे घरों से निकलकर जुलूस की शक्ल में आजादी की मांग करते हुये सड़कों पर निकल आये। सत्याग्रह आंदोलन नवम्बर तक चला जिसमें सैकड़ों लोगों ने अपने को गिरफ्तार कराया। लोहिया का भाषण, जिसकी प्रतियां सभा स्थल पर मौजूद लोगों को बांट दी गयी थीं, पहले ही भारत में भेंज दिया गया था। भारतीय अखबारों में वह प्रकाशित हुआ। भारतीय जनता पर भी गोवा आंदोलन का असर हुआ। गाँधीजी ने तो दस बजे गोवा में लोहिया की गिरफ्तारी का समचार सुना और बारह बजे इस गिरफ्तारी की भर्त्सना और गोवा आंदोलन के समर्थन में अपना ब्यान प्रसारित करा दिया। उधर गोवा में 19 जून को लोहिया रिहा हो गये। लेकिन उन्होंने घोषणा की कि अगर तीन

महिने के भीतर नागरिक अधिकार बहाल न किये गये तो वे फिर गोवा आयेगें। गोवा में लोहिया के कार्यों का सर्वाधिक समर्थन हिन्दुस्तान में गाँधी ने किया। उन्होंने हरिजन के 30 जून 46 के अंक में लोहिया की गोवा में गिरफ्तारी पर एक लेख लिखा। जिसके उपरांत गोवा के पुर्तगाली गवर्नर ने गाँधी को पत्र लिखा जिसके जबाब भी गांधी ने 7 अगस्त, 1946 को दिया। पत्र में गाँधी ने लोहिया के कार्य की सराहना की। नागरिक स्वतन्त्रता की मशाल जलाने के लोहिया के कार्य पर उन्होंने गवर्नर को लिखा ''आप और गोवा के नागरिक दोनों को ही डा0 लोहिया को बधाई देनी चाहिए कि उन्होंने यह मशाल जलायी। लोहिया तीन महीने बाद अपने वायदे के मुताबिक फिर 29 सितम्बर 46 को बेंलगांव पहुंच गये। इस बार पुर्तगाली सरकार ने उन्हें गोवा में प्रवेश करते हुये कोलेम स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया और अगवाद के किले में ले जाकर बंद कर दिया। इस दौरान सभ्य देशों में राजनैतिक कैदियों को दी जाने वाली सुविधाओं देना तो दूर बल्कि लोहिया को सताया भी गया।

इस बार भी लोहिया की रिहाई गाँधी के सक्रिय हस्तक्षेप के कारण ही संभव हो सकी। गाँधी ने अपने जन्म दिन 2 अक्टूबर, 1946 के दिन प्रार्थना सभा में लोहिया की तारीफ करते हुये उनकी रिहाई सकी मांग की। गाँधी ने इसके लिए वायसराय पर भी दबाव डाला। तब कहीं जाकर लोहिया को 8 अक्टूबर को भारत की सीमा पर लाकर छोड़ दिया गया। रिहा होकर लोहिया ने कहा ''अगवाद फोर्ट लाहौर फोर्ट से ज्यादा बुरा नहीं है। लेकिन किलों के खाने हमेशा भयानक रहते ही हैं। लेकिन किलों की भयानकता से अविचलित लोहिया फिर से दूने उत्साह के साथ गोवा में व्यापक सत्याग्रह की अगुवाई की योजना बनाने लगे। तभी गाँधी ने उन्हें 15 अक्टूबर को एक तार देकर कहा ''तुम गोवा में भले दुबारा घुसों लेकिन ऐसा करने के पहले यहां आओ, जल्दी नहीं है, सार द्वारा उत्तर दो। बाद में गाँधी के समझाने पर कि अन्तरिक सरकार प्रशानिक स्तर पर गोवा के सवाल को हल करने का प्रयास

कर रही हैं अतः उनका गोवा प्रवेश सरकार के कार्य में अडंगा डालने और उसके लिए असुविधा पैदा करेगा, लोहिया ने गोवा वासियों के नाम एक पत्र द्वारा शांतिपूर्ण आंदोलन जारी रखने का आह्वान किया। बाद में 1955 में गोवा मुक्ति सत्याग्रह आंदोलन में जिसमें हिन्दुस्तान के सभी भागों के सत्याग्रहियों ने हिस्सा लिया था, मेरे नाना पं0जी0 श्याम भरथरे, निवासी ब्यावरा, जिला राजगढ़ (म0प्र0) 15 अगस्त, 1955 के पवित्र दिन गोवा की सीमा में प्रवेश करते हुये पुर्तगाली गोलियों को अपने सीने में झेलते हुये शहीद हो गये। सत्याग्रह के लिए प्रेरणा उन जैसे सैकड़ों समाजवादियों को डॉ0 लोहिया से ही प्राप्त हुई थी। इस प्रकार लोहिया ने गोवा में जो मशाल जलाई उसने गोवा के कमजोर एव निश्चेष्ट लोगों में आत्मविश्वास और स्फूर्ति पैदा करने का महान कार्य किया। लोहिया की इस कृति को इतिहास कभी भूल न सकेगा। कृतज्ञ गोवा वासियों ने लोहिया के सम्मान में पंजिम म्युनिसपल भवन के पास के चौक को तभी से ''लोहिया चौक'' का नाम दे रखा है। वहाँ की महिलाओं ने तो अपने लोकगीतों में लोहिया को शामिल कर हमेशा के लिए अमर कर दिया है। ''पहली माझी ओवी, पहले माझ फूल, भली ने अर्पिन लोहिया ना''। यह उन गीतों में से एक प्रसिद्ध गीत है।

डा0 राममनोहर लोहिया ने गोवा के लोगों में आजादी की जागृति पैदा की जिससे गोवा भारत का हिस्सा बना और गोवा में नागरिक भारतीय राजनीति में जुड़कर अपने देश के विकास में सहयोग एवं कर्तव्यपरायण बने, उनका उद्देश्य गोवा में लोगों के लिये एक सारगर्वाति और सहानुभूति पूर्ण था।

नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस को दिशा दर्शन और सहयोग :

डा0 राममनोहर लोहिया भारत के अलावा नेपाल में भी अपना राजनीतिक हस्तक्षेप रखते थे। वो हमेशा लोकतन्त्र बाहली की पैरवी करते थे चाहे वो

नेपाल हो या गोवा। नेपाल में राजतन्त्र था जबकि गोवा में पुर्तगालियों की सत्ता। वे चाहते थे नेपाल और गोवा दोनों स्थानों पर लोकतन्त्र में नये प्रतिमान स्थापित हो। और उन प्रतिमानों के राज्यतन्त्र और सामराज्य शाही विचार धारा के स्थान पर लोकतन्त्र की नयी दिशा को लोग समझे और वहां की जनता सक्रिय होकर लोकतन्त्र के मूल्यों से जुड़े और आम जन नागरिक स्वतन्त्रता का जीवन जी सके।

गोवा और नेपाल के मामलों में वहां की जनता की स्वतन्त्रता और नागरिक अधिकारों की बहाली के आन्दोलनों में लोहिया की रूचि का कारण मात्र आजादी के सिपाही होने के नाते न होकर, कहीं गहरे सोच का परिणाम थी जिसका सीधा संबंध स्वतन्त्र भारत की सुरक्षा नीति से था। लोहिया बहुत बड़े दूरन देखी नेता थे। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्तान सरहदी क्षेत्रों में वहाँ की जनता की शक्तियों के साथ जुड़े और इस प्रकार परस्पर सहयोग की सक्रिय पहल और संबंधों की गरमाई के साथ सीमाई इलाकों में स्थिरता, शांति और सुरक्षा को मजबूती प्रदान करें। लोहिया ने अपने इस महत्वपूर्ण चिंतन की सार्वजनिक अभिव्यक्ति तो 1950 में नागपुर में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में अपने द्वारा प्रस्तुत हिमालयीन नीति के जरिये की थी। लेकिन अपने कर्म द्वारा वे इस नीति को 1946 से ही, गोवा में आजादी के आंदोलन की अगुवाई, और जनवरी 1947 में कलकत्ता में एकत्र हुये नेपाली प्रतिनिधियों को नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करने की सलाह देकर, क्रियान्वित कर चुके थे। जैसी कि लोहिया की कार्यशैली थी वो किसी कार्य को प्रारंभ कर उसे उसकी उचित परिणिति तक पहुंचा कर ही दम लेते थे, उन्होंने स्वयं नौ एवं दस अप्रैल 1947 में नेपाली कांग्रस के जोगवानी सम्मेलन की अध्यक्षता की ओर अपने उद्भोदन में नेपाली जनता को सिविल नाफरमानी प्रारंभ करने आह्वान किया। उनकी प्रेरणा से स्थापित नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने जन्म के तीन महीने के अन्दर ही सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया था। इसी सिलसिले में

लोहिया जब 25 अप्रैल, 1947 को सुक्रिया पोकरी में नेपाली कांग्रेस की बैठक में हिस्सा लेने दार्जिलिंग से मोटर द्वारा निकले तो दार्जिलिंग की पुलिस ने उन्हें जाने से रोका और लोहिया द्वारा इन्कार करने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। लेकिन लोहिया ने जो चिनगारी नेपाली जनता के दिलों में जला दी थी वह भड़क उठी।

स्वतन्त्र भारत में पहली गिरफ्तारी :

डॉ0 राममनोहर लोहिया ने हमेशा सोशलिस्ट पार्टी का साथ दिया और उन्होंने इसी पार्टी का आत्मसात किया ये पार्टी हमेशा से कांग्रेस के विपक्ष में रहती थीं। इस पार्टी के द्वारा प्रसाद कोइराला जैसे महान राजनेताओं के साथ भी विचार विमर्श किया लेकिन लोहिया और अन्य राजनेताओं में अवधारणायें अलग थी।

नेपाली कांग्रेस के इस आंदोलन के प्रति हिन्दुस्तानी जनता की हमदर्दी व्यक्त करने के लिये सोशलिस्ट पार्टी की ओर से 25 मई, को दिल्ली में केनाट सर्कस में आमसभा रखी गई। सभा में तय किया गया कि नेपाली राजदूत को एक ज्ञापन दिया जाये और लोहिया के नेतृत्व में एक जुलूस ज्ञापन देने नेपाली दूतावास की ओर बढ़ा। लेकिन पुलिस ने बीच में ही जुलूस को विसर्जित करने आंसुगैस छोड़ी और लाठियां बरसाई। रात्रि में 9 बजे लोहिया और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। आजाद हिन्दुस्तान में लोहिया की यह पहली गिरफ्तारी थीं। आखिर में नेहरू जी को विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की नेपाली जेल में रिहाई के लिए जून, 1949 में स्वयं हस्तक्षेप करना पड़ा। श्री नेहरू के हस्तक्षेप और उनके तात्कालीन गृह मंत्री सरदार पटेल के साथ पत्र व्यवहार के बाद ही भारत सरकार ने 3 जुलाई, 1949 के दिन लोहिया एवं उनके साथियों को भी दिल्ली में रिहा कर दिया।

वर्मा से हथियारों के आयात में सहयोग :

नेपाल, गोवा के अतिरिक्त वर्मा में भी लोहिया जी ने अपने व्यक्तित्व

प्रयासों के द्वारा वहाँ की आम जनता में सक्रियता उत्पन्न करने का प्रयास किया उन्होंने हमेशा चाहा कि राजशाही की अन्त हो और उसके स्थान पर लोकतान्त्रिक अधिकारों के साथ नई क्रान्ति उत्पन्न हो। लोहिया जी ने भारत की सीमा को जितने भी देश छूते हैं। जैसे वर्मा, भूटान एवं नेपाल इन सभी देशों में लोहिया ने वहां के लोगों को नई प्रेरणा दी और नये मार्ग दर्शन दिये और उसके साथ-साथ सहभागिता भी स्थापित करने का प्रयास किया।

बाद में दिसम्बर, 1950 में नेपाल की लोकतांत्रिक क्रान्ति के संचालन में लोहिया ने सक्रिय भूमिका निभाई। नेपाली कांग्रेस को हथियार सप्लाई करने के उद्देश्य ने लोहिया ने समाजवादी साथी भोला चटर्जी को वर्मा भेजा। वर्मा में उस समय समाजवादी पार्टी की सरकार कायम थीं। लोहिया ने वहाँ के धार्मिक मामलों के मंत्री यूविन के नाम एक व्यक्तिगत पत्र भोला चटर्जी के हाथ भेजकर हथियारों की मांग की थी। यह मिशन सफल हुआ। वर्मा से मंगाई हथियार पटना के समाजवादी साथी देवेन्द्र प्रसाद सिंह के घर में रखे गये थे जो उस समय नेपाली कांग्रेस के अस्थायी मुख्यालय के रूप में कार्य कर रहा था। उधर नेपाल में नेपाली कांग्रेस ने वीरगंज विराट नगर आदि पर अपना कब्जा कर लिया जहाँ हथियारों सहित 32 लाख रूपयों का खजाना भी उनके हाथ लग सका। इस बीच महाराजा त्रिभुवन ने दिल्ली में आकर शरण ग्रहण कर ली और नेपाली कांग्रेस के साथ समझौते के बाद क्रान्ति अधूरी रह गई, राणाशाही का अंत हो गया।

इस प्रकार जैसे गोवा वासी लोहिया के कृतज्ञ है "उसी प्रकार नेपाली कांग्रेस और नेपाल की जनता भी उनके लोकतान्त्रिक अधिकारों के लिये संघर्ष में लोहिया की प्रेरणा और मार्गदर्शन उचित था। नेपाल में लोकतन्त्र के लिये लड़ा आंदोलन अंतिम रूप मे सफल हो चुका था, लोहिया की याद उन्हें और हमें दोनों को आनो स्वाभाविक है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. ओंकार शरद, डा. राममनोहर लोहिया, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 11
2. लोहिया, समलक्ष्य समबोध, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973, पृ0 2
3. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 15
4. वही, पृ0 18
5. लोहिया, समलक्ष्य समबोध, पृ0 3
6. नेहरू से मुलाकात, सन्दर्भ ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 21 और गांधीजी से अपनी पहली मुलाकात का जिक्र लोहिया ने स्वयं अपने लेख महात्मागांधी में किया है। लोहिया के विचार, संपादन ओंकार शरद, पृ0 205
7. प्रो0पी0सी0 शर्मा, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन और संवैधानिक विकास, यूनिवर्सल बुक डिपो, ग्वालियर, पृ0
   के0एम0 मुंशी, पिलग्रिमेज टू फ्रीडम, भाग 1, भारतीय भवन, बम्बई : 67 पृ0 24.
8. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 25
9. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 35
10. दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, बिल्को पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1971, पृ 138
11. एम0जे0 अकबर, नेहरू मेंकिग ऑफ इंडिया, पेंगुइन, 1989, पृ0 224
12. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 37
13. ओमप्रकाश दीपक, असमाप्त जीवनी, पृ0 11

14. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 39
15. एम0जे0 अकबर, नेहरू मैकिग ऑफ इंडिया, पृ0 224 एवं दुर्गादास भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात् पृ0 145
16. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 40
17. रमामित्र, लोहिया, थ्रू लेटर्स, पृ0 40
18. लोहिया, महात्मागांध, लोहिया के विचार, पृ0 206
19. दुर्गादास, कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात् पृ0 167
    जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ0 203
20. वही, पृ0 226
21. दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, पृ0 169.
22. मालवीयजी की गांधी के साथ इस वार्ता को प्रभावती (जय प्रकाश की धर्मपत्नी) के पीछे बैठकर स्वयं लोहिया ने 1933 में सुना था। मालवीयजी के सुझाव को सुनकर गांधी ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया था "क्या हम उस जगह पर नहीं आ गये जब भारत की बात रखने के लिये कांग्रेस पार्टी के प्रतिनिधिमण्डल के इंग्लैण्ड जाने की बात सोचना भी असंभव है"। लोहिया, महात्मा गांधी, लोहिया के विचार, पृ0 206.
23. के0एम0 मुंशी, पिलग्रिभेज टू फ्रीडम, भाग 1, पृ0 36
24. डा0 अन्सारी के नाम, गांधी के पत्र से पट्टाभि सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग 1, पृ0 568.
25. समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, पृ0 46.
26. आचार्य नरेन्द्रदेव, राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 470
27. इ0एम0एस0 नम्बूदरीपाद, गांधी और उनका वाद, पृ0 101

28. जयप्रकाश, समाजवाद, सर्वोदय और लोकतन्त्र, पृ0 160
29. समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, पृ0 46
30. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 50.
31. के0एम0 मंशी, कांस्टीटूशनल डाक्यूमेंट, भाग 1, पृ0 364
32. ब्लिट्ज बम्बई, 10 नवंबर, 1945.
33. ओमप्रकाश दीपक, असमाप्त जीवनी, पृ0 26
34. (अ) समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, 176

    (ब) साम्यवादियों से सहयोग के पक्षधर जयप्रकाश ने भी अंत में स्वीकारा "साम्यवादियों कें साथ लोगों के साथ एकता का यह सारा विचार ही गलत रहा" जयप्रकाश, पृ0 331.
35. अशोक मेहता, ब्लिट्ज, बम्बई, 10 नवम्बर, 1945
36. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 60
37. जेड0ए0 अहमद, लोहिया:बहुआयामी ब्यलित्व, पृ0 223
38. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 64
39. वही पृ0 65
40. ओमप्रकाश दीपक, असमाप्त जीवनी, पृ0 33.
41. इन्दुमति केलकर लोहिया, पृ0 64
42. 'कांग्रेस सोशलिस्ट' फरवरी 1936 आश्चर्यजनक रूप से

    (अ) लोहिया के युद्ध संबंधी विचार जयप्रकाश के विचारों से एकदम मेल खाते हैं। जय प्रकाश ने कहा 'मेरा देश इस लड़ाई में किसी भी रूप में शामिल नहीं है। क्योंकि वह जर्मन जार्तवाद और ब्रिटिस साम्राज्यवाद दोनों को बुरा मानता है और उन्हें अपना शत्रु समझता हैं"। जय प्रकाश: जीवनयात्रा, जयप्रकाश अमृतकोष, नई दिल्ली, 1982, पृ0 333

(ब) आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा लिखित 'जनवादी या साम्राज्यवादी युद्ध में भी ऐसे ही विचार प्रगट हुये हैं। कोमेमोरेशन वोल्युम सेंटर आफ एप्लाइड पोलिटिक्स, नई दिल्ली पृ0 137-50

44. इन्दुमति केलकर लोहिया, पृ0 67.
45. वही, पृ0 68.
46. एम0जे0 अकबर, नेहरू, पृ0 318.
47. वही पृ0 314.
48. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 69 जय प्रकाश ने भी कहा, "साफ बात है कि ऐसी लड़ाई के साथ हिन्दुस्तान का कोई नाता रिश्ता हो नहीं सकता- मैं न तो साम्राज्यवाद की जीत चाहता हूँ और न नाजीवाद की।" जय प्रकाश, जीवन यात्रा, पृ0 333
49. अ- लोहिया, साम्राज्यावाद और युद्धःयुद्ध प्रतिरोध की एक योजना, लोहिया, बहुआयामी व्यक्तित्व, पृ0 403-4

    ब- 31 दिसम्बर, 39 को का.सो.पा. के महामंत्री पद की हैसियत से जारी जयप्रकाश द्वारा युद्ध परिपत्र-2 में भी ऐसा ही कार्यक्रम दिया गया हैः युसुफ मेहर अली की फाइल से, ने0म0क्यू0 एण्ड लाय0 नई दिल्ली
50. इन्दुमति केलकर लोहिया, पृ0 69.
51. लोहिया, महात्मा गांधी, लोहिया के विचार, संपादन ओंकार शरद, पृ0 209.
52. अ- वही

    ब- अशोक मेहता, राममनोहर लोहिया, ब्लिटज, बम्बई, 10 नवम्बर, 1945

    स- इन्दुमति केलकर, लोहिया, 20, 70ण
53. लोहिया, महात्मा गांधी, लोहिया के विचार, ओंकार शरद, पृ0 210

54. एम0जे0 अकबर, नेहरू, पृ0 316

55. दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, पृ0 200

56. एम0जे0 अकबर, नेहरू, पृ0 319

57. लोहिया, महात्मा गांधी, लोहिया के विचार, पृ0 211

58. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 74

59. वही

60. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 75

अध्याय - तृतीय

भारतीय संसद

भारतीय संसद

1. निर्माण एवं इतिहास

   (अ) स्वतन्त्रता पूर्व केन्द्रीय विधान मण्डल

   (ब) स्वतन्त्रयोत्तर संसद

2. भारतीय संसदीय प्रक्रिया

   (अ) विधायी प्रक्रिया

   (ब) अन्य प्रक्रियायें

      1. प्रश्नोत्तर

      2. ध्यानाकर्षण

      3. कामरोको प्रस्ताव

      4. अविश्वास प्रस्ताव

      5. संसद सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकार

      6. व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्न

''प्राचीन भारत के इतिहास के प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था के अनगिनत उदाहरण उपलब्ध हैं। ताम्रपाषाण कालीन भारतीय सभ्यता ''हड़प्पा संस्कृति'' में शासन व्यवस्था के अवशेष अप्राप्त हैं। सार्वजनिक सभागार, सार्वजनिक स्नानागार, सार्वजनिक अन्न भण्डार जैसे भवनों के अवशेष यहीं संकेत करते हैं कि वहाँ कि शासन व्यवस्था गणतान्त्रिक थी, जो कुलिन पुरुषों, व्यपारिक संघों और श्रमिकों तथा कृषकों के प्रमुख नेताओं के संगठन द्वारा होती थी। यह सभ्यता कुशल

प्रणाली रखती थी। यहीं पर प्राचीन युग में जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार की एक धारणा ने जन्म लिया था, जो हमारे आज के अपेक्षित लक्ष्य गणतन्त्र का बीजारोपण था।"[1]

वैदिक काल में राजा के चयन की प्रक्रिया और राजा की सत्ता वंशानुगत हो जाने के बाद भी उसकी सहायतार्थ 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थायें महत्वपूर्ण थीं। जिनके द्वारा राजा की प्रभुसत्ता और परम्पराओं को रखा जाता था। 'सभा' राज्य के नागरिकों की एक बड़ी संस्था थी, जबकि 'समिति' कुल और कबीलों की मुखिया एवं प्रमुखों की एक छोटी संस्था थी।

बुद्ध के समकालीन और उसके बाद के मौर्य काल ये अनेक गणतान्त्रिक जनपदों का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता हैं। गणतान्त्रिक जनपदों की सार्वभौम सत्ता और सत्य उनकी सभा में नीहित होते थे। 'सभा' हैं। शासन के प्रमुख अधिकारियों, कार्यकारी और सैन्य अधिकारियों की नियुक्तियाँ करता था। 'सभा' के द्वारा ही युद्ध एवं सन्धि के विभिन्न प्रकार के निर्णय और नीतियों के किया जाता था। सभा सभी प्रशासनिक एवं सैन्य कार्यवाहियों पर नियन्त्रण रखती थी। सभा के अध्यक्ष को विचारधारा संचेतक को गणपूर्वक कहा जाता था।[2]

सभा में प्रस्ताव वाद-विवाद, बहुमत, विभिन्न निर्णय आदि के नियम निश्चित थे। मतगणना कराने के लिए सभासदों द्वारा विभिन्न शालाकाओं का प्रयोग किया जाता था।"[3]

गणतान्त्रिक जनपदों के समाप्त हो जाने के बाद भी राजतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं में निचले स्तर पर, स्थानीय प्रशासन में जनता की भागीदारी को 'ग्रामीण सभा' समितियों के रूप में तथा 'ग्राम सभा' और 'पंचायतों' के रूप में जाने जानी लगी। स्थानीय प्रशासन में जनता के प्रत्यक्ष सहभागिता की दीर्घकालिक परम्परा और

ऐतिहासिक साध्यों को ध्यान ये रखते हुए मुस्लिम सल्तनतों, मुगलबादशाहों और ब्रिटिश अंग्रेंजी हुकूमत ने भी ग्राम सभा, समिति आदि के ढ़ाँचे के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश नही की। उन्होंने भी उन्हीं सब का अनुसरण किया जो पूर्व में बनायी गयी नीतियों और निर्णय थे। प्रशासन की निचली ग्रामीण इकाईयों की संस्थाओं को उसी तरह कार्य करते रहने की व्यवस्था को स्वीकार इस प्रकार शासन प्रशासन में नीतियों के निर्धारण एवं क्रियान्वन में महत्वपूर्ण हिस्सा लिया।

क्षमतायें और भावनायें इस देश की जनता में वैदिक काल से लेकर नवजागरण काल तक हैं। आज भी पीढ़ी दर पीढ़ी बहुत-सी राजनीतिक विचारधाराओं का अदान-प्रदान हो रहा हैं। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यूरेपियन देशो एवं मुस्लिमों ने देश की तुलना में लोकतान्त्रिक संसदीय शासन प्रणाली स्पष्ट रूप से चल रही हैं। जिसके बहुत से अवरोध भी है परन्तु उन कडे रास्ते से गुजरते हुये अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है।

संसदीय शासन प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट और सुसंगठीत मानी जाती है जिसमें बहुत सी राजनीतिक प्रर्दुशाव एवं प्रकर्यात्मक चुनौतियों से परिपूर्ण है। आज के युग में संसदीय शासन प्रणाली कड़े परीक्षणो के साथ गुजर रही है जिससे बहुत से अवरोध है। लोकतान्त्रिक संसदीय शासन प्रणाली एक सफल प्रणाली है। जो राजतन्त्र प्रणाली के अपेक्षा अधिक उन्नत, श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ठ है। जो आज भी विश्व की सभी शासन प्रणालियो की अपेक्षा अधिक तार्किक और सफल मानी जाती है।

केन्द्रिय विधान मण्डल विकास यात्रा :

सन् 1757 बंगाल के नवाब सिराजुद्धदौला को प्लासी के युद्ध में परास्त करने के पश्चात भारत में अग्रेजी ''ईस्टइण्डिया कम्पनी'' के शासन की नीव

पड़ी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का इंतजाम निजायत की जिम्मेदारी नबाव के नायब को सौप कर जारी रखी। दोहरी शासन प्रणाली के बाद के प्रत्यक्ष शासन की व्यवस्था का जो ढ़ाचा उभरा उसके दो हिस्से थे, एक हिस्से इग्लैण्ड में "बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स" के पास था और दूसरा हिस्सा भारत में "गर्वनर जनरल इन काउन्सिल" के पास कार्यकारी, सैनिक और विधार्थी कार्यो से सम्बन्धित नीतियो के तय करने और उनके क्रियान्वन की जिम्मेदारी "गर्वनर जनरल इन काउन्सिल" थी यही सूरत कामोवश मामूली तबदीलो के साथ जारी रखी गयी। अलबत्ता 1833 के चार्टर एक्ट में भारत ये कम्पनी सरकार की विधार्यी शक्तियो का स्पष्टीकरण किया गया इस एक्ट के द्वारा अधीन भारतीय क्षेत्र के लिए "विधार्यी परिषद"की स्थापना की गयी और इसके लिए एक विधार्यी सदस्य के रूप में लॉर्ड मैकाले की गर्वनर जनरल के काउन्सिल के चौथे सदस्य के रूप में नियुक्त किया।

केन्द्रीय विधान मण्डल का शासन प्रणाली में बड़ा महात्व था। क्योकि शासन प्रणाली के बहुत से कार्य "केन्द्रीय विधान परिषद" द्वारा चलाये जाते थे। केन्द्रिय विधान मण्डल के समस्त नियम अग्रेजी हुकूमत के द्वारा निर्धारित किये जाते थे। विधायी कार्य के लिए विचार विमर्श के लिए विधायी परिषद में सदस्यो की संख्या में वृध्दि की जानी चाहिए। सन् 1853 के "चार्टर एक्ट" में "विधार्थी परिषद" के नाम से विधायी कार्यो के लिए जोड़ा गया इस प्रकार अनजाने ही विधान परिषद को एक "लघु संसद" का स्वरूप प्रदान करने की कोशिश की।[4]

सन् 1861 में "इण्डियन काउन्सिल एक्ट" के द्वारा निर्माण प्रक्रिया में महात्वपूर्ण परिवर्तन हुए इनमें आदि संख्या गैर सरकारी सदस्यो की रखी गयी। इन गैर सरकारी सदस्यो में महाराजा पटियाला, महाराजा ग्वालियर और वनारस के शामिल थे।[5]

इसके बाद एक्ट के आधीन गठित विधायी परिषद को विधायी कार्य सम्पदा के अलावा अन्य कार्य करने से वंचित रखा गया। इस प्रकार यह मात्र सरकार की विधायी मामलो में "सलाहकार परिषद" के रूप में बन कर रह गयी।

"1885 से भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ होता है। उस वर्ष भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नाम से एक अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था का जन्म हुआ। तब से भारतीय मन में राजनीतिक जागरण अधिकाधिक उथरता चला गया।"[6]

कांग्रेस के गठन के प्रारम्भ से ही काउन्सिलो में भारतीयो के उचित प्रतिनिधित्व की माँग शासन के सम्मुख रखना प्रारम्भ की अतः कुछ काग्रेस की माँग के दवाव में कुछ अपनी मर्जी से अग्रेज सरकार ने सन् 1852 के "इण्डियन काउन्सिल एक्ट" के "विधायी परिषद" के सदस्य संख्या में वृद्धि के साथ 10 से कम नही 16 से ज्यादा नही केन्द्रिय विधान मण्डल में पाँच गैर सरकारी सदस्यो के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था स्वीकार की। इनमें से चार सदस्यो का चार प्रान्तीय विधान मण्डलो के गैर सरकारी सदस्यो के सिफारिश के आधार पर एक सदस्य का मनोनयन कलकत्ता "चेम्बर ऑफ कार्मस" के सदस्यो की सिफारिश के आधार पर किये जाने का प्रावधान था। इसके अलावा पहली बार सदस्यो को शासन से प्रश्न पूछने का अधिकार प्रदान किया गया ह्लाकि पूरक प्रश्न पूछने की पूर्ण पाबन्दी थी।

कांग्रेस और जनता की माँग "कौंसिल सुधार लगातार बढ़ती जा रही थी। जनता चाहती थी कि काउन्सिलो में निर्वाचित भारतीयो की संख्या में वृद्धि हो और "काउन्सिल" को उत्तरदायी बनाया जायें। इसके अलावा 1905 में बंगाल के विभाजन के खिलाफ हुए आंदोलन और उसमें प्रगट हुयी "हिन्दू मुस्लिम एकता" ने अग्रेंजी सरकार को प्रेरित किया और परिणाम स्वरूप सन् 1909 में मोरले मिन्टो सुधार प्रस्तावो पर अधारित एक और एक्ट पारित कर लागू किया। लार्ड मोरले ने

उक्त बिल को प्रस्तुत करते हुए स्वयं कहा "यदि यह अनुमान किया जाये कि इन सुधारो द्वारा भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित कर रहा है। यह सुधार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी शासन प्रणाली में विकसित होगे तो मेरा इसमें कोई सम्बन्ध नही है।" उत्तरदायी शासन से होने के अलावा भी यह एक्ट भारत के विभिन्न वर्गो को उनके हितो के आधार पर प्रतिनिधित्व के कारण और सांप्रदायिक आधार पर मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन के व्यवस्था के कारण जान बूझकर फूट डालो राज करो" के सिद्धान्त पर अधारित था। इस अधिनियम द्वारा तीन प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये साधारण निर्वाचन क्षेत्र, मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र एवं विश्वविद्यालयों, कोरपोरेशनों और चेम्बर ऑफ कामर्स के लिये विशेष निर्वाचन क्षेत्र इसके साथ ही मताधिकार के मामले में विभिन्न वर्गो एवं क्षेत्रों में एक मुसलमान को मतदाता होने के लिए मात्र 3000/- रू0 वार्षिक आय पर करदाता होने पर्याप्त था। जवकि एक हिन्दू के लिए 300000/- रू0 वार्षिक आय पर करदाता होना आवश्यक था। स्नातक क्षेत्र में मुसलमान तीन वर्ष का स्नातक होकर मतदान कर सकता था, लेकिन एक हिन्दू को तीस वर्ष का स्नातक होना जरूरी था।"[7]

लार्ड मोरले ने वायसराय मिन्टो को पत्र में लिखा[8] पृथक निर्वाचन प्रणाली द्वारा हम राक्षस के दाँत बो रहे है, इसकी "फसल बहुत कड़वी है।"[9] इसे स्वीकार करते हुये गांधी जी ने कहां और ले मिनटों सुधार ने हमारे समस्त कायो पर पानी फेरा है यदि पृथक निर्वाचन, प्रणाली स्वीकार ना की गयी थी तो हम हिन्दू व मुसलमान अपने मतभेदों को अभी तक दूर कर लेते।"[10]

केन्द्रिय विधान मण्डल में 69 सदस्य थे। जिनमें 37 सरकारी और 32 गैर सरकारी सदस्यों में 27 निर्वाचित और बाकी के नामजद सदस्य थे। सदस्यों को प्रस्ताव प्रस्तुत करने की और उस पर मत विभाजन की मांग करने की स्वतन्त्रता

प्रदान की गयी थी लेकिन पारित प्रस्तावों को शासन द्वारा मान्य करने की बध्यता नही थी तभी गोपाल कृष्ण गोखले प्रसिद्ध उदारवादी नेता को यह कहने पर मजबूर होना पड़ा।

जब सरकार किसी विषय में अपनी निति तय कर ले तो गैर सरकारी सदस्य फिर जाहे कुछ भी क्यों ना हो, वह अपने रास्त में तनिक नही हटते।"[11]

केन्द्रीय विधान मण्डल पर बहुत से ब्रिटिश हुकूमत के वायसरायों ने अपनी सिफारशें और सुझाव दिये जिससे की उनका आम नेताओं और जनमानस पर विभिन्न प्रकार की क्रियायें और प्रक्रिया हुयी। केन्द्रीय विधान मण्डल को सक्रिय बनाने के लिए बहुत से सरकारी और गैर सरकारी सदस्य भी शामिल थे। जिसमें भारत के बहुत से रियासत के राजा और महाराजा भी शामिल थे।

केन्द्रिय विधान मण्डल में कांग्रेस और जनता की मांग काउन्सिल सुधार में लगातार बढ़ती जा रही थी जिससे एक अच्छी निर्वाचन प्रणाली तैयार हो और आम जन नागरिक अपने जीवन को सही रूप से जी सके यही उदारवादी नेताओं को भी निति थी।

1885 में अपने पहले सत्र में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार के मौजुदा ढ़ाँचे के बारे में असन्तोष प्रकट करते हुये काउन्सलों में काफी अनुपात मे चुने हुये सदस्य शामिल कर उनमें सुधार और विस्तार की मांग के साथ-साथ उन्हें बजट पर चर्चा का अधिकार दिये जाने की मांग की 1886, 1877, 1889 में विभिन्न प्रस्तावों द्वारा कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम को निश्चितता प्रदान की।

गुरूमुख निहाल सिंह का मत है- कि 1892 का अधिनियम कांग्रेस के प्रयत्नों का पहला परिणाम था यद्यपि 1888 में ही कांग्रेस के प्रति सरकार की हमदर्दी

समाप्त को गयी। और लार्ड डफरिन ने स्वयं कांग्रेस को अत्याधिक अल्पसंख्यक माना।

"शिक्षित भारतीयों की प्रतिनिधि सभा कहकर इसकी अलोचना की थी, फिर भी उस वर्ष (1888) उन्होने तीन सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त कर दी थी। जिसका उद्‌देश्य प्रांतीय कौसिंलो में सुधार और विस्तार की सिफारिश करना था। लार्ड डफरिन ने कांग्रेस की कौसिंल की मांग को इसलिए गम्भीरता से लिया था। क्योंकि उनका मत था कि प्रान्तों में उदारवादी व्यवस्था अपनाने से कोई खतरा न था। और इसमें सरकार को लोकप्रियता में वृद्धि होगी यद्यपि वे भी भारतीयों को यूरोपीय ढ़ग की प्रजातांत्रिक व्यवस्था के योग्य नही समझते थे और कार्यपालिका को इंग्लैण्ड के संसद के समझ उत्तरदायी बनाए रखना चाहते थे।"[12]

ब्रिटिश सरकार काउंसिलों में विस्तार के लिए तत्पर थी फिर भी वह एक मौलिक बात यानि चुनाव सिद्धान्त के पक्ष में ना थी। प्रधानमंत्री लार्ड सैल्सबरी के अनुसार चुनाव की मांग को मानना अपने शत्रुओं को शस्त्र देने के समान था इसलिए अपनी सिफारिस में 1888 में नियुक्त कमेटी ने भी सर्वसम्मति से ये सिफारिस की थी कि निर्वाचको में म्यूनिसपल कमेटीयाँ लोकल बोर्ड और विश्वविद्यालयों की सीनेट के सदस्य और स्नातक शामिल होगें। इसी प्रकार कमेटी ने भारत के महात्वपूर्ण हितो के प्रतिनिधियों को भी शामिल करने की सिफारिस की। (1) वंशानुगत कालीन और जमींदार वर्ग, (2) व्यापारी और पेशेवर वर्ग (3) यूरोपीय वर्ग के व्यापारी तथा वगानों के मालिक और (4) स्थायी प्रशासन के हितो इस पृष्ठ भूमि और वातावरण में भारतीय कौंसिल अधिनियम 1892 पास किया गया। इस अधिनियम के निम्नलिखित उपलब्ध थे।

1. विधायी कौंसिलों के कार्यो में वृद्धि की गयी और कुछ परिस्थितियों में उन्हें

बजट पर बहस करने का अधिकार दिया गया अर्थात सदस्यों को सरकार की वित्तीय नीति की अलोचना का अधिकार मिल गया।

2. कौंसिल के सदस्यो को अधिकार दिया गया कि वे 6 दिन का नोटिस देने के बाद सार्वजनिक हितों के मामलों पर सरकार से प्रश्न पूँछ सकते थे।

3. कौंसिलों में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी इसकी संख्या उच्चतम कौंसिल में 10 से 16 के बीच और मद्रास और बम्बई में 8 से 20 के बीच होनी थी।

4. अतिरिक्त सदस्यों का 2/5 गैर सरकारी होना था।

5. कांग्रेस के दवाव के कारण सरकार चुनाव के लिए मान ली गयी पन्रतु यह शर्त लगाई गई कि चुने सदस्य कौंसिलों में अपना स्थान सरकार द्वारा मनोनीत किए जाने पर ग्रहण करेगें।

यद्यपि 1892 ई0 का अधिनियम एक लम्बे वाद-विवाद और धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा का परिणाम था। परन्तु इस अधिनियम द्वारा भारतीयों को कोई ठोस लाभ प्राप्त नही हुआ। सर्वपथम चुने हुए व्यक्ति विधान पालिकाओं में अपने चुने जाने के अधिकार के बल पर स्थान ग्रहण नही कर सकते थे। जब तक कि सरकार उन्हें मनोनीत न कर दे। लार्ड सैलिसबरी ने चुनाव के सिद्धान्त की अनुपस्थिति का औचित्य निम्न शब्दों में व्यक्त किया- चुनाव सिद्धान्त अथवा प्रतिनिधिक सरकार पूर्वी विचारधारा नहीं है और न ही यह पूर्वी परम्पराओं अथवा पूर्वी चिन्तकों के सन्दर्भ में सही बैठती है। दूसरे सदस्य पूरक प्रश्न नही पूछ सकते थे। तीसरे चुनाव के नियम अन्यायपूर्ण होने के कारण कुछ वर्गो को अत्याधिक प्रतिनिधत्व प्राप्त था और कुछ को बिल्कुल नही। चौथे गैर सरकारी सदस्यों की संख्या कम थी। पांचवे पंजाब को न तो वायसराय को कौसिल और न ही स्थानीय कौंसिल में प्रतिनिर्धित्वादियों गया था। छठे

एक अलोचक के अनुसार यह अधिनियम सरकारी विचार (जो कौंसिलों को पॉकेट विधान पालिकाए समझता था) और शिक्षत भारतीय विचार (जो उन्हें अपरिपक्व संसद समझता था) के बीच एक समझौता था। सातवें सरफिरोज शाह मेहता के अनुसार ब्रिटिश सरकार में यह सोचकर कि भारतीय ने अधिक सुधार एवं अधिकारों की मांग करेंगे शुरूआत कम से कम देकर की थी। एक ब्रिटिश संसद सदस्य खान ने इस वृद्धि को बहुत तुच्छ और दयनीय वृद्धि की संज्ञा दी।

"गैर सरकारी सदस्य बिलों में संशोधन नही कर सकते थें और विधानपालिकाओं में बहस केवल एक औपचारिकता जैसी थी। मदनमोहन मालवीय के अनुसार इस अधिनियम द्वारा भारतीयों को अपने देश के प्रशासन में कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। प्रांतीय विधानपालिकाए आकार में इतनी छोटी थी कि वे प्रान्त के लोगों का प्रतिनिधित्व नही कर सकती थी उदाहरण के लिए बंगाल के सात निर्वाचित सदस्य सात करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे। फिर भी इस अधिनियम को वर्तमान स्थिति में सुधार लाने वाला माना गया।"-[13]

भारत शासन अधिनियम 1919 - भारतीय जनता को वर्गीय हितों और धर्म के आधार पर बाँटते की जिस अंग्रेजी साजिश की शुरूआत 1909 के काउन्सिल एक्ट में हुयी, उससे सन्तुष्ट न रहकर उसे और वखान चढ़ाया गया 1919 के भारत शासन अधिनियम के तहत

"माटेग्यू योजना भारतीयों के लिए वस्तुतः झगड़े की जड़ सिद्ध हुई पर्याप्त कोशिश और बलिदान के बाद भारत में जो एकता स्थापित हुयी थी वह तुरन्त ही नष्ट हो गयी। दस वर्ष के बाद राष्ट्रवादी और उग्रवादी पुनः एक हो गये थे परन्तु उस योजना ने उन्हें एक बार फिर विभाजित कर दिया। जो साम्प्रदायिक संस्थाएं पहले से कार्य कर रही थी, उन्हें इस योजना से और बल मिला इसका उद्देश्य प्रस्तावित सुधारों में अपने वर्ग अथवा समुदाय के लिए विशेषधिकार प्राप्त करना था

इस योजना से उग्रवादियों के बीच जो विरोध हुआ उससे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में असहयोग का प्रवेश हुआ उससे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में असहयोग का प्रवेश हुआ। फलस्वरूप देश की राजनीतिक वातावरण में तनाव पैदा हुआ।"[14]

अगस्त घोषण के बाद मांटेग्यू के साथ एक अध्ययन के आधार पर जुलाई 1918 में माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। यह रिपोर्ट 1919 के भारतीय शासन अधिनियम का आधार बनी। इस आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1919 में भारत के औपनिवेसिक प्रशासन के लिए एक नया शासन विधान बनाया जो 1921 में कार्यान्वित किया गया।

अंग्रेजी सरकार ने चिड़कर ऐसी तजवीज पेश की जिससे भय भ्रम तो पैदा हो कि विधान मण्डल का विकास किया गया, लेकिन उसी विकास के बहाने भारतीय समाज कई भागों में बंट गया। जिससे शुरूआत 17 अगस्त, 1917 को भारतीय सचिव माटेग्यू द्वारा घोषण की गयी।

हिजमेजेस्ट्री के सरकार की यह नीति है कि अधिक संख्याओं में भारतवासियों को शासन की हर शाखा में भाग दिया जायें और धीरे-धीरे स्वशासित संस्थाओं का विकास इस दृष्टि कोण से किया जाये कि समय आने पर भारत में एक दायित्व पूर्ण शासन स्थापित हो सके और वह अंग्रेजी साम्रज्य का अभिन्न अंग बना रहें।

इस घोषणा की पृष्ठभूमि 1916 में कांग्रेस और लींग के बीच हुये लखनऊ समझौता और 1914 से जारी प्रथम विश्व युद्ध जैसे घटनाएं हुयी थी तभी माटेग्यू ने यह दावा किया कि उन्होंने विश्व युद्ध के बहुत ही संकटकालीन अवसर पर भारत वर्ष को 6 माह तक शांत रखेगी।

1919 का भारतीय शासन अधिनियम हमारे सावैधानिक विकास में एक

नए दौर के आरम्भ का सूचक था जिसकी विशेषता थी उत्तरदायीं शासन की प्रगति इस अधिनियम की प्रस्तावना में 20 अगस्त 1917 की घोषण के मूलसिद्धान्तों का समावेश था प्रस्तावना में निम्नलिखित बाते स्पष्ट कर दी गयी थीं।

1. प्रशासन में भारतीय का सम्पर्क बढ़ाया गया।

2. भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहेगा।

3. स्वशासन की संस्थाओं का विकास किया जायेगा। भारत के ब्रिटिश नीति का लक्ष्य उत्तरदायी शासन की स्थापना होगी।

4. उत्तरदायी शासन और स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना का काम धीरे-धीरे और क्रमिक ढ़ग से होगा।

5. कल कितनी प्रगति हो, इसका निर्णय ब्रिटिश संसद ही एवं प्रगति की जिम्मेदारी ब्रिटिश संसद ही होगी।

6. इन मामलों में संसद का कार्य उस सहयोग द्वारा निर्धारित होता था जो उसे उन लोगों से मिला था जिन्हें सेवा के नए अवसर प्रदान किये थे।

प्रान्तों में स्वशासन की संस्थाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ आंशिक उत्तरदायित्व की भी स्थापना की जायेगी यथा सम्भव प्रान्तीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय नियन्त्रण में मुक्त रखने का प्रयास भी किया जायेगा।

केन्द्रिय विधान मण्डल को धीरे-धीरे द्विसदनीय रूप दिया गया।

अ. उच्च सदन

ब. निम्न सदन

गठित की गयी दोनों सदनों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत था। काउन्सिल ऑफ स्टेट के सदस्यों की संख्या अधिकतम संख्या 60 थी। जिसमें सरकारी

मनोनीत सदस्यों की संख्या केवल 20 थी। गैर सरकारी सदस्यों में से -34 निर्वाचित और 6 मनोनीत सदस्य थे।

1921 में गठित की गयी 145 सदस्यों निचले सदस्य केन्द्रिय विधान मण्डल में विभिन्न वर्गों के सदस्यों के बीच सीटों का बंटवारा निम्न अनुसार था निर्वाचित सदस्य सामान्य सीट 52 मुस्लिम 30 यूरोपीय 9 जमींदार 7 वाणिज्य संघ 4 सिक्ख 2 मनोनीत सरकारी सदस्य 26 और गैर सरकारी सदस्य 15 था कुछ समय भारत जैसे विशाल देश में काउन्सिल के केवल 17644 और विधान मण्डल के 9,04,746 मतदाता थे। जहाँ तक विधान मण्डल के अधिकारों की बात थी, कुछ अधिकार लुहावने थे जैसे निम्न सदन को अनुदान मांगों की स्वीकृति और अस्वीकृती का अधिकार था। सदस्यों को अब व्यक्ति की स्वतन्त्रता और पूरक प्रश्नों सहित प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी थी। गर्वनर जनरल अभी भी भारत सचिव के माध्यम से ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायीं था। विधान मण्डल को पगुंता निम्न व्यवस्थाओं से प्रत्यक्ष प्रकट होती है।

1. गर्वनर जनरल विधान मण्डल का अभिन्न अंग था। वही विधान मण्डल का अधिवेशन बुलाता था, स्थागित करना और भंग कर सकता था।
2. गर्वनर जनरल की पूर्ण अनुनति से ही महत्वपूर्ण मामलों से सम्बन्धित मुद्दे उठाये जा सकते थे, अन्यथा नही।
3. गर्वनर जनरल को विधानमण्डल द्वारा पारित बिलों को बीटो करने का अधिकार था। वह अपने हस्ताक्षर विशिष्ट परिस्थितियों में अध्यादेश जारी कर सकता था।
4. अनुदान मांगों के अस्वीकार हो जाने पर भी गर्वनर जनरल उन्हें एक घोषणा के बाद जारी कर सकता था।

इस प्रकार सरकार की वित्तीय प्रशासकीय और विधायी कार्यो में अक्षुण्ण सर्वोच्च के सम्मुख विधान मण्डल एक असहाय और पंगु संस्था के रूप में उभरा गर्वनर जनरल हमेशा की तरह निरंकुश और स्वेच्छाचारी था। विधान मण्डल उसकी मंशा चेरी थी बेअसर और शाक्तिहीन।

"कोई भी अधिनियम जब पारित होता है तो उसके पीछे कई कारण थे। इससे पहले जो मात्र मिन्टो सुधार हुये वे त्रुटिपूर्ण अपर्याप्त तथा भारतीयों की समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार के सुधारो द्वारा उदारवादियों को खुश करने तथा उग्रवादियों को कुचलने की नीति अपनायी थी। उसकी प्रतिक्रिया भारत में हुयी सामान्य तथा सरकार का ध्यान भारतीयो को सन्तुष्ट करने की ओर गया। तीसरे लार्ड की नीति ने भारतीयो के मन में घोर निराशा पैदा की जिसमें भारतीयो ने स्पष्ट शब्दों में स्वशासन की मांग शुरू की। अतः सुधारों की आवश्यकता पड़ी। चौथे सरकार के प्रति मुसलमानों के स्वरूप में परिवर्तन आया। पृथक निर्वाचन की मान्यता ने अंग्रेजो और मुसलमानों की मित्रता को काफी गाढ़ा बना दिया। परन्तु मार्ले-मिन्टो सुधारों के बाद कुछ ऐसी घटनाएं हुयी जिसमें मुसलमानों में भी राष्ट्रीय जागरण हुआ तथा वे अंग्रेज विरोधी हो गये। पांचवे प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजो ने भारतीय सहयोग प्राप्त करने के लिए अनेक घोषणायें की। परन्तु युद्ध के बाद उक्त भारतीयों को एवं अपनी आशा पूरी होती दिखायी न दी तो उनमें असन्तोष बढ़ा। छठें, स्वशासन आन्दोलन को श्रीमती एनीबेसेन्ट के नेतृत्व में शुरू किया गया था, कुचलने के लिए सरकार ने बड़ा कदम उठाया, जिससे देश में राष्ट्रीय एकता अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी। अतः सुधारों की आवश्कता पडी।"[15]

मांटग्यु चेक्सफोर्ड सुधार प्रस्तावों पर विचार करने के लिए कांग्रेस ने अपना पहला विशेष अधिनियम 1918 में बम्बई में किया अधिवेशन के सभापति

विहार के प्रसिद्ध वकील हसन इमाम थे। उन्होंने गर्वनर जनरल के वीटों अधिकार का माखौल उड़ाते हुये कहाँ ''एक मात्र उत्तरदायित्व विशेष उत्तरदायित्व विवेकाएीन उत्तरदायित्व है। और इन सबके ऊपर उनका निषेधाधिकार (वीटो) इसे कहते है, वे जोड़ एकाधिपत्य, कसम खा कर एकाधिपत्य कांग्रेस ने करार दिया कि ये सुधार ''निराशा जनक और असंतोषज़नक थे।

कांग्रेस ने अपनी सही राय के मुताविक एसेम्बली चुनाव का अविष्कार किया लेकिन सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी के नेतृत्व में सुधारवादी गुट ने कांग्रेस से अलग होकर 'नेशनल लेवर फेंडरेशन पार्टी' के रूप में चुनाव लड़ा और उसके कई प्रमुख नेता विजयी होकर एसेम्बली पहुँचे कांग्रेस के अन्दर भी धीरे-धीरे बहुत से परिवर्तन हुए। देशबन्धु चितरजंन दास और मोतीलाल नेहरू ने दुश्मन के कैप में रहकर उसे कमजोर करने के उद्देश्य से स्वराज्य पार्टी का गठन किया। बाद में दिल्ली अधिवेशन में स्वराज्य पार्टी के एसेम्वली प्रवेश को मान्यता प्रदान की गयी।

1930 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी की विधायी पार्टी के रूप में स्वराज्य पार्टी ने अच्छी सफलता प्राप्त की उसने 42 सीटों पर विजय प्राप्त की ।

कई अवसरों पर स्वराज्य पार्टी ने मदनमोहन मालवीय की नेशनल पार्टी और जिन्ना के नेतृत्व वाली इनडीपैन्डेट पार्टी के सहयोग से सरकार को पराजित किया।

'' 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के अन्तर्गत द्वैध शासन व्यवस्था शुरू की गयी। द्वैध शासन प्रणाली का जन्मदाता सर बायोनियल कॉटिस था। जिसमे सर भुपेन्द्र नाथ बासु के लिए एक सत्र में इस व्यवस्था पर स्पष्टीकरण किया था। इस योजना को लार्ड माटेग्यू तथा चेम्सफोर्ड ने अपनाकर प्रान्तीय सरकार में पूर्ण रूप से स्थान दे दिया। इस प्रणाली के

आधार पर प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषद को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। पहले भाग में गर्वनर तथा उसकी कार्यक.रिणी परिषद के सदस्य थे तथा दूसरे भाग में गर्वनर तथा उसके मन्त्रीगण दोनों भागों के सदस्यों की पुष्टि का ढ़ग उसका वेतन तथा कार्यकाल से सम्बन्धित विषय आपस में बहुत ही भिन्न थे गर्वनर के सम्बन्ध कार्यकारिणी के दो भागों के साथ अलग-अलग प्रकार के थे इस विषय में गर्वनर की स्थिति पहले की अपेक्षा कुछ विचित्र थी। भारत सचिव तथा गर्वनर जनरल का प्रान्तीय सरकार पर नियन्त्रण पहले की अपेक्षा कुछ ढ़ीला था। माटेग्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट ने इस द्वैध शासन प्रणाली को एक प्रयोगात्मक तथा परिवर्तनशील प्रणाली बतलाया था।"[16]

1923 से 1925 तक चितरजंन दास के नेतृत्व में स्वराज्य दल ने परिषदों की सदस्यता को प्राप्त किया। इसका राजनीतिक उद्देश्य नकारात्क था। अर्थात 1919 के संविधान को भीतर से ही तोड़ फेंकने का था! मध्य प्रान्तों में 1924 में स्वराज्य दल को पूर्ण वहुमत हुआ था परन्तु मंत्रीगण अधिक समय तक न रह सके क्योंकि उनके विरूद्ध अविश्वास के प्रस्ताव पारित कर दिये गये थे। उसके बजट को भी पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। 1925 से 1926 तक मंत्रालयो की स्थापना का प्रयास असफल रहा। इसके पश्चात स्वराज्य दल ने स्वयं को प्रान्तीय परिषद से अलग कर दिया। पंजाब में भी गैर कांग्रेस दल के पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ जिसमें द्वैध शासन प्रणाली ने सन्तोषजनक ढ़ग से कार्य किया।

1926 के आरम्भ में ए0आई0सी0सी0 स्वराज्य पार्टी को विधान मण्डलों से निकल आने का आदेश दिया तो उन्होंने कोई विरोध नही किया। बजट अनुदान की पहली मांग को क्षणिक रूप से रद्द कर दिया गया। वह 7 मार्च 1926 को केन्द्रीय एसेम्वली से बाहर चल आयें।

द्वैध शासन के कारण विधान मण्डलों को विस्तार और उनके

लोकतन्त्रीकरण से भारतीयों को अपने निजी मामला का प्रबन्ध करने और सुधार की परियोजनाओं को प्रारम्भ करने तथा अपने देशवासियों की स्थिति सुधारने के लिए उपयोगी योजनाओं को शुरू करने का संयोग मिला। नौकरियों में भारतीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला क्योंकि कुछ विभागों के अध्यक्ष अब बन गये थे। इस प्रकार विधानमण्डल में और प्रशासन में भारतीयों के अधिकाधिक सम्मिलित होने से उनमें जिम्मेदारी की भावना का और स्वयत्त शासन के चाहे यह कितना ही कटा-फटा न था। वरदानों का अनुभव करने लगी इस लिए अपनी त्रुटियों के बावजूद द्वैध शासन का महत्व कम न था क्योंकि यह अंतिम लक्ष्य (स्वराज्य) की ओर जाने वाले मार्ग का पहला पड़ाव था।

भारतीय शासन अधिनियम 1935 - 1935 का अधिनियम भारतीयों संवैधानिक विकास के इतिहास में महात्वपूर्ण स्थान रखता है। 1919 के बाद पास होने वाला यह प्रथम महत्वपूर्ण अधिनियम था। 1919 से 1935 तक राजनीतिक स्थिति में बहुत परिवर्तन आ चुका था। परिवर्तन का आरम्भ गाँधी द्वारा 1920 में असहयोग अंदोलन चलाकर किया गया। 1922 में गांधी ने असहयोग आन्दोलन को अचानक स्थागित कर दिया गाँधी के इस निर्णय से लोगों में घोर निराशा फैली इसके बाद करीब पांच वर्ष तक आंदोलन गतिहीन पड़ा रहा। कांग्रेस में बड़ी वस्ती की भावना आ गयी। राष्ट्रीय आन्दोलन की बस्ती के इस काल में स्वराज्य दल का उदय हुआ। स्वराज्य दल ने अपने प्रयासो से जनता में राष्ट्रीय की ज्योति को बुझने नही दिया। विधान मण्डलों के अन्दर सरकार का विरोध करने तथा उसके मार्ग में बाधायें उपस्थित करके स्वराज्य दल ने राष्ट्रीय चेतना का जाग्रत रखने का प्रयास किया लेकिन स्वराज्यवाद का यह प्रयोग अल्पकाल में ही असफल हो गया।''

इस अधिनियम के अनुसार भारत में एक द्विसदनीय काउन्सिल ऑफ स्टेट एवं हाउस ऑफ एसेम्वली के नाम से संघीय विधानमण्डल एवं संघीय सरकार

के गठन का प्रस्ताव किया गया। सरकार में अधिकतम सदस्यीय मंत्री परिषद का गर्वनर जनरल को उसके कार्य सम्पादन में सहायता और सलाह के लिए नियुक्ति प्रावधान था। लेकिन न तो गर्वनर जनरल उसके विवेकाधिकार और व्यक्तिगत निर्णय के मामलों में अपनी मन्त्री परिषद की सलाह मानने को बाध्य था, न ही मंत्रीगण व्यक्तिगत अथवा सामूहिक तौर पर एसेम्बली के प्रति उत्तरदायी थे। ''दोनों सदनों की रचना सम्बन्धित पेंच और भी जटिल थे। यथा 'काउन्सिल ऑफ स्टेट' के हठ प्रतिनिधि अंग्रेज भारत से और अधिकतम 104 प्रतिनिधि देशी राज्यों एसेम्बली में 250 प्रतिनिधि अंग्रेज भारत से और अधिकतम 125 प्रतिनिधि देशी राज्यों से निर्वाचित होने थे। इसके अलावा काउन्सिल ऑफ स्टेट एवं संघीय एसेम्बली में साम्रप्रदायिक आधार पर सीटों का बंटवारा कुछ इस प्रकार था।''[17]

काउन्सिल ऑफ स्टेट में संख्या निम्नलिखित थी साधारण लोग 75, मुस्लिम 49, अनुसूचित जाति 06, स्त्रियाँ 06, सिक्ख 04, यूरोपीय 07, एग्ल भारतीय 01 इसके अतिरिक्त एसेम्बली में भी साधारण लोगों की संख्या 105, मुस्लिमों की 82, महिलायें 09, सिक्ख 06, यूरोपीय 08 तथा एग्लों इण्डियन 04 थे।

इन वर्गो के अतिरिक्त भारतीय ईसाई, व्यापार, उद्योग, संघ, जमींदार और श्रमिकों के वर्ग भी शामिल थे।

1935 का अधिनियम को बिना प्रस्तावना के पास किया गया था। इस अधिनियम के लक्ष्य के सम्बन्ध में किसी नयी नीति की घोषणा नही की गयी थी। 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना को ही 1935 के अधिनियम के साथ जोड़ दिया गया इसमें पूर्ण स्वराज्य या उपनिवेशक स्वराज्य के बारे में कोई अश्वासन नही दिया गया।

1935 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में दोहरे शासन की स्थापना की गयी थी वह मूल रूप में 1919 के प्रान्तीय द्वैध शासन की भांति ही था। संघीय

विषयों को दो भागों में बाँटा गया। संरक्षित और हस्तान्तरित। संरक्षित विषय प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, कबीलों के मामले तथा गिरजाघर मामले। हस्तान्तिरत विषयों का प्रशासन गर्वनर जनरल तथा मन्त्रियों को सौंपा गया था। मंत्री विधान मण्डल के सदस्यों में से चुने जाते थे। और उसके प्रति उत्तरदायी थे। 1935 के अधिनियम की सबसे बड़ी विशेषता प्रान्तीय स्वयत्ता की स्थापना करनी थी। इसके द्वारा प्रान्तों में दोहरे शासन का अन्त कर दिया गया और उसके स्थान पर पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी।

1935 अधिनियम की "चुनाव एसेम्वली धाराऐं जुलाई 1936 ले लागू होने वाली थी और एक्ट 1 अप्रैल, 1937 से कार्यान्वित होने वाला था। लेकिन जैसी कि आशंका थी कांग्रेस ने इसे राष्ट्रीय इच्छा की अनाभिव्यक्ति कहकर अस्वीकार कर दिया। और देशी राज्यों ने भी सरकार की इच्छानुसार संघीय विधानमण्डल और संघीय सरकार की योजना को ठुकरा कर एक्ट के संघीय स्वरूप को निष्प्रभावी कर दिया। क्योंकि केन्द्रीय संघ की स्थापना से धारायें केवल देशों राज्यों की निश्चित संख्या की अनुमति से ही क्रियात्मक रूप ले सकती थी।"[18]

1935 के अधिनियम के अन्तर्गत संघीय शासन की योजना रखी गयी। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारतीयों राज्यों अतः देशी राष्ट्रो को मिला कर किया जाता था। संघ के अन्तर्गत तीन प्रकार की इकाईयां रखी गयी।

अ. ब्रिटिश भारतीय प्रान्त

ब. चीफ कमीश्नर के प्रान्त

स. देशी रियासतें

ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों की संख्या 11 थी ये प्रान्त थे- मद्रास, बम्बई, बंगाल, पंजाब, उड़ीसा, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, असम, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त

और सिन्ध थे। चीफ 'कमिश्नर के प्रान्त' ब्रिटिश ब्लुचिस्तान, देहली, अजमेर, मेवाड़, कुरू, अण्डमान और निकोबर थे।

प्रान्तों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था। जबकि देशी रियासतों के लिए संघ में शामिल होना ऐच्छिक था। प्रत्येक देशी रियासत जो संघ में शामिल होना चाहती थी, एक स्वीकृत लेख पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। इस स्वीकृति लेख पर वे रियासतें उन शर्तों का उल्लेख करती थी जिन पर वह संघ शामिल होने के लिए तैयार थे।

1935 के शासन विधान का प्रति क्रियावादी तत्व, अंग्रेज सरकार के अभी तक घोषित सुधारों की परम्परा में देशी राज्यों को राष्ट्रीय आन्दोलन के रास्ते में रोड़े अटकाने के लिए तैयार करना था। वायसराय की एक्जीक्यूटीव काउन्सिल के सदस्य सरफजली ने इसे स्वीकारते हुयें कहाँ "उन्हें इस बात का अभास था कि भारत पर अपना अधिकार कायम रखने के लिए अंग्रेज अब एक त्रिभुजीय संघर्ष की रचना कर रहे थे। उनकी योजना थी कि देश को हिन्दूओं, मुसलमानों और देशी राज्यों में विभाजित कर दिया जायें ताकि प्रस्तावित संघ में राष्ट्र तत्वों से अधिक ब्रिटिश समर्थक मुसलमानों और देशी राज्यों की मत संख्या हो।"[19]

1935 के अधिनियम के अन्तर्गत जिस संघीय शासन की योजना रखी गयी वह दोषपूर्ण थी वास्तव में इसकी जो विशेषताएं थी, वे इसके दोष थे। इन दोषों की बजह से सभी भारतीयों ने इसका विरोध किया।

इस बात में कोई सन्देह नही की भारत के राज्य नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति के लिए भारत का राजनैतिक एकीकरण अनिवार्य था। मुख्य रूप से छोटी-छोटी रियासतों के रूप में भारत का मूर्खतापूर्ण विभाजन किया हुआ था। भारत के 45 प्रतिशत भाग पर एक तरह का प्रशासन था तो 55 प्रतिशत पर

बिल्कुल दूसरी तरह है। इस अन्तर को ब्रिटिश सरकार ने जानबूझ कर अपने हितों की रक्षा के लिए कायम रखा था।

"डा0 राममनोहर लोहिया 5 दिसम्बर, 1936 को द्वितीय विहार प्रान्तीय कांग्रेस समाजवादी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये 1935 के नये शासन विधान की कड़ी अलोचना करते हुये उसे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश अधिपत्य की मजबूत करने की नीति का विस्तार निरूपित किया। उन्होंने बताया कि नये शासन विधान के जरिये, साम्राज्यवाद की नगी नीति के पांच पाये है। संरक्षण देशी रियासतों मजहबी निर्वाचन क्षेत्र, प्रान्तीयता और रचनात्मक मनोवृत्ति है।"[20]

"नेहरू स्वयं प्रान्तीय स्वायत को कार्यन्वित करने के विरूद्ध थे। और अपने भाषण में उन्होंने 1935 में सुधार एक्ट को दासता का चार्टर बताया था।"[21]

ब. स्वतन्त्रयोत्तर संसद -

भारत स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के अन्तर्गत 14 अगस्त, 1947 के बाद केन्द्रीय विधान मण्डल और राज्य परिषद का अस्तित्व नही रहा। और भारत की संविधान सभा को जो 9 दिसम्बर 1946 से संविधान बनाने का कार्य कर रही थी। देश की विधान सभा के रूप में कार्य करने की शक्ति दे दी गयी इसमें ये शर्त रखी गयी थी।

भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत संघीय विधान मण्डल था। भारतीय विधान मण्डल की शक्तियां जैसी कि प्रत्येक डोमिनियम में लागू हो प्रारम्भ में डोमीनियम की संविधान सभा द्वारा संयुक्त की जायेगी।"[22]

इसके साथ ही सरकार के सम्बन्ध में भारत शासन अधिनियम में संशोधन कर गर्वनर जनरल को विधायिका से सम्बद्ध मामलों में उसके अधिकारों से च्यूत कर दिया गया। और उसकी सहायता और सलाह के लिए मंत्री परिषद की

नियुक्ति की गयीं। इस प्रकार 14-15 अगस्त की मध्यरात्रि से संविधान सभा ने भारत की सार्वभौमिक निकाय के रूप में भारत के शासन की शक्तियां ग्रहण कर ली। एक्ट की धारा 8 के अनुरूप विधायी कार्यो की शक्तियां भी संविधान सभा में नीहित की गयी। इस चुटीली वैधानिक समस्या पर नेहरू जो ने प्रख्याति पत्रकार दुर्गादास से विनोद में कहाँ- "भावलंकर हवा में गायब हो गये।"[23] नेहरू का संकेत के साथ केन्द्रीय लेजिसलेटिव असेम्बली का अपने आप विलय हो जाने की ओर था। जिसके स्वीकार करने वाले मावलंकर थे। नया संविधान सभा के अध्यक्ष डा0 राजेन्द्र प्रसाद थे।

संविधान सभा ने भारत के शासन के लिए संसदीय प्रजातन्त्र की व्यवस्था का प्रस्ताव किया। जिसमें कार्यपत्रिका जन प्रतिनिधियों के सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। संविधान निर्माण कमेटी द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव को बाद में संविधान के मसौदे में शामिल किया। संविधान की रूपरेखा समिति जिसके अध्यक्ष डा0 भीम राव अम्बेडकर थे। उन्होंने 8 नवम्बर, 1948 को संविधान सभा में संविधान का मसौदा और उसमें नीहित संसदीय प्रजातन्त्र की शासन व्यवस्था को स्वीकार करने सम्बन्धित प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

शासन का संसदीय स्वरूप उसके साथ की सभा संस्थाओं के साथ भारत ने भाग विधाता माना। 26 जनवरी, 1950 को भारत में संविधान लागू हुआ। संविधान सभा के प्रथम आम चुनाव होने तक प्रान्त जनरल सांसद के रूप में कार्य करती रहे। नये संविधान के अनुसार व्यस्क मताधिकारी पर प्रथम आमचुनाव 1951 से 1952 में हुये। अर्थात लोकसभा अस्तित्व में आयी।

"भारत के राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोकसभा से मिलकर भारतीय संसद का निर्माण होता है।"[24]

“राष्ट्रपति संसद का एक अभिन्न एवं महात्वपूर्ण अंग है। राष्ट्रपति ही के सदनो का आहवान सत्रावसान और लोकसभा में उदघाटन के अवसर पर एवं प्रत्येक वर्ष प्रथम सत्र के अवसर पर राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संम्बोधित कर सत्र के आहवान के कारणों के बारे में सूचित करता है। इसके अलावा भी यदि राष्ट्रपति चाहे तो दोनों सदनों की संयुक्त वैठक किसी भी सदन की बैठक को सम्वोधित कर सकता है। राष्ट्रपति किसी भी सदन को किसी विधेयक के बारे में अथवा किसी अन्य विषय पर विचारार्थ संदेश भेजा सकता है। कुछ एक विषयों से सम्बन्धित विधेयक, संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पुर्वानुमति से ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं।”[25]

“राष्ट्रपति को राज्य के प्रमुख होने ना तो न्यूक्तियां करने, संसद को बुलाने, सत्रावशन करने, सम्बोधन करने और संदेश भेजने तथा विघटन करने का अधिकार हो या संसद की वैठक ना चल रही हो तो उस समय वह अध्यादेश जारी कर सकता है उसे धन विधेयकों को संसद में प्रस्तुत करने की अनुमति देनी होती है। उसे दण्ड को क्षमादान प्रविलम्वन, प्रस्थमन, परिहरण तथा कम करने का अधिकार है। संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में नीहित है और वह सीधे अथवा अपनी सरकार के पदाधिकारियों द्वारा और संविधान के अनुसार उसका प्रयोग कर सकता है।”[26]

संघ के विधान मण्डल को संसद कहां जाता है और उसमें उपराष्ट्रपति के अतिरिक्त दो सदन होते हैं लोकसभा और राज्यसभा कहा जाता है।

राज्यसभा -

"राज्यसभा में 250 से अधिक सदस्य नहीं होते जिनमें 12 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं और शेष राज्यों के विधान सभाओं के चुने हुये सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व और एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा चुने जाते हैं। राज्य सभा एक स्थायी निकाय है जिसके 1/3 सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पश्चात अवकाश ग्रहण कर लेते हैं राज्यों को दिये स्थानों का विवरण अनुसूचि 4 में दिया गया है। संघीय प्रदेशों के प्रतिनिधि ऐसी पद्धति से चुने जाते हैं जो कि संसद विधि द्वारा निश्चित करती है। मनोनीत सदस्यों को साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा के विषय में विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव होना चाहिये।'[27]

राज्यसभा का विघटन नहीं हो सकता परन्तु उसके सदस्यों में से यथा शाक्य निकटतम एक तिहाई सदस्य, संसद निर्मित विधि द्वारा बनाए गये तद्विषयक उपबन्धों के अनुसार प्रत्येक दूसरे वर्ष निवृत्त हो जाते हैं।"[28]

भारत में उपराष्ट्रपति राज्य सभा के सभापति होते हैं। उपसभापति का चयन राज्य सभा के सदस्य अपने बीच में से करते हैं।"[29]

लोकसभा -

संविधान के 1987 के संशोधन के अनुसार लोकसभा में राज्यों के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से अधिक से अधिक 530 सदस्य और संघीय राज्य क्षेत्रों से अधिक से अधिक 20 सदस्य होते हैं। प्रत्येक राज्य के लिए लोकसभा में स्थानों का विभाजन इस प्रकार है कि स्थानों और जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिये यथा साध्य एक जैसा होता है। 2000 तक राष्ट्रपति को दो एंग्लो

इण्डियन सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार भी है। यदि सदन को पहले ही भंग न कर दिया जाए तो सदन की अवधि 5 वर्ष है।

भारतीय संसदीय प्रक्रियायें-

संसदीय कार्यप्रणाली कार्य विन्यास का कार्य सूची संविधान व संसदीय नियमों के आधीन संचालित होती है। प्रारम्भ में स्वतन्त्र भारत की संसद में ऐसे नियमों के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया जो पुरानी केन्द्रीय एसेम्बली के नियमों तथा स्थायी आदेशों से लिए गये थे। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का महत्वपूर्ण कार्य ऐसी प्रणाली का विकास करना था जिससे संसद सदस्य अपने दायित्वों का निर्वाह कुशलतापूर्व कर सके। विशिष्ट रूप से भारतीय संसद के अलावा भारतीय संसद के व्यवहार और प्रणाली को निश्चित रूप दे सके।

संसद की कार्यप्रणाली का विकास संसद के उद्देश्य और उसके कार्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत संसद के प्रमुख कार्य निम्नानुसार हैं-

1. विधायी संविधान में उल्लखित विषयों, विशेष परिस्थितियों में अविशिष्ट विषयों जो राज्यों और संसद दोनों को आवंटित न हो पर कानून बनाने का कार्य।

2. वित्तीय सरकारी व्यय को मंजूरी देना कराधान के प्रस्ताव स्वीकार करना।

3. प्रशासन पर निगरानी प्रश्नोत्तर, संकल्प, प्रस्तावों आदि के जरिए प्रशासन पर नियंत्रण रखने का कार्य।[30]

लोकसभा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य अपनी राजनैतिक शक्ति का देश और जनता के हित में प्रयोग करना है, क्योंकि सरकार लोकसभा के प्रति

उत्तरदायी होती है और लोकसभा अविश्वास प्रस्ताव को स्वीकार कर उसे अपदस्थ कर सकती है।"[31]

संसद अपने कार्य में सहायता हेतु समितियां भी न्यूक्ति कर सकती है। ये तीन प्रकार की होती हैं। एक वे जो सदन के संगठन और शक्तियों से सम्बन्ध रखती हैं। एक वे जो सदन की विधि सम्बन्धी कार्य में सहायता करती है और एक वे जो वित्तीय मामले में सम्बन्ध रखती है।

विधायी प्रक्रिया -

विधान सम्बन्धित सभी प्रस्ताव विधेयक के रूप में संसद के समक्ष लाये जाते हैं। केवल धनविधेयक को छोड़कर जिसका निर्णय अन्तिम रूप से लोकसभा अध्यक्ष करता है। जिन्हें केवल लोकसभा में पुनः स्थापित किया जाता है। अन्य विधेयक भी किसी भी सदन में पुनः स्थापित किया जा सकता है। मंत्रीगण संसद में विधेयक पेश करते हैं। ये विधेयक सरकारी विधेयक कहे जाते हैं। जो सदस्य मंत्री नहीं होते हैं वे गैर सरकारी सदस्य कहलाते हैं।

"गैर सरकारी विधेयक 15 दिन में केवल एक बार अर्थात प्रत्येक दूसरे शुक्रवार को पुनः स्थापित किय जा सकते हैं। तथा शुक्रवार को ढाई घण्टे के समय में अपर चर्चा की जा सकती है।"[32]

प्रत्येक सदन में प्रत्येक विधायक के तीन वचन होते हैं। इसके बाद ही उसे दूसरे सदन में विचारार्थ भेजा जाता है। पहले वाचन का मतलब है, विधेयक को पेश करने की अनुमति का प्रस्ताव जिसके पास होने पर विधेयक पेश किया जाता है। दूसरे वाचन के दो प्रक्रम होते हैं, पहले प्रथम में विधेयक पर विचार किया जाये अथवा कि इसे लोकसभा की प्रवर समिति को सौंप दिया जाये

अथवा दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये। अथवा उसे राय जानने के प्रयोजन से प्रज्चलित किया जाये इस प्रस्तावना पर विधेयक के सिद्धान्तों और उसके उपबन्धों पर सामान्य रूप से चर्चा होती है। दूसरे प्रक्रम का मतलब है कि पेश किये गये या प्रवर समिति या संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में, जैसी भी दशा हो विधेयक पर खण्डसा विचार।

तीसरे वाचन का मतलब हो इस प्रस्ताव पर चर्चा कि विधेयक को पास किया जाये जब कोई विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पास कर दिया जाये तो वह राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके सामने रखा जाता है। राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान करने के बाद विधेयक कानून बन जाता है।

भारतीय लोकसभा जनता द्वारा चुनी जाती है। विधेयक भी जनहित के लिए तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक विधेयक का उत्तरदायित्व है कि कम से कम प्रत्येक व्यवित जो भारत का नागरिक है उसे विधेयक द्वारा लाभान्वित हो सके जो संसद में पारित किया गया है। राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सामने भारत सरकार का भारतीय वित्तीय विवरण को देखते ही इसके अतिरिक्त विभिन्न पकार की मन्त्रियों द्वारा होने वाली चर्चा को भी बडी गम्भीरता से सुनता है। प्रत्येक क्योंकि मन्त्रालय, विभाग कार्यालय और उप कार्यालय की परीक्षा होती है और उसकी वर्षभर की गतिविधियों की पूर्णजांच और उन पर विस्तृत चर्चा के बाद ही उसके लिए धर्म स्वीकार किये जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न सदस्यों के बजट लेखानुदान विनियोग एवं वित्तीय विधेयकों के लिए विभिन्न चर्चाओं के माध्यम से विभाग और मन्त्रालयों की सफलताओं और असफलताओं के आने के अवसर प्रदान होते हैं। जो जनता की विभिन्न शिकायतों को प्रस्तुत करते हैं, और विभिन्न सुझाव और नीतियों पर भी अपने विचारों को केन्दीयभूत करते हैं। डॉ0

राममनोहन लोहिया ने बजट एवं अनुदान मांगों पर चर्चा के अवसर पर भरपूर उपयोग कर देश के सम्मुख महत्वपूर्ण नीतियां प्रस्तुत की थी।

अन्य प्रक्रियायें -

1. प्रश्नोत्तर -

भारतीय संसद में कृष्णकाल का विकास हुआ है, उसकी भी अपनी कुछ विशेषताएं हैं। जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दें, सभा की प्रत्येक बैठक का पहला घण्टा प्रश्न पूंछने और उनके उत्तर देने के लिए होगा लेकिन अध्यक्ष की अनुमति से प्रश्नोत्तर काल के बाद भी प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है। इसके साथ ही यदि सभा सर्वसम्मति से स्वीकार कर ले तो वह अन्य किसी महत्वपूर्ण कार्य पर अधिक समय देने के लिए प्रश्नोत्तर काल को समाप्त कर सकती है।

प्रश्नोत्तरों काल संसद की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की संकाओं का समाधान किया जा सकता है, जिससे संसद का प्रत्येक सदस्य अपनी क्षेत्रीय समस्याओं को रखकर संसद के समक्ष उनको सुलझाने का प्रयास किया जाता है।

सदस्यों को प्रश्न पूंछने के लिए प्रश्न की पूर्व सूचना संसदीय सूचना कार्यालय द्वारा प्रदत्त छपे फार्म पर अथवा सादे कागज पर मंत्री का पद नाम, जिसने प्रश्न सम्बोधित किया हो उत्तर की तिथि और अपने मत विभाजन की संख्या का उल्लेख कर हस्ताक्षर सहित कम से कम 10 दिन पहले और अधिकाधिक 21 दिन पहले देने होती है।"[33]

जो सदस्य अपने प्रश्न का मौखिक उत्तर चाहते हैं, उन्हें अपने

प्रश्न के पूर्व तारे का चिन्ह लगाना पड़ता है। अन्यथा उसे लिखित उत्तर के प्रश्नों की सूची में छापा जाता है। अध्यक्ष महोदय है तारांकित प्रश्न सूची के किसी भी प्रश्न को अतरांकित प्रश्नों की सूची में रखने का पूर्ण विशेष अधिकार प्राप्त होता है।

प्रश्नों का उत्तर देने के लिए भारत सरकार के मंत्रालय और विभागों ए, बी, सी, डी और ई नाग के पांच भागों में बांटा गया है। ये ग्रुप एक निश्चित और निर्धारित है। इन्हें सप्ताह में एक नियत दिन उत्तर देने के लिए निश्चित कर दिया गया है। इस प्रकार प्रत्येक मंत्रालय को प्रत्येक सप्ताह एक दिन लोकसभा में और राज्य सभाओं में मौखिक उत्तर के लिए 20 प्रश्न लिखित रखे जाते हैं। यदि तारांकित प्रश्न सूची के सभी प्रश्नों को नहीं लिया जाता है। जैसा कि अकसर होता है। शेष प्रश्नों के उत्तर अतरांकित प्रश्नों के उत्तरों के साथ सभा पटल पर रखे मान लिए जाते हैं। सदन में प्रत्येक प्रश्न पर अनेक अनुपूरक प्रश्न पूछे जाते हैं। और वे समूची कार्यवाही लघुवाद विवाद का रूप धारण कर लेती है।

ध्यानाकर्षण -

प्रशासन पर निगरानी, शंकाओं, संदेहों और शिकायतों को प्रकट करने के प्रश्नोत्तरों के अलावा कोई और सुगम तरीके हैं, जिनके जरिए सदस्यगण अपनी समस्या और मुददों को सदन के समक्ष रखते हैं। प्रश्न उत्तर के लिए चूँकि कम से कम 10 दिन की पूर्व सूचना आवश्यक होती है और अल्प सूचना प्रश्नों की ग्रहिता सम्बन्ध मंत्री पर निर्भर करती है, अतः तत्कालिक और लोक महत्व के गम्भीर किस्म के मुददों को उठाने के लिए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, अल्पविधि प्रस्ताव, और विशेष उल्लेख आदि प्रक्रियायें सम्बन्धी सहूलियातें सदस्यों

को प्राप्त है। इसके साथ ही सदस्यों की लोकहित में सदन और सरकार का ध्यानाकर्षित करने, विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों और संकल्पों के द्वारा वहस प्रारम्भ करने के पहले करने की नियमान्तार्गत अनुमति प्राप्त होती है। ऐसे महत्वपूर्ण प्रस्तावों में अविश्वास प्रस्ताव और विशेष अधिकार भंग से सम्बन्धित प्रस्ताव भी शामिल किये जाते हैं।

ध्यान दिलाने वाली सूचना भारतीय संसदीय प्रणाली की एक उल्लेखनीय नवीन व्यवस्था है।

"ध्यान दिलाने वाली सूचना भारतीय संसदीय प्रणाली की एक उल्लेखनीय नवीन गरिमा और व्यवस्था है इसका उद्गम भारत में ही हुआ है यह आधुनिक संसदीय प्रक्रिया में एक नयी व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत कोई सदस्य पहले से अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करके किसी मंत्री का ध्यान अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय की ओर ध्यान दिला सकता है और उससे प्रार्थना कर सकता है कि वह उस विषय के सम्बन्ध में वक्तव्य दे।"[34]

कोई सदस्य किसी एक बैठक के लिए दो से अधिक सूचनायें नहीं दे सकता। एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्यों से प्राप्त सूचनाओं की स्थिति में जिन सदस्यों के नाम उस सूचना पर कार्य सूची में दिखाये जाते हैं उसका फैसला है, उसका वैलट द्वारा किया जाता है।"[35]

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर मंत्री द्वारा वक्तव्य दिये जाने पर उस समय कोई वाद विवाद नहीं हो सकता लेकिन जिन सदस्यों के नाम कार्य सूची में होते हैं। उन्हें भी एक-एक प्रश्न करके पूँछने की अनुमति प्रदान की जाती है। ध्यानाकर्षण की सूचनायें अध्यक्ष अपने विवेक से ग्रहित कर सकते हैं चाहे इसके बारे में सरकार की इच्छा कुछ भी हो।

वस्तुतः ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के द्वारा सदस्य सरकार के किसी मामले में अविलम्ब उचित कार्यवाही के लिए प्रेरित करते हैं और इसी में इस प्रक्रिया की उपयोगिता निहीत है।

कामरोको प्रस्ताव -

काम रोको प्रस्ताव भी संसद के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की संसदीय कार्य प्रणाली में सुधार करने की अनेक सम्भावनायें रहती हैं। लोहिया ने भी काम रोको प्रस्ताव का उपयोग किया, उस वक्त जब कोई भी कार्य संसदीय गरिमा के अनुरूप नहीं होता है, उस समय काम रोको प्रस्ताव द्वारा आकर्षित करके विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है।

भारतीय संसद में काम रोको प्रस्ताव नेहरू जी के समकालीन इन्द्राजी के समकालीन एवं वी0पी0 नरसिम्हा राव के समकालीन रखा गया, काम रोको प्रस्ताव से विभिन्न संसद सदस्य अपनी बात को पूर्ती कराने के लिए जोर डालते हैं और संसदीय कार्यवाही बाधक बनते हैं।

काम रोको प्रस्ताव आमतौर पर एक प्रकार की संसदीय कार्य प्रणाली की गति को रोकने का प्रयास करती है इसमें गैर सत्ता दल के लोग भी शामिल होते हैं। काम रोको प्रस्ताव के द्वारा पूरे सदन में शोर शराबा है और सत्तारूढ सरकार को इस प्रकार की चुनौतियां का सामना भी करना पड़ता है। काम रोको प्रस्ताव को लोकसभा अध्यक्ष के द्वारा सुलझाने का प्रयास किया जाता है। जिससे संसदीय कार्यवाही सही और उचित तरीके से चल सके।

अविश्वास प्रस्ताव -

लोकसभा जनता का सदन होने के नाते यह सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है कि वे मंत्री परिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रकट कर सकती है। वस्तुतः संसदीय गरिमा का मूल आधार लोकतान्त्रिक और प्रजातान्त्रिक अवधारणाओं पर केन्द्रीभूत रहता है। अविश्वास प्रस्ताव एक प्रकार संसद के गति के लिए बाधक है। संसदीय लोकतंत्र का मूल आधार ही कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी और विशेष तौर से वह जनता के सदन के बहुमत के समर्थन के बजह से ही सत्तारूढ़ होती है। समर्थन के जारी रहने तक किसी भी पार्टी की सरकार चलती रहती है और समर्थन के समाप्त होने पर सरकार गिर जाती है।

हमारे देश के संसदीय इतिहास में प्रथम बार श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में गठित मंत्री परिषद की नौवी लोकसभा में दिनांक 7 नवम्बर 1990 को प्रधानमंत्री के द्वारा मंत्री परिषद में विश्वास के प्रस्ताव के गिर जाने के कारण त्याग पत्र देना पड़ा। विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रधान मंत्रीकाल का मुख्य मुद्दा मण्डल कमीशन था जिससे पूरे देश में एक अलोकतांन्त्रिक माहौल तैयार हुआ था।

''नियमों के अन्तर्गत सामूहिक रूप में मंत्री परिषद में विश्वास के अभाव का अप्रस्ताव ग्रहीत किया जा सकता है।''[36]

अविश्वास की पूर्व सूचना सचिव को सदस्य द्वारा उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने के पहले लिखित में देना होती है। अध्यक्ष द्वारा सूचना नियमानुकूल पाये जाने पर उसकी अनुमति से प्रस्तावक सदस्य प्रस्ताव पेश करने के लिए सभा की अनुमति मांगता है। जो उसे उसके समर्थन में कम से कम 50 सदस्यों के खड़े हो जाने पर प्राप्त हो जाती है। अनुमति प्राप्त हो जाने के बाद

दस दिन के भीतर उस पर चर्चा होना आवश्यक है। अध्यक्ष, सदन के नेता की सलाह से चर्चा की तिथि नियत करता है। चर्चा के समय निर्धारण कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर तय किया जाता है।[37]

अविश्वास प्रस्ताव के कारण उन पर संशोधन नहीं रखे जा सकते, प्रस्ताव पर प्रस्तावक एवं आम सदस्यों के बोल चूकने के बाद प्रधानमंत्री सरकार पर लगाये आरोपों का उत्तर देते हैं। प्रस्ताव के सदस्य को उत्तर देने का अधिकार है। प्रस्ताव पर वाद-विवाद एवं बहस समाप्त हो जाने के तुरन्त बाद उसे सभा के निर्णय के लिए रखता है। प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर सरकार त्याग पत्र दे देती है।

डॉ0 लोहिया ने 21 अगस्त 1963 के दिन आचार्य कृपालानी द्वारा प्रस्तुत अविश्वास के प्रस्ताव पर लोकसभा में अपने प्रसिद्ध भाषणों के द्वारा देश और दुनिया को बताया था कि हिन्दुस्तान की एक अतुलनीय संसदीय प्रक्रिया ने लोकसभा में प्रवेश ले लिया है। उन्होंने इस प्रस्ताव पर अपने भाषण के माध्यम से सरकार के पिछले 15 वर्ष के कार्यों का खोखलापन उजागर कर दिया है।

संसद सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकार-

संसद के संसद सदस्यों को, संसद के अधिकारियों को और संसदीय समितियों को अपने कर्तव्य पालन में निडर निष्पक्ष, द्वैषरहित, पक्षपात से रहित, अपने कार्य सम्पादन के लिए संविधान द्वारा संसद के अधिनियमों और परम्पराओं के अन्तर्गत कोई विशेष अधिकारी प्राप्त है। विशेषाधिकार का मतलब वो सुविधायें और छूट है जो सामान्य आलेखों को अप्राप्त है। संविधान एवं कानून के सामने वैसे सभी बराबर है। अतः ऐसा नहीं है कि संसद सदस्य किन्हीं मामलों में कानून की पहुंच से बाहर है।

संसद सदस्य होने के नाते, संसद की संसदीय समितियों की कार्यवाहियों में हिस्सा लेने की प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों, कृतिमानों, बैठकों में शामिल होने के लिए अपने और जाने से लेकर बैठक में दिये गये भाषण, सदन में पूछे गये प्रश्न (प्रश्नोत्तर काल में एवं शून्य काल में) उठाये गये मुददों आदि को लेकर उनके कार्य को सुगम बनाने भय आदि पक्षपात रहित अपने दृष्टिकोण को अभिव्यकत करने के लिए संविधान द्वारा संरक्षण के रूप में जो सुरक्षा कवच प्रदान किये गये हैं, वस्तुतः यही विशेषाधिकार है। संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य संसद की विशेषता, अधिकार और लोकतन्त्रात्मक विधाओं की रक्षा करना ये प्रत्येक संसद सदस्य का कर्तव्य है।

संविधान के अनुसार संसद के प्रत्येक सदस्य और उनके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियों विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वही होगी जो कि संसद सदस्य समय-समय पर कानून बनाकर परिभाषित करे और जब तक ऐसी परिभाषा नहीं की जाती है तब तक ये वैसी ही होगी जो संविधान के प्रारम्भ में अतः 26 जनवरी 1950 को लागू की थी।

संसद सदस्यों को समस्त वही विशेषाधिकार प्राप्त है जो ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन के सदस्य और समितियों को।

विशेषाधिकार भंग और अवमानना भी संसद में होता रहता है। जब कोई व्यक्ति या अधिकार, व्यक्तिगत रूप से सदस्यों या सामूहिक रूप से सभा के किसी विशेषाधिकार, अधिकार या उन्मुक्ति की अवहेलना करना है। यह संविधान की गरिमा पर कुठाराघात करता है तो उस अधिकार को विशेष अधिकार भंग करने की श्रेणी में रखा जाता है।

सभा के अधिकार राष्ट्रीय गरिमा के सन्दर्भ में अपराध कहे जा सकने वाले काम करने पर भी जैसे कि सभा के नियमों एवं आदेशों की अवहेलना करना आदि या सदस्यों या अधिकारियों के लेख आदि के द्वारा मानहानि सभा दण्ड दे सकती है। यद्यपि यह काम विशेष अधिकार हनन नहीं है। बल्कि इनकी उचित संज्ञा 'अवमान' है।

प्रत्येक सदन स्वयं अपने विशेषाधिकारों की रक्षक है। दोषी संसद सदस्यों को कारावास जन्म दे सकता है या उसकी भर्त्सनाकर सकता है, जिससे वह अवमान का दोषी समझता है। संसद के अधिकार सभा के हर प्रकार के अवमान पर लागू होता है, उसके दोषी चाहे सभा के सदस्य हो या वे लोग जो सदस्य नहीं है और चाहे वह अपराध सभा में हुआ हो या सभा के बाहर संसद की यह शक्ति विशेषाधिकार को वास्तविक बनाती है और इसी कारण सभा के अधिकारों का संरक्षण और उसकी गरिमा बनाये रखने के लिए सदन के पास विशेष अधिकार प्राप्त है।

विशेष अधिकार भंग के मामले उठाये जाने की प्रक्रिया भी संसद के सचिव को सूचना देना पड़ता है जो एक विशेष अधिकार के तहत है प्राप्त सूचना पर अध्यक्ष विचार कर सदस्य को अपने निर्णय के बारे में सूचित करते हैं इस प्रकार सभा में विशेषाधिकार तभी उठाये जा सकते हैं जब उसके लिए अध्यक्ष की सहमति पहले से प्राप्त कर ली गयी हो। अनुमति देते समय अध्यक्ष विशेषाधिकार प्रश्नों की ग्रहिता की शर्ते, एक बैठक में एक से अधिक प्रश्न ना उठाये जाये, प्रश्न हाल के विशिष्ट मामले तक सीमित हो और उस पर सभा के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो, का ध्यान रखता है। विशेषाधिकार प्रश्न पर भी अध्यक्ष की समिति के साथ सभी की अनुमति भी आवश्यक है। अनुमति मांगे जाने पर यदि

आपत्ति की जाये, तो अनुमति दिये जाने के समर्थन में 25 या उससे अधिक सदस्यों के खड़े हो जाने पर सभा की अनुमति प्राप्त हो गयी यह माना जाता है।

''अनुमति दिये जाने के बाद या तो सभा स्वयं उस पर विचार कर निर्णय ले सकती है अथवा सदस्य द्वारा रखे प्रस्ताव के अनुसार उसे सभा के विशेषाधिकार समिति को सौंप सकती है और सभा फिर विशेषाधिकार समिति की रिपोर्ट पेश होने के बाद ही निर्णय करती है।''[38]

अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से विशेष अधिकार भंग या अवमान का किसी मामले को विशेष अधिकार समिति को जाँच, छानबीन, रिपोर्ट देने के लिए सौंप सकता है। डॉ0 लोहिया ने अपने संसदीय जीवन में लगातार कई महत्वपूर्ण सवालों को जो सदस्यों को अथवा सदन के विशेषाधिकार के हनन के प्रत्येक मामले थे विशेषाधिकार प्रश्न के रूप में संसद में उठाने की कोशिश की लेकिन अधिकतर मामले में अध्यक्ष ने उन्हें उठाने की अनुमति नहीं प्रदान की।

लोकसभा के सदस्य को कितना जागरूक होना चाहिए और कैसे उसे लोकतांत्रिक आस्था को कायम रखने के लिए अपनी भूमिका का परिचय देना चाहिये, यह लोहिया के संसदीय रूप से बखूबी समझा जा सकता है-

> ''सांप को छेड़ना नहीं चाहिए और कोई छेड़ दे तो छोड़ना नहीं चाहिए। भाषा के सांप को इन लोगों ने छेड़ दिया फिर छोड़ दिया। सम्पत्ति के सांप को इन लोगों ने छेड़ दिया। सत्तरह वर्ष से खाली लोग सांप छेड़ना जानते रहे हैं, सांप को खत्म करना नहीं जानते। हमें क्या है दो, तीन, चार, पांच वर्ष, दस वर्ष रह गए हैं, लेकिन तुम मेरे जैसे आदमी की बातें सुन लो।

> राज दरबार में आम तौर से द्रोपदी का चीरहरण हुआ करता है, और जिस पर जुल्म होता है, उसी को आज कहा जाता है कि यह आदमी निकम्मा है।"[39]

डॉ0 लोहिया संसद के रूप में सशक्त भूमिका रही वे चाहे संसद में रहे हो या संसद के बाहर रहे हो, परन्तु जागरूक एवं मानवतावादी रही है, उन्होंने सदैव संक्रमकता पर सीधा प्रहार किया है और उसको रोकने का उपचार किया भी। एक बार डॉ0 लोहिया की टेक्सी को प्रधानमंत्री की कार को निकल जाने के लिए रोका गया- हालांकि दोनों एक ही दिशा में जा रहे थे लेकिन चौथी लोकसभा में उन्होंने विदेश मंत्री, वाणिज्य मंत्री के खिलाफ सभा में पथ भृष्ट करने वाले और गलत वक्तव्य देकर सभा को गुमराह करने के लिए विशेषाधिकार भंग का मामला उठाकर विशेषाधिकार समिति को सौंपने का प्रस्ताव पेश किया।

डॉ0 लोहिया ने जीवन में अनेक बार प्रधानमंत्री तथा मंत्री महोदयों की गलतब्यानी को सिद्ध कर चुके थे जो संसदीय कृतिमानों के खिलाफ थी और अनेक बार उनकी ओर त्रुटियों का भी संकेत कर चुके थे। भारतीय जनता लोकतांत्रिक ढांचे की कम समझ रखती थी उसने भी इस ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया सांसदों में भी दमदारी पैदा नहीं हो सकी इसका फल यही हुआ लोहिया की उपस्थिति का पूरा-पूरा लाभ देश को नहीं मिल सका।

डॉ0 लोहिया ने हमेशा सरकार की सच्चाई को उजागर करने का प्रयास किया क्योंकि सरकार सच्चाई से भागने की कोशिश करती थी उसे डर रहता था कि विशेष अधिकार समिति के सामने उसकी पोल खुल जायेगी, इसलिए अन्य प्रस्ताव लाये जाते थे, लेकिन अध्यंक्ष ने निर्णय लिया।

"मूल प्रस्ताव में कहा गया है कि प्रत्यक्षतः विशेष अधिकार भंग

हुआ है ऐसा दिखाया जा चुका और इस मामले को विशेषाधिकार समिति का सौंप दिया जाना चाहिये। यदि मतदान में यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि यह मामला विशेषाधिकार समिति को नहीं सौंपा जाता है और इस प्रस्ताव का मूल अंग कि क्या सभा का विशेषाधिकार भंग तथा अवमान हुआ है या कि नहीं अनिर्णीत रह जाता है और इस प्रश्न का निर्णय करना है। अतः संसद कार्यमंत्री को सभा में इस प्रश्न का निर्णय करने का अनुरोध करने का अधिकार है कि क्या सभा का विशेषाधिकार भंग तथा अवमान हुआ है या नहीं "मेरा विनिर्णय यह है कि दोनों प्रस्ताव नियमानुकूल है और उन दोनों को बारी-बारी से सभा के मतदान के लिए रखा जाना चाहिए।"[40] "लम्बे वाद विवाद के बाद जिसमें श्री नाथापाई और अटलबिहारी वाजपेयी ने अध्यक्ष द्वारा इस मामले में अपनायी जाने वाली प्रतिक्रिया पर यह पहला अवसर है कि जबकि विशेष अधिकारी के प्रश्न को विशेषाधिकार समिति को सौंपने की बजाए उसे केवल शंका के आधार पर रदद किया जारहा है।"[41]

और यदि विशेषाधिकार के प्रश्नों को हम मतों का प्रश्न बनायेगे तो फिर सदनों के विशेष अधिकार की रक्षा नहीं होगी।"[42]

फिर भी डॉ0 लोहिया ने सदस्यों से अपने प्रस्तावों के पक्ष में मतदान की अपील करते हुये कहा था।

भारत वर्ष के इतिहास में दिखता रहेगा कि सत्य और असत्य की लकीर के बारे में इस सदन ने क्या किया। माननीय दिनेश सिंह जी कहते हैं कि श्वेतलाना ने कभी उनसे यहां रहने को नहीं कहा, मैने साबित किया है कि उसने यही रहने के लिए कहा है या कोई पतली लकीर नहीं बड़ी मोटी लकीर है। इस मोटी लकीर के सम्बन्ध में आप सब लोगों से मेरा निवेदन है कि जरा इस तरफ

अपने मत को दीजिएगा लेकिन मतदान ने लोहिया का मूल प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और दूसरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया इस प्रकार सदन के बहुमत में सच्चाई से मुंह छुपा लिया।

लोहिया का संसद एक कर्म भूमि थी जो भी प्रश्न करते थे यह सत्य और धर्म पर आधारित रहता था, उनके विचारों में कर्तव्य निष्ठता अध्ययनशीलता, सांयमिता तथा मननशीलता भी समाई हुई थी। लोकतंत्र को हमेशा उन्होने पारदर्शी विचारधारा से देखा और सदन की गरिमा को और उसके वैभव को हमेशा सुरक्षित रखने का विचार किया।

व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्न -

नयी दिल्ली
7 सितम्बर, 1963

महोदय,

कल सदन में जब प्रधानमंत्री ध्यान आकर्षित किये हुये नोटिस के सम्बन्ध में उत्तर दे रहे थे तो उन्होंने कुछ सवालों के जबाव गलत दिये हम लोगों ने उसी समय उक्त गलत ब्यानियों का खण्डन करना चाहा परन्तु आपने अवसर नहीं दिया। हम लोग यह समझते हैं कि गलत ब्यानी से न केवल संसद में भ्रम पैदा हुआ बल्कि देशवासियों के दिमागों पर भी गलत असर होगा। अतः धारा 115(1)ए लोकसभा के कार्यवाही को चलाने के नियमों के अनुसार हम लोग इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं कि आप हमें मौका देंगे व सोमवार 9 सितम्बर को सवालों के बाद इस मामले को उठाने की आज्ञा दें।

प्रधानमंत्री के इस कथन पर कि सर्वोच्च न्यायालय ने सरसरी बातें कहीं, हम आपको सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का यह उदत्त देते हैं जिससे साबित होता है कि यह उनके फैसले का आधार था।

"We most however demur to the suggestion that malafides in the sense of improper motion should be established only by direct evidence that it must be shown from the nothing in the file which proceeded the order. It had faith would vitrate the order, the same can in our openinion, be deduced as a reasonable and in escapable in presence from proved facts."

मुख्यमंत्री ने भ्रष्टाचार नहीं किया है। ऐसा प्रधानमंत्री ने कहा, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब के मुख्यमंत्री को नेशनल मोटर्स जालन्धर और अपनी बीबी की दवाइयां और सिलाई के मशीन के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से दोषी ठहराया है। यह फैसले में साफ है।

सधन्यवाद

भवदीय,
राममनोहर लोहिया
एस0एम0बेनर्जी

''आगे मैं हिन्दी में बोलूंगा।''

लोकसभा अध्यक्ष को पत्र-

लोकसभा कार्यप्रणाली नियम संख्या 222 के अन्तर्गत कल सदन के सामने एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहता हूं। इसका तथ्य निम्न प्रकार है-

2 मार्च, 1965 को जब प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के अवभाषणों पर हुयी बहस का लोकसभा में जवाव दे रहे थे तब मेरा एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा मैं इस वक्त अंग्रेजी में ही बोल रहा हूं और बोलूंगा लेकिन आगे मैं हिन्दी में बोलूंगा।'' लोकसभा कार्यवाही की रपट से मैने ये वाक्य लिये हैं।

लेकिन इस हिस्से की पी0टी0आई0 द्वारा प्रसारित रपट गलत और गुमराह करने वाली है उसमें 'भी' शब्द जोड़कर उसके अर्थ को एकदम खत्म कर दिया है। इसमें सदन के विशेषाधिकारों का हनन होता है।

अगर सदन के अधिकृत कार्यवाही में इस किस्म की तब्दीली स्वयं प्रधानमंत्री के द्वारा की गयी है तो मेरा निवेदन है कि ऐसा योग्य नहीं होगा और इससे उनके खिलाफ विशेषधिकार का प्रस्ताव देने पर मैं बाध्य हो जाऊंगा।

नई दिल्ली 04.03.46

भवदीय,

राम मनोहर लोहिया

कार्य स्थागन प्रस्ताव

नई दिल्ली

14 अगस्त, 1963

सचिव

लोकसभा, नई दिल्ली

महोदय,

मैं एतद्द्वारा आवलम्बनीय लोक महत्व के एक निश्चित विषय पर चर्चा करने के प्रयोजन से सभा का कार्य स्थगित करने के लिए एक प्रस्ताव करने की अनुमति प्राप्त करने के हेतु सूचना देना चाहता हूं अर्थात क्योंकि बम्बई शहर में भारत सुरक्षा कानून संकट घोषणा का उददेश्य है शक्ति और सफलता के लिए नहीं बल्कि मजदूरों का जीवन स्तर दबाने के लए और उनके नेताओं को गिरफ्तार करने के लिए किया जा रहा है।

क्योंकि बम्बई की निगम मजदूर यूनियन का रक्षा कोष का 50 हजार का महीना दान बन्द हो गया है और उसी के देखा देखी शहर की दूसरी

मजदूर समस्याओं का दान बन्द हो सकता है।

क्योंकि बम्बई में अन्याय के कारण सारे देश में घटनाओं और प्रक्रियाओं की लड़ी शुरू हो सकती है। जो युद्ध कोष और युद्ध प्रयत्नों पर खतरनाक असर कर सकती है।

भवदीय

राम मनोहर लोहिया, विभाजन संख्या 930 त्रिदिवकुमार चौधरी, विभाजन संख्या 363 यशपाल सिंह विभाजन संख्या 445

लोक सभा अध्यक्ष को पत्र

मुझे आप की तरफ से मौखिक, उत्तर मिला कि मैं संविधान में टरमिन करने के लिये प्रस्ताव लाऊ सो मुझे नही करना है। मैं तो केवल वातावरण की कुछ बाते करना चाहता था अब मेरे बारे में बड़ी गलत फहमी फैल गयी है। विशेषकर लोक सभा में अगर आप 377 नियम पर मौका नहीं देते तो 357 पर दीजिए।

धन्यवाद आपका
राम मनोहर लोहिया

दल चुनाव और संसद
जी0बी0 बोस को पत्र

प्रिय श्री बोस,

नयी दिल्ली
3.8.66

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आप इन चीजो को मानकर नहीं चलते है, मैं सहमत हूँ कि सार्वजनिक क्षेत्र की बात भी आनी चाहिए लेकिन सवाल यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र का कौन सा पहलु और कैसे! अगर सार्वजनिक

क्षेत्र को जो भी सरकारी पार्टी हो उसे चुनाव खर्च में पैसा देना पड़ते और मेरी समझ में नहीं आता कि किसी और पार्टी को पैसा कैसे दे सकता है। इससे बड़ा नुकसान होगा।

श्री जी0वी0 वोस

28, वी, शाह नगर रोड

कलकत्ता, 26

आपका

राममनोहर लोहिया

लोहिया ने हमेशा संसद को एक कर्म भूमि मानी है। उन्होंने हमेशा कहा कि सांसद को किसी प्रकार से लोकतान्त्रिक देश में कार्य करना चाहिए और किस प्रकार अपने उपस्थिति की सार्थकता सिद्ध करनी चाहिए यह बात लोहिया जी के सांसद रूप से स्पष्ट होती है, वे विरोध के लिए विरोध नही थे। वे देश मगल के लिए प्राणपण से कार्य करना चाहते थे। अतः वे वहुत ही तीखे होते चले गये, क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध नही हो पाई और लोकतन्त्र क्षुब्ध तथा कुंठित हो कर रह गया।

डा0 राममनोहर लोहिया ने हमेशा भारतीय मजदूरों और गरीब वर्ग की रक्षा के लिए संसद के समक्ष कई बार प्रश्न रखे जिससे हिन्दूस्तान का कमजोर वर्ग के व्यक्ति का शैक्षणिक, धार्मिक और नैतिक विकास हो सके लोहिया जी के विचारों में और अन्य संसद के सदस्यों में विरोधावास रहता था। जो उसके व्यक्तित्व पर कोई प्रकार की अर्न्तद्वन्द्वों को बनाता था। उनमें संकल्प और इरादें की कमी नही थी। वे हमेशा ऊँचे आदर्शो की बात करते थे। और मानवता की पराकष्ठा डा0 लोहिया ने हमेशा मानव विकास और उसके हित के सम्बन्ध में संसद के समक्ष कई बार प्रश्न उठाते रहे चाहे वह चीन के प्रधानमंत्री का भारत

के रास्ते हवाईजहाज से आना सीमा सड़कें, अन्तराष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में प्रस्ताव, अल्पकाल चर्चा उठाने की सूचना, नियम 377 के अन्तर्गत चर्चा के लिए सूचना पकिस्तान से युद्ध या शान्ति हड़पे उसे क्षेत्र पर भाषण इत्यादि इन सब पर लोहिया ने पत्रों के माध्यम से या संसद बहस के मुद्दे उठाते रहे।
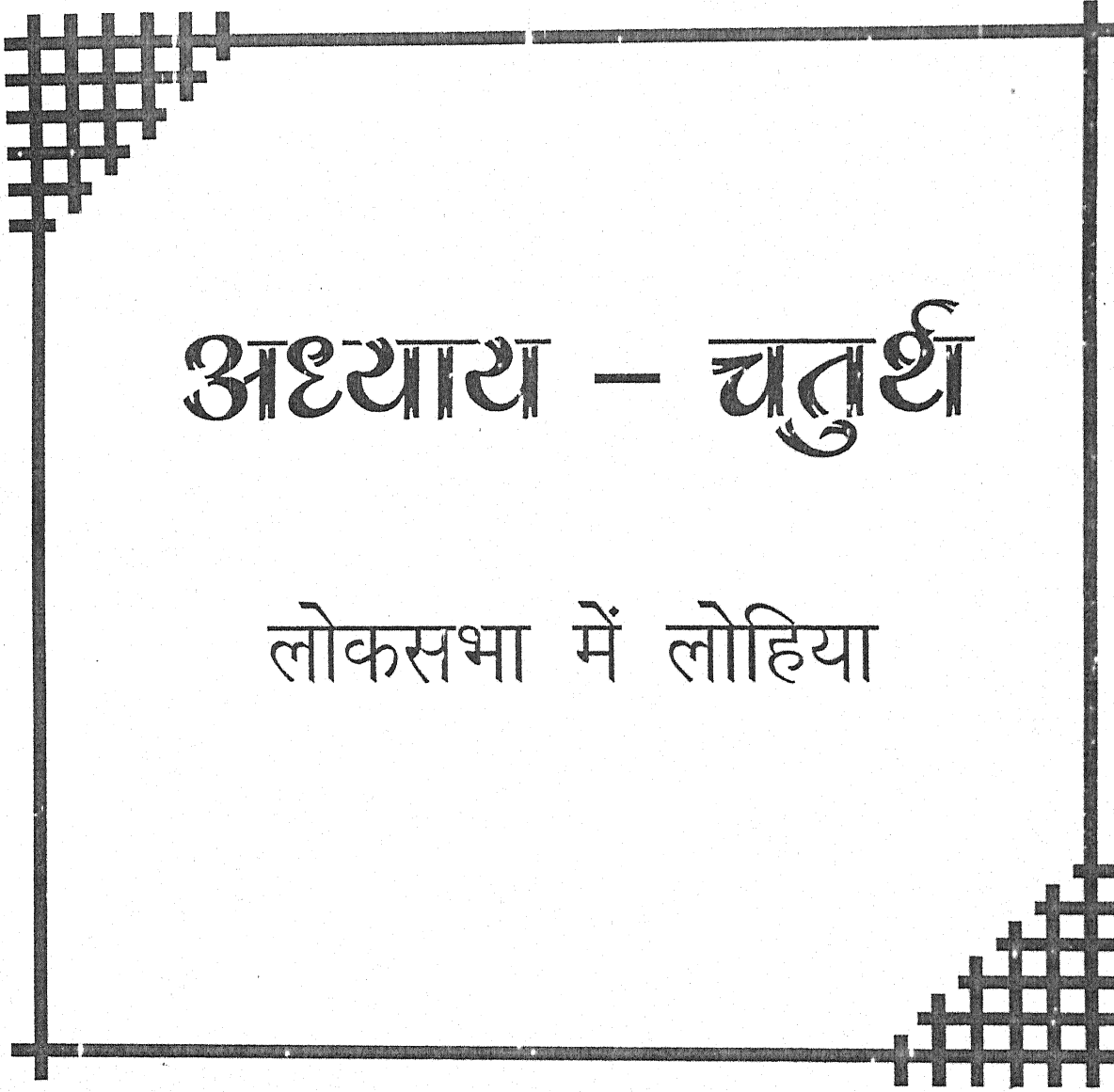
डा0 लोहिया महान सांसद थे। और संसद की परम्पराओं और गरीमा के प्रेरक भी थे। उनका ज्ञान गहरा था और उनकी वाणी में धार थी, व्यंग्य था तथा शक्ति थी वे एक सुलझे हुये राजनेता विचारक और राजनीति एवं अनुशासन के विशारद थे। उनमें देश का दर्द था। वे उपक्षितों तथा शोषितों के प्रति निष्ठावान थे। वे इस अर्थ में विद्रोही थे। कि उन्होंने गलत बात पसन्द नहीं थीं। और वे तुरन्त उस पर अपनी प्रक्रिया का इजहार कर दिया करते थे। जनता के मन से डर निकालना चाहते थे। और चाहते थे कि जनता सफल योग्य और कर्म्मयी बनें। उनके लोकसभा में दियें गये भाषण लोकसभा अध्यक्ष के पत्र वक्तत्य और टिप्पणी इसका जीवन्त प्रमाण हो यर्थाथता उन्होंने एक सफल सांसद की सशक्त भूमिका का निर्वाह किया वे अवधूत सांसद थे। उनका जीवन एक वृत्त था एक तप था।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. सैयद ए0 नकवी, पाकिस्तान के प्रसिद्ध इतिहास लेखक व पुरातत्वविद यूनेस्को कुरियर (हिन्दी सस्करण) में प्रकाशित मोहन जोदड़ो प्राचीन सभ्यता का संकट ग्रस्त लेख से

2. बी0 एल0 ग्रोवर यशपाल ''आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 437 प्रकाशक एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0

3. ए0 एस0 अल्टेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमैण्ट एनसियेन्ट इंण्डिया, दिल्ली 1949 पृ0 85-86

4. प्रो0 पी0 सी0 शर्मा0 भारत की राष्ट्रीय आंदोलन और सवैधानिक विकास, यूनिवर्सन बुक डिपो, ग्वालियर, पृ0 11

5. वही पृ0 29

6. बी0 एल0 ग्रोवर यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास पृ0 290 प्रकाशक एस0 चन्द एण्ड कम्पनी नयी दिल्ली

7. प्रो0 पी0 सी0 शर्मा संवैधानिक विकास, पृ0 29

8. डा0 वी0 पी0 वर्मा 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन पृ0 786 प्रकाशक लक्ष्मी, नरायण अग्रवाल, आगरा

9. प्रो0 पी0 सी0 शर्मा, संवैधानिक विकास पृ0 31

10. के0 एम0 मुंशी पिलग्रिमेज टू फ्रीडम भारतीय संवैधानिक दस्तावेज भाग भारतीय विधा भवन, बम्बई, 1967, पृ0 9

11. प्रो0 पी0 सी0 शर्मा, संवैधानिक विकास, पृ0 40

12. डा0 सत्या एम0 राय 'भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पृ0 संख्या 149 हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय नयी दिल्ली संस्करण 2002

13. वही पृ0 151-152

14. वही पृ0 नं0 163

15. दुर्गादास भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात बिल्को पब्लिशिग हाउस, मुंशी, भारतीय संवैधानिक दस्तावेज पृ0 19

16. डा0 सत्या एम0 राय0 'भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृष्ठ संख्या 169 हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय नयी दिल्ली संस्करण 2002

17. प्रो0 पी0 सी0 शर्मा संवैधानिक विकास, पृ0 122

18. दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात पृ0 172

19. वही पृ0 172

20. समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज (1934-52) प्रतिपक्ष प्रकाशन दिल्ली, 1986, पृ0 146

21. दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात पृ0 180

22. महेश्वरनाथ कौल, श्यामलाल शकधर, संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार पृ0 75

23. कास्टीट्यून्ट असेम्बली डिवेट, भाग - 5 1947 पृ0 359 - 60

24. भारत का संविधान भारत सरकार विधि एवं न्याय मंत्रालय दिल्ली, 1988 अनुच्छेद 79

25. अनुच्छेद 117 एवं 274

26. पी0 एल0 ग्रोवर यशपाल ''आधुनिक भारत का इतिहास 1707 ई0 से वर्तमान समय की पृ0 संख्या 436 प्रकाशक एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर, नई दिल्ली

27. पृ0 संख्या 436 -37

28. अनुच्छेद 83

29 अनुच्छेद 64, 66 एवं 89

30. के0 एम0 मुंशी, भारतीय संवैधानिक दस्तावेज, पृ0 25

31. पी0 एल0 ग्रोवर यशपाल 'आधुनिक भारत का इतिहास 1707 ई0 से वर्तमान समय तक पृ0 स0 437 प्रकाशक एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 रामनगर नई दिल्ली

32. श्यामलाल शकधर, भारतीय संसद पृ0 17

33. नियम 33, लोक सेवा, के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम

34. नियम, 97

35. नियम 97 (1) और (2)

36. नियम 98 (1)

37. लो0 स0 व0 वि0 (लोक सभा वाद विवाद) 14.8.63 कालम 424 - 31 और तीसरी लोक सभा की कार्य मन्त्रणा समिति की 17 वी रिपोर्ट

38. विल्टज का मामला, लो0 स0 वा0 नि0 20.4.61

39. राजेन्द्र मोहन भटनागर, अवधूत लोहिया पृ0

40. लो0 स0 वा0 वि0 5.467 कालम 2939 - 36

41. वही

42. वही

अध्याय - चतुर्थ

लोकसभा में लोहिया

लोकसभा में लोहिया

(अ) लोहिया की समाजवादी पार्टी चुनाव घोषणा पत्र :

डा० लोहिया का समाजवादी चिंतन भारतीय राजनीति के लिए एक आदर्श एवम् उत्कृष्ट जिसमें भारतीय राजनीति को विभिन्न प्रकार से संसदीय दल पर केन्द्रीभूत किया जिसमें विभिन्न प्रकार के मनतव्य और दृष्टव्य भी राजनैतिक पराकाष्ठा पर जोड़े जिनका एक विशिष्ट संसदीय दल की नीतियों के लिये भी सापेक्ष था। भारतीय राजनीति में लोहिया की समाजवादी पार्टी अपने आप में लोकतन्त्र की पराकाष्ठा पर खरी उतरती है। जिसमें कई प्रकार की संसदीय दल की नीतियां और लोकतन्त्र की गरिमा समाहित है।

हिन्दुस्तान में समाजवादी आंदोलन को वैचारिक धरातल प्रदान करने का कार्य डा० राम मनोहर लोहिया ने किया है। वास्तव में एशियाई देशो में मार्क्स की विचारधारा की अप्रासंगिता के परिप्रेक्ष्य में समाजवादी विचारधारा को हिन्दुस्तान सरीखे देशों में व्यवहार स्वरूप प्रदान करने की दिशा में एकमात्र चिंतक लोहिया का योगदान ही प्रगट होता है। कारण कि भारतीय कम्युनिस्ट विचारक मार्क्स का पल्ला छोड़ न सके और गैरकम्युनिस्ट विचारकों में अधिकतर समाजवाद के निर्गुण स्वरूप की निरर्थक शब्दजाल में अस्पष्ट, भ्रामक और अर्थहीन व्याख्या करते रहे। इस श्रेणी के विचारकों में जवाहरलाल नेहरू के साथ विनोबा भावे और उनके शिष्य जयप्रकाश नारायण भी आते है। जयप्रकाश तो अपनी विचार पद्धति के स्वयं बुने जाल में ऐसे फंसे कि आखिर में दलहीन लोकतंत्र की बात करने लगे। जवाहर लाल नेहरू रूसी मॉडल के योजनावद्ध विकास और सार्वजनिक क्षेत्र में भारी उद्योगों की स्थापना कर

देने मात्र को समाजवाद मान बैठे, लेकिन पूंजीवादी देशों में जनता की भोगवृत्ति की हिन्दुस्तान में अंधी नकल पर अंकुश लगाने में असमर्थ रहे। इस प्रकार भोग पश्चिमी तर्ज पर और विकास रूसी तर्ज पर, विना पैदावार के सुदृढ़ ढाचें के निर्माण के आलीशान खर्च की आदतें, परिणामः पूंजी, श्रम, विकास, पैदावार और संपदा के वितरण में वर्ग और क्षेत्र घनघोर असंतुलन, असमानता और असंतोष। विशाल दरिद्रता के सागर में सागर में यहां वहां अमीरी के टापू। यह व्यवस्था और जो कुछ भी कहलाये समाजवाद तो इसे कतई नही कहा जा सकता। जवाहरलाल के इस समाजवाद से तो जयप्रकाश नारायण भी ऊब चुके थे, उन्होने कहा ''नेहरू की प्रतिष्ठा और आम आदमी के दिलो में उन पर विश्वास दो चीजों के कारण है। एक तो यह कि वे समाजवादी है, दूसरी चीज यह है कि वे गांधी के राजनैतिक उत्तराधिकारी है। उनको न समाजवाद की गरज है, और न गांधीवाद की।''[1] नेहरू की उथली समाजवादी नीतियों के बारे में उन्होंने आगे कहा ''भारत में समाजवाद की तरफ तेज गति से और गति से और निर्णायक रीति से आगे बढ़ने में यदि कोई सबसे अधिक बाधक है तो वे जवाहरलाल नेहरू हैं। अपनी जिम्मेदारी के पूरे-पूरे एहसास के साथ में यह बात कह रहा हूं।''[2]

नीतियों के वाद, नेहरू के व्यक्तित्व की भी विदारक आलोचना करते हुये, जय प्रकाश ने 1959 में लिखे अपने एक अप्रकाशित लेख में लिखा है ''नेहरू का व्यक्तित्व एक आश्चर्यजनक विरोधाभास है। तीन-तीन दशकों से ये समाजवाद की बातें कर रहे हैं। लेकिन स्वयं सत्तारूढ़ होने के बाद उन्होंने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिससे समाजवाद में उनकी निष्ठा सिद्ध होती हो। इसका कारण यही है कि नेहरू सबको खुश रखकर सत्ता के साथ चिपके रहना चाहते हैं। ऐसा लगता है, मानों एक चतुर चालाक किन्तु सिद्धांतहीन और चलते पुरजे जैसे आदमी की तरह

उनका व्यक्तित्व बन गया है।"[3]

हिन्दुस्तानी समाजवादी आंदोलन का यह दुर्भाग्य रहा कि नेहरू के समाजवादी व्यक्तित्व और व्यवहार के बारे में जयप्रकाश का मोह भंग तब हुआ जब उन्हीं के मोह पाश में बंधे रहने की वजह सें 1953 में नेहरू की प्रजा समाजवादी दल के साथ सरकार और संगठन में सहयोग के पहले प्रस्ताव रखने और उसके बाद जवाब में जयप्रकाश द्वारा प्रस्तुत किये समाजवाद के चौहद सूत्रो को अस्वीकार करने के बाद की घटनाओं से[4] विवाद और परस्पर आक्षेपों का जो सिलसिला प्रजा समाजवादी दल में चला वो त्रावणकोर कोचीन में पुलिस गोली चालन को लेकर अपनी ही पार्टी के मुख्य मंत्री से त्यागपत्र की लोहिया द्वारा महामंत्री की हैसियत से मांग कर लिये जाने के दौर से गुजरते हुये, अंत में जयप्रकाश द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर पार्टी से लोहिया की मुअसली[5] स्वयं जयप्रकाश की राजनीति से विरक्ति[6] और 1955 के दिसंबर के अंत में लोहिया के नेतृत्व में नई सोशलिस्ट पार्टी के गठन के साथ[7] प्रजा समाजवादी दल के विखंडन के रूप में परिणित पर पहुच चुका था। श्री नेहरू का शायद यही अभीष्ट भी था।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में असल समाजवाद की असली पार्टी के संगठन के निर्माण की महती जिम्मेदारी लोहिया के कंधो पर आन पड़ी एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि पंगु पराश्रित और कांग्रेस परामुंहपेक्षी समाजवादियों से मुक्ति पाकर विचार और संघर्ष की योजना बनाने और लागू करने में लोहिया को पूरी आजादी हासिल हो गई। इसके पूर्व अविभाजित सोशलिस्ट पार्टी के पंचमड़ी अधिवेशन में लोहिया के भाषण के आधार पर पार्टी की नीतियों को, इलाहाबाद में नीति वक्तव्य के रूप में हांलाकि स्वीकार किया जा चुका था। लेकिन उसको लेकर कई नेताओं के मन में दुविधायें और शंकायें दोनो थी। बैतूल सम्मेलन में लोहिया प्रणीत

"समान दूरी" के सिद्धान्त को भी कांग्रेस से सहयोग के मताग्रही गले नहीं उतार पा रहे थे। ऐसे लोग लोहिया के विचारों को सार्वजनिक मंच से न तो अस्वीकार कर पाते थे न उनका तर्क संगत विरोध ही कर पाते थे। केवल आपस में भुनभुनाते रहते थे। श्री नेहरू भी लोहिया को "झगड़ालू समाजवादी" की संज्ञा देकर उनसे बचकर रहने की सलाह यदा कदा लोगों को देते रहते थे और उनकी सलाह का प्रभाव भी पड़ता था।[8]

लोहिया ने हिन्दुस्तान में सगुण समाजवाद की रूपरेखा का निर्माण और उसकी स्थापना के लिए कार्यक्रम की रचना अपनी पार्टी के घोषणा पत्र के रूप में प्रस्तुत की। दिसम्बर, 1955 में लोहिया के नेतृत्व में नयी सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन हैदराबाद में सम्पन्न हुआ। और 1957 के द्वितीय आम चुनावों के लिए पार्टी के घोषणा पत्र का निर्माण सिहोरा (म0प्र0) में आयोजित पार्टी सम्मेलन में संपन्न हुआ था। यह पार्टी की शुरूआत थी। विचारों और कार्यक्रमों के क्रमिक विकास के साथ 1962 के आम चुनावों के लिए जो घोषणा पत्र प्रस्तुत किया गया-वह देश की राजनीति में व्यापक परिवर्तन का आधार आज भी साबित हो सकता है। इतने स्पष्ट कार्यक्रम, उनको लागू करने की नीति और रीति के साथ, मैंने अन्य किसी पार्टी के घोषणाओं में नहीं देखे। वस्तुतः सोशलिस्ट पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र हिन्दुस्तानी राजनीति के अमूल्य धरोहर-दस्तावेज हैं। इनमें लोहिया के वर्षों के चिन्तन का निचोड़ भरा पड़ा है। इसकी विशेषता यह है कि दार्शनिक शब्दावली से मुक्त यह ऐसे कार्यक्रम हैं जिन्हें कोई भी सरकार तय कर ले तो, उसे किस प्रकार लागू कर सकती है। यह भी बताया गया है। घोषणा पत्र में तात्कालीन समय में देश की सभी समस्याओं पर जिनमें अधिकांश आज भी प्रासंगिक हैं।

डा0 लोहिया की समाजवादी पार्टी और उसका सामाजिक चिन्तन अन्य

नेताओं के लिए अनुकरणीय है। जिसका सम्बन्ध आमतौर पर सामाजिक राजनैतिक विषयों पर है जिसमें बहुत-सी संसदीय दल की नीतियां और अवधारणायें भी समाहित है। डा0 लोहिया के विचार सामाजिक विचार थे। उसमें भी भारत की जनकल्याण की भावना थी। उसके अलावा सामाजिकता, आत्मनिर्भरता और राजनैतिकता विचार थे।

भारतीय राजनीति के ठहराव पर चिंता :

1962 में सोशलिस्ट पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र के प्रारम्भ में तात्कालीन भारतीय राजनीति के परिदृश्य का विश्लेषण किया गया है। उदाहरणों के साथ यह बताया गया कि विभिन्न मुद्दों या कि समस्याओं पर जिनसें मुल्क मुखातिब है प्रमुख राजनैतिक दल सत्ताधारी कांग्रेस के साथ ही विपक्षी दल भी, कम्युनिस्ट, प्रजा समाजवादी और जनसंघ लगभग समान राय रखते हैं। जैसे वि. चारों मैकमोहन रेखा को भारत की उत्तरी सीमा मानते हैं। चारों अंग्रेजी के वर्चस्व को बनायें रखना चाहते हैं, चारों सम्पत्ति के अधिकार के पक्षधर हैं। और चारों समान अवसर के सिद्धान्त की रट लगाते हैं। इस तरह हिन्दुस्तान की राजनीति में उस समय आ चुके एक विचित्र किस्म के ठहराव की ओर जनता का ध्यान खींचने की कोशिश की गई। इस ठहराव का ही यह नतीजा था कि लोक सभा में पिछले 10 वर्षों में सरकार के खिलाफ एक भी अविश्वास प्रस्ताव विरोधी दलों ने नहीं रखा। यह दुनिया के संसदीय इतिहास की अनूठी घटना है। इस तात्कालीन प्रधानमंत्री की अद्भुत सफलता माना जाये अथवा कि विरोधी दलों का निठल्लापन। जनता के समाने कांग्रेस का विकल्प इसलिए नहीं था कि कांग्रेस से भिन्न मत रखने वाला दल उनके सामने नहीं था। अतः सोशलिस्ट घोषणा पत्र में कहा गयाः ''कांग्रेस शासन को वही दल हरा सकता है, जिसमें क्रान्तिकारिता और लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के तीनों गुण मिले हों। समाजवादी दल ऐसा ही समूह है।''[9] समाजवादी दल, अन्य विरोधी दलों और

सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी की समान नीतियों के विपरीत अपनी अलग राय रखता था। विचार ों और नीतियों के अलावा भी कर्म के स्तर पर जन समस्याओं पर लगातार संघर्ष चलाते रहने के कारण उसकी एक अलग पहचान उभरकर सामने आयी। इसकी याद दिलाते हुये घोषणा पत्र में कहा गया" लगातार सत्याग्रहों से लड़ाकू और इनक़लाबी तबियत को पनपाया है। जाति, भाषा, दाम इत्यादि लोक कल्याणकारी नीति का प्रचार हुआ है।"[10]

घोषणा पत्र में समाज मे फैली विषमताओं का उल्लेख करते हुये संकल्प व्यक्त किया गया कि छोटे और बड़े आदमी के फर्क को मिटाना समाजवादी दल अपना धर्म समझाता है।

सही मायने में घोषणा पत्र लोहिया विचारधारा का प्रत्यक्ष आइना है जो उनके जाति, भाषा, दाम और खर्च की सीमा आदि के बारे में प्रकट विचारों को अभिव्यक्त करता है। जाति प्रथा के बारे में अंतरजातीय भोज और विवाह को बढ़ावा देकर सामाजिक हमला, जमीन के पुनर्वितरण के साथ अर्थिक हमला और दबों को साठ प्रतिशत का विशेष अवसर देकर राजकीय हमला बोलने का आव्हान किया गया है। दबों में सभी औरतें, शूद्र हरिजन, आदिवासी और मुसलमानों की पिछड़ी जातियां शामिल किया गया है।

दामों के बारे में, उनके उतार-चढ़ाव को लेकर जो नीति घोषणा पत्र में व्यक्त की गई है वो आज भी उतनी व्यवहार्य प्रतीत होती है जितनी की यह घोषणा पत्र के जारी करते समय थी। उसमें कहा गया कि"

1. कारखानों में बनी जीवनोपयोगी वस्तुओं के दाम उनकी लागत से डेढ़ गुने से ज्यादा न हों।

2. अनाज के दामों में एक फसली दौर में सोलह सेकड़ा सेर से ज्यादा उतार-चढ़ाव न हो।

3. किसानी और कारखाना दाम में न्याय तथा समता हो।

4. विदेशी व्यापार में देश से जाने वाली किसानी, खनिज तथा विदेश से आने वाली कारखानी वस्तुओं के दामों में सम न्याय हो।

अभी नौवीं लोकसभा में गठित विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में बनी सरकार में वित्त मंत्री श्री मधुदंडवते ने घोषणा की थी कि वह लागत के डेढ़ गुने के भीतर कुछ आवश्यक वस्तुओं के दाम बांधने की नीति पर विचार कर रहे हैं, लेकिन वो विचार कर पाते इसके पहले ही सरकार का पतन हो गया। लेकिन इतना स्पष्ट है कि मजबूत संकल्पशक्ति वाली सरकार, निहित स्वार्थो के दबाव के विपरीत, यदि इस दाम नीति को लागू कर दे तो जनता, उपभोक्ता और किसान यानि कि हर तबके के लोगों को काफी राहत पहुंचा सकती है। अभी तक कोई भी सरकार बन नहीं पायी। न ही जनता में इस नीति के क्रियान्वयन को लेकर कोई ज्यादा उत्तेजना है, शायद यह राजनैतिक शिक्षण की कमजोरी का परिचायक है। लोहिया इसीलिए लगातार शिक्षण, लगातार संघर्ष की मुहिम चलाते रहते थे। लेकिन उनके प्रयास सीमितसाधनों के कारण सीमित प्रभाव ही डाल पाते थे।[11]

जाति, दाम के वाद घोषणा पत्र में हिन्दुस्तान की खेती के बारे में विचार किया गया है। राजनीति की तरह हिन्दुस्तान की खेती में भी ठहराव आ चुका था उस समय। देश में हर साल अकाल की काली छाया मंडराती रहती थी। अन्न का अभाव था। भुखमरी के कगार पर बैठा था देश। ऐसी हालत में घोषणा पत्र में कहा गया है।[12]

1. अलाभ कर जोतों यानि कि साढ़े छः एकड़ तक की औसत उपजाऊ जमीन पर से लगान खत्म हो।

2. जमीन का पुनरवितरण हो।

3. बँटाइदारी खत्म हो। (या कि दूसरे शब्दों जमीन जो जोते उसी की हो)

4. नयी जमीन पर खेती के लिये अन्न सेना बने जो दूध की पैदावार भी बढाये।

5. खेत मजदूरी तय हो।

यहां यह उल्लेखनीय बात है कि प्रारम्भ में लोहिया की छोटी जोतों पर लगान माफी की मांग की कांग्रेसी सरकारों द्वारा काफी खिल्ली उड़ाई जाती थी लेकिन इस प्रकार की लगान माफी योजना को बाद में जिन राज्यों में लागू किया गया उसमे तात्कालीन मद्रास राज्य की कांग्रेसी सरकार भी थी। जिसकी लोहिया ने खुलकर तारीफ की थी।[13] दूसरी अन्य महत्वपूर्ण बात, खेती को लेकर, अन्न सेना बनाये जाने के बारे में है। इसकी प्रेरणा लोहिया को इजरायल के सीमावर्ती क्षेत्रों का दौरा करते समय प्राप्त हुई थी। वहां लोहिया सीमाई इलाकों में इजराइली युवक युवतियों के समूहों को खेती बागवानी के काम में लगे देखकर उनकी मेहनत और उत्साह देखकर काफी प्रभावित हुये थे, मजेदार बात यह थी यही युवक समूह जो शांति के समय किसान थे मौका आ जाने पर सैनिक का कार्य भी करते थे। लोहिया ने लिखा "जो भी हो, इजराइल से कुछ युवजनों और उनके विशेषज्ञों को बुलाकर सीमा पर, खास तौर से पथरीली ठंडी और मध्य हिमालय की सीमाओं पर, खेती सह छावनी बनाने की बात जांचनी चाहिये।[14] लोहिया की कल्पना इस तरह पूरे हिमालय में डेढ़ दो हजार मील की लम्बाई और तीस चालीस मील की चौड़ाई पर फल खेती कर पैदावार बढ़ाने के साथ बेरोजगार युवक युवतियों को निर्माण के कार्य में लगानी की

थी। हिमालय के बाद पूरे देश में, हर प्रांत में, बंजर और बेकार जमीन में खेती का कार्य अन्न सेना के जरिये हो- लोहिया यही चाहते थे। घरेलू नीतियों को लेकर सोशलिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र की अन्य उल्लेखनीय विशेषता, लोहिया के चौखम्बा राज्य की रूपरेखा है, जो अन्य पूर्व में वर्णित कार्यक्रमों की तरह ही साफ है। उसकी प्रमुख बातें इस प्रकार हैं।[15]

1. सरकार और योजना के कुल खर्च में से एक चौथाई, गांव, जिले, शहर और पंचायत के मार्फत हों।

2. पुलिस मातहत हो गांव, शहर और जिला पंचायत के।

3. कलेक्टर का पद समाप्त हो। प्रशासन में नामजदगी की बजाय चुनाव का सिद्धांत हो।

4. खेती, कारखाने दूसरी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर, इंतजाम और मिल्कियत गांव, शहर और जिला पंचायत भी हो।

इस प्रकार सोशलिस्ट पार्टी, सत्ता, शक्ति और सम्पत्ति के स्रोतों को बिखरा कर जनता की झोली में डाल देना चाहते थे, जहां से माना जाता है कि सत्ता प्रस्फुटित होती है।

विषमता के उन्मूलन, समता की स्थापना, जाति, दाम, खेती और चौखम्बा राज्य जैसी बुनियादी मुददों पर अपनी नीति और कार्यक्रम की घोषणा के अलावा, अन्य उल्लेखनीय विशेषताओं में सरकारी नौकरी के लिये द्विज और अद्विज अंतरजातीय विवाह को एक गुण माने जाने के सम्बन्ध में की गई घोषणा भी है।[16] साथ ही, आदिवासी, खेत मजदूर और असहाय स्त्रियों को पुराने कर्जो से मुक्त कराये जाने और जंगल का इंतजाम आदिवासियों और उनकी समितियों को सौंप दिया जाना

भी शामिल है।[17] यहां गौर तलव बात यह है कि जनता दल ने देशभर में और भारतीय जनता पार्टी ने विशेषतौर पर मध्यप्रदेश में किसानों के कर्ज माफी को अपने चुनाव प्रचार का प्रमुख नारा बनाया था। सत्ता में आ जाने के वाद, किस रूप में और किसके कर्ज माफ किये जायें, इस पर काफी दिनों तक अनिर्णय की स्थिति बनी रही। यदि उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी का यह घोषणा पत्र पढ़ा होता तो शायद निर्णय लिये जाने में इतनी देर न हो पाती। सोशलिस्ट पार्टी के इस घोषणा पत्र में भाषा एवं शिक्षा जैसे विषयों पर भी ध्यान दिया गया था। भाषा और शिक्षा दोनों का आपस में गहरा संवंध भी है। इसी को ध्यान में रखते हुये, बच्चों को जबरी अंग्रेजी पढाये जाने से हो रहे नुकसान की ओर ध्यान दिलाते हुये, घोषणा पत्र में कहा गया ''करोड़ों बच्चों का माथा दबाया जा रहा है निरर्थक लिपि और भाषा ज्ञान से जबकि उनको विषय ज्ञान की जरूरत है। इसके साथ ही पब्लिक स्कूलों के जरिए देश में जारी दोहरी शिक्षा प्रणाली के उन्मूलन का संकल्प भी व्यक्त किया गया था। एक साक्षरता सेना बनाकर उसके द्वारा इस वर्ष में निरक्षता का समाप्त करने की अभिनव योजना भी घोषणा पत्र में प्रस्तुत की गई थी।[18] पंचवर्षीय योजनाओं पर कटाक्ष करते हुये उन्हें उन्नति नहीं मायाजाल है'' कहा गया। बाद में लोहिया ने घोषणा पत्र में लिखित इस बात को लोकसभा में प्रवेश के बाद अपने पहले भाषण में ही ''तीन आना बनाम पन्द्रह आना'' के रूप में प्रसिद्ध हुई बहस में सिद्ध कर दिया था।[19] लोगों की आय के बीच तीन सौ गुने के अंतर को कम करने और तर्क संगत वेतन नीति के द्वारा तात्कालीन समय में आमदनी को एक हजार रूपयों महीने से ज्यादा न बढने देने की नीति लागू करने का वायदा किया गया था।

सोशलिस्ट पार्टी के इस घोषणा पत्र की क्रांतिकारी घोषणा सेना और सशस्त्र पुलिस बल को छोड़कर बाकी सरकारी नौकरों को राजनीतिक कार्यों में भाग

लेने की छूट प्रदान करने के सम्बन्ध में है। इसमें राजनैतिक दलों में शामिल होकर उसके कार्य करने का अधिकार भी शामिल है।[20] मेरी राय में ऐसी घोषणा अन्य किसी राजनेतिक दल ने अभी तक नहीं की है। लोकतांत्रिक प्रणाली के अन्य विचारणीय पहलू "राइट आफ रिकाल" के बारे में घोषणा पत्र में कहा गया है कि किसी भी चुनाव क्षेत्र के पचास प्रतिशत से अधिक मतदाताओं की मांग पर प्रतिनिधि का वापस बुलाये जाने का प्रावधान होना चाहिये।[21]

विदेश नीति :

सोशलिस्ट पार्टी ने अपने घोषणा पत्र में सृजनशील विदेश नीति के जरिए विश्व संसद और विश्वसरकार बनाने की इच्छा प्रकट की है। उसमें कहा गया कि "दल प्रयत्न करेगा कि हिन्दी सरकार दरिद्र निषेध, निरस्त्रीकरण और आजादी की त्रिमूर्ती को समान रूप से साधे।"[22] इस प्रकार हिन्दुस्तान को विदेशर्नाति का प्रमुख ध्येय हिन्दुस्तान और दुनिया के सभी देशों की गरीवी मिटाना होना चाहिए। लेकिन उस समय तक की सरकार की विदेशनीति सृजनशील नहीं थी। घोषणा पत्र में कहा गया "हिन्द की विदेश नीति सृजित नहीं, न जनती है, न वनाती है, बढाती है, यह बीच बचाव और बाजार धन्धा करती है।[23] घोषणा पत्र में प्रारम्भ में ही विदेशनीति के सन्दर्भ में विश्व मैत्री और विश्वयारी के बीच के फर्क को साफ करते हुये कहा गय कि जहां विश्वयार दुनिया के नेताओं, नौकरशाहों, और सेठों को एक कर रहे हैं वहीं मार्क्स और गांधी की विश्वमैत्री की परपंरा में समाजवादी दल की हर कृषि विश्वमैत्री के सिद्धान्त को बढायेगी। इसके साथ ही घोषणा पत्र में तात्कालीन विशिष्ट मसलों पर अपने दृष्टिकोंण को निम्नानुसार व्यक्त किया।[24]

1. समाजवादी दल पुर्तगाल के सभी उपनिवेशों में जनक्रांति भड़काने में भरसक मदद करेगा। गोवा के जन आंदोलन को भीतर बाहर नीतिवत् मदद देगा।

2. भारत सरकार तिब्बत को चीन का अंग मानना और कहना बन्द करे। यह चाहेंगा कि तिब्बत स्वतंत्र बने, नहीं तो भारत चीन सीमा कैलाश मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रहमपुत्र के उत्तरी ढलाव रेखा पर खिचे न कि मैक मोहन रेखा पर।[25]

3. सरकार चीनी आक्रमण का सामना करें।

4. नेपाल और भूटान जैसे उत्तरी ईलाकों की जनता के मन को सबल लोकतंत्र की तरफ चलाने की नीति

5. अफ्रीका आंदोलन में सहानुभूति

उपरोक्त पांचों मुददों पर पार्टी की दृष्टिकोण वास्तविक, स्पष्ट और देश की सुरक्षा और सम्मान की रक्षा के उद्देश्य को प्रकट करता है। घोषणा पत्र जारी हो जाने के बाद की घटनाओं ने अक्टूबर 62 के भारत चीन युद्ध ने इसकी सच्चाई को सिद्ध भी कर दिया। असल में भारत चीन संबंध, भारत की उत्तरी सीमा के निर्धारण और उसकी सुरक्षा के साथ गहरे रूप से जुडे हैं, साथ ही भारत की सुरक्षा ज्यादा जुडी है, पडोसी देश नेपाल भूटान में लोकतांत्रिक ताकतों की मजबूती और तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व के सिद्धान्त को भारत द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के साथ। लोहिया एकमात्र चिंतक थे जिन्होंने इस बात की गहराई को शिद्दत के साथ मेहसूस किया था और वो ही एक मात्र राजनेता थे जो लगातार अपने विचार यात्राओं और कर्मों के जरिए उर्वसीयम में प्रवेश के लिये सत्याग्रह, असम मणिपुर में सत्याग्रहों गिरफ्तारी आदि के द्वारा लगातार भारत सरकार और जनता का ध्यान इस ओर खींचते रहे थे। इसी का परिणाम था कि चीन से युद्ध में हार के बाद लोहिया दुखी होने के साथ विचलित हो उठे थे। उन्होंने तात्कालीन सरकार को 'राष्ट्रीय शर्म' की सरकार कहकर घोर निन्दा की और सोशलिस्ट पार्टी की अभी तक चली आ रही

चुनाव नीति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये राष्ट्रीय शर्म की सरकार को अपदस्थ करने के लिये प्रसिद्ध 'गैर कांग्रेसवाद' का सिद्धांत ईजाद किया। जो 1967 के संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र का प्रमुख आधार बना। जिससे कहा गया "गरीबी, अकाल, भ्रष्टाचार और राष्ट्रीय शर्म को दूर करने चुनावी तालमेल पार्टी ने स्वीकार किया है। चुनावों के बाद केन्द्र एवं राज्यों में मिली जुली सरकारों की संभावना व्यक्त की गई थी। लेकिन प्रसोपा को टोस और समयबद्ध कार्यक्रम की पूर्ती छै महीनों में लगान माफी, मातृभाषा की प्रतिष्ठा, खर्च की सीमा, दाम बांधने और पिछड़ों को विशेष अवसर जैसे परिचित कार्यक्रम शामिल थे।

लोहिया की विदेश नीति एक सारे विश्व के लिए अनुकरणीय थी जिस नीति के माध्यम से लोहिया जी ने विश्व में ख्याति अर्जित की। सामाजिक और राजनीतिक चिंतन के लोहिया एक धुरी थे। जिन्होंने सारे विश्व को सही मार्ग दर्शन लेकर समाजवाद की ओर चलने का रास्ता बताया जिससे समाज का प्रत्येक व्यक्ति उनकी नीति को अपनाने और उसके साथ-साथ विश्व के साथ मिल कर एक नया समाज बनाया।[26]

समाजवादी पार्टी के संसदीय दल की नीतियां :

(डॉ0 राममनोहर लोहिया) संसार के सबसे गरीब देश का प्रधानमंत्री ऐसा हो जो अपने ऊपर प्रतिदिन 25 हजार रूपये खर्च करता हो, अत्यन्त भयंकर है मेरी बात कुछ लोगों को बैपर भी लग सकती हैं। ये कथन डॉ0 लोहिया जी ने संसद को उठाया इसके अतिरिक्त लोहिया ने प्रधानमंत्री की दिनचर्या पर होने वाले विभिन्न खर्चों की भी मांग उठाई थी, लोहिया जी ने हमेशा भारतीय अर्थव्यवस्था को नियमित और अनुशासित करने का प्रयास किया उनकी दृष्टि में प्रधानमंत्री को अपने खर्चे कम से कम नियोजित तरीके से खर्च करना चाहिये जिसमें भारत का प्रत्येक व्यक्ति

अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ एवं नियमित बना सके।

प्रजा समाजवादी दल के टूट कर नयी समाजवादी पार्टी के गठन की आवश्यकता, महसूस करने की पीछे लोहिया के मन में सिद्धांतों और कर्म को लेकर प्रसोपा नेतृत्व में मतभेदों के अलावा उस समय तक विकसित संसदीय दुरावस्था और उसमें विरोधी दलों की नगण्य भूमिका के प्रति उपजा घोर असंतोष भी शामिल था।[27] संसद जैसे वचपन में ही वृद्धा हो गयी थी और अपने प्रेमी प्रधानमंत्री की मुस्कान की सतत प्रतीक्षा में थी। गरीबी, बेकारी, बेदखली, मूल्य असंतुलन और अत्याचार होते हुये भी जन आंदोलन का पूरा अभाव था और संसद मौन थी। इस परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुये लोहिया ने कहा ''विरोधी पार्टियां आज बड़ी बातों पर चुप्पी रखती है और मामूली छोटी बातों पर आवाज उठाती है। आज अन्याय का विरोध तथा समाजवाद के निर्माण लायक संगठन खड़ा करना ही कर्तव्य है। ऐसा संगठन ही मौकापरस्ती का पुजारी बनने से बच सकेगा। यदि ऐसा न किया जा सकता हो तो खतरा है कि आगे भी राज्य खानदानी गुलामों के हाथों में चला जाएगा।[28] अपनी इसी बात का और खुलासा करते हुये नयी सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन में हैदराबाद में अध्यक्षीय भाषण्ण देते हुये लोहिया ने व्यक्त किया कि कोई भी सच्चा विरोधी दल नहीं रहा है। जब से दिल्ली और मास्को सरकारों में विदेशनीति का मेल हुआ, तब से कम्युनिस्ट विरोध खत्म हो गया। अपनी पूर्व पार्टी प्रसोपा की सबसे तीखी आलोचना करते हुये उन्होंने कहा ''प्रजा सोशलिस्ट पार्टी इतनी लकवामार है कि वह उस काल्पनिक पशु की भांति जो आधा मनुष्य और आधा पशु, आधा सरकारी और आधा विरोधी दल है। सरकारी पार्टी के साथ ऐसे विरोधी दलों की मिली-जुली कुश्ती चल रही है। विरोधी दल का जन्म तभी होगा, जब सम्यक दृष्टिकोण अपनाया जायेगा।

अतः सम्यक दृष्टिकोण के साथ विरोधीदल की भूमिका के कुशल निर्वाह के लिए, हिन्दुस्तान में लोकतंत्र के स्वस्थ विकास की इच्छा शक्ति के साथ लोहिया ने सोशलिस्ट पार्टी की संसदीय नीति का निर्धारण किया। इस नीति की अभिव्यक्ति लोहिया के अध्यक्षीय भाषण के साथ सोशलिस्ट पार्टी के सिद्धान्त एवं कार्यक्रमों के बारे में प्रकाशित पुस्तिका में की गई है।[29] इसके अलावा भी लोहिया द्वारा संसदीय कार्य विधि एवं आचरण के बारे में लिखित विभिन्न लेखों एवं वक्तव्यों में भी पार्टी की संसदीय नीति पर प्रकाश डाला गया है। हैदराबाद में पार्टी के स्थापना सम्मेलन में ही लोहिया में पार्टी के संगठन संबंधी अपनी रूपरेखा 1956 में पांच लाख सदस्यों, एक लाख क्षेत्र समितियों, पांच सौ अध्ययन केन्द्रों, जहां संभव हो आंदोलन और जहां आवश्यक हो संघर्ष और हर जगह रचना के आगे बढने के आव्हान के साथ प्रगट करते हुये इसके माध्यम से अगले सात सालों में सत्ता पर काबिज होने की योजना और संकल्प की घोषणा की।[30] पार्टी की चुनाव नीति का सार बताते हुये उन्होंने कहा "सोशलिस्ट पार्टी देश में विचार परिवर्तन चाहती है, केवल मत प्रदर्शन नहीं, बल्कि कुछ निष्ठायें निर्माण करना और समाज को श्रद्धावान और संगठित बनाना चाहती है। यह चुनाव की तरफ गहराई से देखती है और मानती है कि चुनाव का मतलब है जनता की सार्वभौम इच्छा की अभिव्यक्ति। देश की सियाती जिन्दगी शुद्ध और मजबूत करना और सारे शोषण का अन्त करना सोशलिस्ट पार्टी का उद्दिदष्ट कार्य हैं।"[31]

डा0 लोहिया ने संसद में अपनी व्याख्यात्मक टिप्पणी देते हुये कहां कि सरकार किसी एक काम को उठाये, आग लगा दे और आग बूझाने का काम विरोधी दल करें, वे ईट पत्थर खाये ये कहां तक उचित है। पूरे उत्तर प्रदेश में आज कट्टरपंथी जिहाद बोल रहे है और सरकार टालमटोल और कायरता की नीति

अपनाकर मैदान छोड़कर भाग रही है। क्या इस यूनीवर्सिटी संसोधन विधेयक पर बहस तो हो गयी लेकिन गृहयुद्ध करवाने का काम तो उत्तर प्रदेश में हो रहा है। इसलिए विधेयक पर चाहे जब बहस हो एक प्रस्ताव जो डा0 लोहिया ने और मैंने दिया है। 193 धारा के अन्तर्गत छोटे असर की बहस उठाने के लिए उसको आप स्वीकार करे और चर्चा में इस प्रकार देश में लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर, तात्कालिक लाभ के जंजाल से युक्त होकर, दूरगामी प्रभावों को ध्यान में रखते हुये अपने कार्यों द्वारा पार्टी ने जनता में लोकतांत्रिक पद्धति के प्रति श्रद्धा और विश्वास पैदा करने के लिए अपने आप को संकल्पित और समर्पित किया।

डा0 लोहिया महान संसद थे और संसद की परम्परा के लिए प्रेरित थे उन्होंने हमेशा भारतीय लोकतन्त्र की गरिमा को जीवित रखा उसके अतिरिक्त वो कहते थे कि हमको ऐसा तथ्य होना चाहिए जिसमें जनता को हम लोग सेवा कर सके और अन्य लोगों को सही सलाह देते थे उनमें थे मुख्य रूप से एस.एम. बनर्जी सरदार धन्ना सिंह, प्रकाश वेद शास्त्री, ओमकार लोल वैखा, गंगाशरण सिंह, जे.बी. कृपलानी, फखरूद्दीन अली अहमद, अटल विहारी वाजपेयी, मुकूट बिहारी लाल।

चौकीदार की भूमिका :

डा0 लोहिया एक गैर क्रान्तिकारी समाज में क्रान्तिकारी के रूप में पैदा हुए। इस विरोध की बजह से उनकी खास अहमियत बनी और यहीं उनकी असफलता का शबाव भी बनी उनकी राजनीतिक अवधारणाएँ मोटे तौर पर सकारात्मक थी। वह इस बारे में ज्यादा स्पष्ट थे कि क्या खत्म किया जाना चाहिए और क्यो। खत्म होने के बाद क्या नयी चीजे आंय इसके बारे में वह इतने स्पष्ट नही थे। उनका विश्वास था अन्ततः अराजकता के बीच में से सुधार शुरू होगा। वह जड़ता की वनस्पित अराजकता को पसन्द करते थे।

तभी 1962 के घोषणा पत्र में सोशलिस्ट पार्टी ने संसदीय क्षेत्र में अपने उद्देश्यों को संक्षेप में समेटते हुये व्यक्त किया कि "अभी तो वह ऐसा सशक्त चौकीदार बनना चाहता है जो विभिन्न सरकारों पर कामयाब निगरानी रख सके।[32] इसके लिये इतनी संख्या में लड़े और जीते कि:

1. समाजवादी दल को अधिकाधिक प्रदेशों में मान्यता मिले।

2. लोकसभा में पूरे सदन की कार्यवाही में उसका सहयोग आवश्यक हो जिसके फलस्वरूप सरकार को जरा दबाकर और संभलकर चलना आवश्यक पड़े। "क्योंकि जहाँ समाजवादी पर्याप्त संख्या में विरोधी दल बन सकेगा वहाँ सरकार को भ्रष्टता से विमुख और लोक कल्याणकारी नीतियों की तरफ झुकाने में सफल होगा। इस प्रकार सरकार पर सतत निगरानी के जरिये सरकार को जनता के कल्याण के लिए कार्य करने की ओर, संभव हो तो प्रेरित करना, नहीं तो उस दिशा में कार्य करने की ओर धकेलना यानि कि मजबूर कर देना, यह सोशलिस्ट पार्टी के संसदीय दल की प्रमुख नीति कही जा सकती है। लेकिन इस नीति पर चलना सरल कार्य नहीं था। इसलिये पार्टी ने अपने संदस्यों को इस बारे में संचेत करते हुये इस नीति के पालन करने में संभावित बाधाओं और खतरों से पहले ही सावधान किया था।

1. वाराणसी में मालवीय जी द्वारा प्रस्थापित विश्वविद्यालय का नाम हमेशा काशी विश्वविद्यालय रहा।

2. उसमें शिलान्यास, मुद्रा शीला तथा पुरानी ईटो पर यहीं नाम खुदा हुआ है।

3. जिस ईट को एक सदलाल ने सदन के सामने रखना चाहा था पर वह तो शायद चाल फरेबी से बनायी गयी थी। जिसकी उस सदस्य को जानकारी नहीं थी। वह मालवीय जी की मृत्यु के बाद बनाई गयी।

4. मालवीय जी के लिए 'काशी विश्वविद्यालय' यह नाम असली और अतिपवित्र रहा है। केवल अंग्रेजी अनुवाद में वह खिचड़ी नाम 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' रहा है।

5. यह लड़ाई कट्टर पंथी और उदारपंथ की लड़ाई है और उस लड़ाई से भागना सर्वथा अनुचित है। उसका बहुत खराब असर देश की एकता पर होगा।

लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था का सम्बन्ध स्वतन्त्रता और समता के लोकतान्त्रिक मूल्यों या आदर्शों से है। लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था को इसलिए पसन्द किया जाता है और इसका समर्थन भी इसलिए किया जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत नागरिकों को अधिकतम स्वतन्त्रता मिलती है और प्रत्येक नागरिकों को एक समान महात्व दिया जाता।

सरकार द्वारा बनाये गये कानून से कई बार नागरिकों की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है। लेकिन लोकतन्त्र में नागरिक स्वयं सरकार और कानून बनाते है। इसलिये लोकतन्त्र में इस बात की सबसे अधिक गारंटी रहती है, कि नागरिकों की स्वतन्त्रता को अनावश्यक रूप में सीमित नहीं किया जायेगा। जब नागरिक अपने द्वारा निर्वाचित सरकार के माध्यम से कानून बनाते है तो फिर यह ऊपर से अरोपित नही होता है, बल्कि एक तरह का स्वनियन्त्रण या आत्मानुशासन होता है। और अगर कोई सरकार नागरिकों की स्वतन्त्रता को आवष्यकता से अधिक सीमित कर ले तो फिर नागरिक चुनाव के माध्यम से उस सरकार को बदल भी सकते है। इस तरह लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था का स्वतन्त्रता से सीधा सम्बन्ध है।

संसदीय संस्थाओं की निराशाजनक हालत :

हमारे देश में संसदीय नियम व आचरण की जो मर्यादायें आज प्रचलित हैं, और जिन पर आजादी के बाद के पहले के वर्षों में जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता था। वे करीब करीब वहीं हैं जो 19वीं सदी से इंग्लैण्ड में चली आ रही है। यूरोपीय देशों का संसदीय आचरण जिसके विकसित होने के पीछे सैकड़ों वर्षों का इतिहास है, पिछड़े मुल्कों के लिये आदर्श नहीं हो सकता। हमारे यहाँ राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं तत्काल समाधान चाहती है। वहाँ मौजूदा यूरोपीय संसदीय लोकतन्त्र के नियम और शिष्टाचार उसमें बाधक सिद्ध होते हैं।

अतः सोशलिस्ट पार्टी ने अपने विधायकों से कहा, लोगों की वास्तविक समस्याओं को प्रगट करने में तथाकथित विधायी परम्पराओं और नियमों के पालन करने की शिष्ठता की बनावटी बाधाओं को तोड़ने में पैदा होती जा रही झिझक को उन्हें समाप्त करना होगा।[33] अतः समाजवादी विधायक को, हमेशा जागरूक रहकर जनता के हितों की रक्षा के लिये उपलब्ध अवसरों का समुचित उपयोग करने के साथ और अधिक ऐसे अवसर पैदा करने की कोशिश करने के लिये कहा गया। पार्टी सदस्यों को तात्कालीन संसदीय दुरावस्था के बारे में बताते हुये कहा गया कि "वर्तमान स्थिति और व्यवहार के नियम संसदीय संस्थाओं पर जनता के नियन्त्रण के सिद्धान्त के खिलाफ कार्य करते हैं। हांलाकि संसद के सत्र पर्याप्त समय के लिए जारी रहते हैं लेकिन उसमें जनता की शिकायतों को सुनाने और सरकार के गलत कार्यों का भंडाफोड़ करने के लिये अवसर, समय और नियम दोनों की वजह से बहुत ही सीमित है।[34] वास्तव में देखा जाये तो व्यवहार में लगभग पूरा समय सरकार अपने ही कार्यों के लिये ले लेती है और भले ही कितना ही महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक मुद्दा किसी गैर सरकारी सदस्य का हो उसे उठाने में बहुत-सी

कठनाईयाँ पेश आती हैं। अतः पार्टी ने "संसदीय संस्थायें गैर सरकारी कार्यों के लिए पर्याप्त समय और अवसर दोनों प्रदान कर सकें।" यह कहकर अपने सांसदों और विधायकों को इस दिशा में प्रयास करने के लिये प्रेरित किया।

समाजवादी विधायकों को निर्देशः- संसदीय संस्थाओं की असंतोषप्रद स्थिति की ओर ध्यान दिलाने के वाद सोशलिस्ट पार्टी ने अपने सांसदों और विधायकों को कार्य करने के सम्वन्ध में नीतिगत निर्देश भी जारी किये। उनमें कहा गया है कि "जवकि भ्रष्टाचार और पक्षपात के सभी मामलों का भंड़ाफोड़ करना चाहिये लेकिन समाजवादी विधायकों का पहला कार्य तो विरोध में रहते हुये सरकार की गलतियों, गलत कार्यों और उसकी अक्षमता के खिलाफ जनता में उत्तेजना पैदा करना होना चाहिए।[35] सोशलिस्ट पार्टी का एक उद्देश्य संविधान के अलोकतांत्रिक हिस्सों का खतम करना भी है खास तौर पर निरोधक नजरबंदी के संबंध में अनुच्छेद 22 के प्रावधान। इस प्रकार पार्टी ने आव्हान किया कि व्यक्ति स्वतन्त्रता को अक्षुष्ण बनाये रखने के लिए बिना मुकदमें के बन्दी बनाया जाना असंभव बना देने के प्रयास जारी रहने चाहिए।[36]

वे आर्थिक दृष्टि से लोकतान्त्रिक समाजवादियों की स्थिति पूँजीवादी और साम्यवादी के बीच की है ना तो वे अनियंत्रित पूँजीवाद या सरकार द्वारा आर्थिक हस्तक्षेप की नीति का समर्थन करते है। और न ही अर्थव्यवस्था को पूर्ण सरकारी नियंत्रण का जैसा कि सर्वा अधिकार वादी समाजवाद या साम्यवाद में होता है लोकतान्त्रिक समाजवादी गैर बराबरी मिटाने और सामाजिक, आर्थिक समता के लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करते है, लेकिन वे अर्थव्यवस्था पर पूर्ण सरकारी नियन्त्रण का समर्थन नही करते। भारत, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन और जापान आदि देशों के समय-समय पर लोकतान्त्रिक

समाजवादी पार्टिया सत्ता में आयी है, लेकिन उन्होंने अर्थव्यवस्था पूर्ण सरकारी नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया।

समाजवादी विधायकों को यहां सलाह भी दी गई कि उन्हें अपने क्षेत्र की जनता से सतत जीवंत सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। उनकी समस्याओं को समझाना चाहिए और विभिन्न कानूनों का उन पर क्या असर हो रहा है यह मालूम करते रहना चाहिए। एक अच्छा समाजवादी विधायक अपने आपको केवल संसदीय कार्यों तक सीमित न रखते हुये जनता और पार्टी से हर स्तर पर तालमेल बनाकर अपने संसद के भीतर के कार्यों और बाहर के कार्यों को परस्पर एक-दूसरे के कार्यो से मजबूती प्रदान करने का कार्य करेगा।[37] इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवादी सांसदों एवं विधायकों को पार्टी द्वारा जो सीख दी गईं, जनता के दुखों को व्यक्त करने और जन विरोधी कानूनों को समाप्त करने के प्रयास करने और इस कार्य में आड़े आने पर संसदीय नियमों की परवाह न करने की, उसी के अनुरूप उन्होंने आचरण किया है। और अपने आचरण के द्वारा दो प्रकार के लोकतन्त्र की सेवा की है।

1. जनता की तकलीफ के निराकरण के लिये सरकार को प्रेरित करने में

2. संसदीय प्रणाली के ऐसे नियमों को शिथिलता प्रदान करने में जो उनके विधायक कार्य में अनावश्यक बाधा खड़ी करती हैं।

हालांकि इसके लिए सोशलिस्टों ने तथाकथित सभ्रांत लोगों के बीच अभद्र, अशिष्ट और अनुचित आचरण के आक्षेपों के साथ बदनामी भी झेली है।

लोकतान्त्रिक और समाजवादी विचारधाराओं का समन्वय सम्भव नहीं है क्योंकि स्वतन्त्रता और समता के मूल्यों के बीच परस्पर विरोध है। लेकिन यह बात

सही नही मालूम देता है। स्वतन्त्रता और समता इन दोनों मूल्यों को लोकतान्त्रिक चिन्तन धारा में भी महत्व दिया जाता है जब लोकतन्त्रवादी स्वतन्त्रता की बात करते है तब वे किसी एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता की नही बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता की बात करते है। उदार लोकतन्त्रवादी चाहे सामाजिक आर्थिक समता के अभाव में कई बार राजनीतिक और कानूनी समता का लाभ भी नागरिकों को नहीं मिल पाता है। अगर कोई व्यक्ति भुखमरी की कगार पर खड़ा हो तो फिर यह नहीं कहा हो तो फिर यह नही कहां जा सकता कि वह अपना जीवन मर्जी के अनुसार जीने के लिये स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता के उपयोग के लिये बुनियादी आर्थिक आवश्यकताओं का पूरा होना भी जरूरी है। इसलिए लोकतान्त्रिक और समाजवादी और सामाजिक लोकतन्त्रवादी दोनों ही सरकार द्वारा आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप का समर्थन करते है। अगर यह हस्तक्षेप कम से कम हो और इसके द्वारा स्वतन्त्रता को अनावश्यक रूप से सीमित ने किए जाये, तो फिर यह नहीं कहां जा सकता है कि इसका स्वतन्त्रता के मूल्यों के आधार पर नागरिकों को एक दूसरे की हत्या करने की आजादी नहीं दी जाती है। फिर इस आधार पर बाजार अर्थव्यस्था को कुछ नागरिकों को भुखमरी और बदहाली की स्थिति में धकलने की आजादी भी कैसे दी जा सकती है।

लोक सभा में डा0 लोहिया का प्रवेश :

डा0 लोहिया की समाजवाद में अटूट अस्था थी। केवल अर्थ संम्पन्नता अथवा आर्थिक स्वावलम्बन से समाजवाद का सपना सच होता हुआ वे नहीं मानते थे। समाजवाद की संस्थापना में अर्थ भी एक आधार है न्यूनतम तथा अधिकतम आमदनी में फर्क है। यह फर्क दूर हो और सव अर्थ की दृष्टि से इतने सम्पन्न हो कि आराम से जी सके। सम्पत्ति पर विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग यह कभी नहीं चाहेगा

कि वह अपने अधिकार को खो दे। वह बदलती परिस्थितियों में इतना जरूर करेगा कि कतिपय दूसरे उपाय काम में लाये ताकि उसको प्राप्त विशेषाधिकारो पर जांच न आये अपितु वे अन्दर ही अन्दर सुदृढ़ हो जायें। उसकी इस चालकी का डा0 लोहिया ने अनेक वार पर्दाफाश किया और अर्थतन्त्र में समतावादी समाज की स्थापना के बारे में समझाया। और आर्थिक समता से उनका यह अर्थ कभी नही था कि सबको अर्थ बरावर बांट दिया जायें या सबको वेतन समान कर दिया जायें। उससे उनका अर्थ था कि अर्थ के कारण समाज में जो विषमता व्याप्त है वह घण्टे और अनिवार्य अर्थ सबको मिले जिससे अर्थ भाव उनके मार्ग में नही आये और वे आर्थिक विपन्नता का अनुभव नही करें।

पृष्ठभूमि :

1952 के प्रथम आम चुनाव में लोहिया लोकसभा या कि किसी राज्य की विधानसभा के लिये उम्मीदवार नही थे। देखा जाये तो, 1963 के उपचुनाव में विजयी होकर लोकसभा में पहुच जाने तक, लोहिया के विचार विधायी संस्थाओं के परिवर्तन का माध्यम हो सकती है, इस बारे में शंकालु थे। संसद की क्षमता और प्रभाव दोनों को लेकर लोहिया के मन में एक तरह का अनुत्साह था और जिसे वो व्यक्त भी करते रहते थे।

डा0 लोहिया के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को अत्यन्त विस्तृत और मानवता संबद्ध बनाया था ताकि समाज जीवन नीति से अलग राजनीति को न मानने लगे। इस दृष्टि से उन्होंने स्वनात्यक राजनीति की ओर ध्यान दिया था, तथा उन्होंने अनेक कार्यक्रम चलाये थे। उन्होंने राजनीति को मानव नीति बनाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में लोकतन्त्र का अर्थ समाज तन्त्र था। समग्र व्यवस्था समजोन्मुखी हो और समाज राजनीति का केन्द्र बने, इस पर उन्होंने सदा जोर दिया था सह-जीवन की

संभावनाओ का उद्घाटन करना उनकी कर्म नीति थी। बहुत बर्ष बाद मानव जाति को यह अवसर मिला था कि वह अपने वर्तमान तथा भविष्य के लिये निर्णय ले और उन निर्णयों का कार्यान्वन होने दे सबकि उन्नति में व्यक्ति की उन्नति स्वतः सन्निहित है। ऐसी उनकी मान्यता थी। वे शासन में अभाव को उपयुक्त मानते थे और ना शासन में दवाव को वे ऐसे संसद की कामना करते थे। जिससे कभी सुखी तथा आचरणवान सांसद हो और जिनके क्रियाकलाप एक आदर्श के रूप में हो जिसका सारा समाज सही रूप से उपयोग कर सके। उन्होंने सदा उपनिषद में इस मंत्र को आदर्श माना था, यथा–

> ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
>
> सर्वे भद्राणि पश्धन्तु या कश्चि दुःख भाग्वये।

का भी बड़ा जबरदस्त असर पड़ता है। पहले मैं सोचता था कि शायद इतना असर न पड़े और आखिर हो ही क्या जायेगा।[38] लोहिया की जीवनीकार इन्दुमति केलकर ने भी लिखा ''1952 के आम चुनाव में और उसके बाद भी उन्होंने बाद भी उन्होंने लगातार चुनाव में खड़े रहने के बारे में नाखुशी दिखलायी थी।''[39] लेकिन इसके बाद भी लोहिया पर चुनाव लड़नें के लिये साथियों और पार्टी कार्यकर्ताओं का आग्रह और दवाव दोनों तीव्रतर होते रहे है। दिसम्बर 1955 में नयी सोशलिस्ट पार्टी के गठन हो जाने के बाद, लगभग एक साल के भीतर ही 1957 में, देश में दूसरे आम चुनाव हुये।

1957 में चुनाव में लोहिया की उम्मीदवारी :

डा0 लोहिया का संसद में प्रवेश होना एक सफलता पूर्वक उम्मीदवारी का प्रतिनिधित्व करता है। लोहिया ने हमेशा संसद की गरीमा और उसकी मौलिकता

को देखा और परखा उनकी सोच किसी प्रकार की नकारात्मक नही थी। वे हमेशा भारतीय संसद और उसकी गरिमा को अपने जीवन का अंग मानते थे लोकसभा लोहिया के लिये एक कर्म स्थली थी जो भी निर्णय लोकसभा में होते थे। उनके द्वारा लोहिया अपने जीवन और चिंतन को व्यवहारिक जीवन में उतरने का प्रयास करते थे। इस प्रकार लोहिया ने सभी पार्टीयों को देखा और परम्परा और अपनी सार्थकता को व्यवहारिक जीवन में लाने का प्रयास किया।

इस प्रकार लोहिया ने 1957 के आम चुनाव में ''हारने वाले उम्मीदवारों के दुख में सहयोग देने के लिये''[40] लोकसभा का चुनाव लड़ना स्वीकार किया। वो लोकसभा की चकिया चंदौली उ0 प्र0 सीट से सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में खड़े हुये। कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार त्रिभुवन नारायण सिंह थे, जो जाति से भूमिहार थे जिसका बाहुल्य उस क्षेत्र में था। इसके अलावा भी नवजात सोशलिस्ट पार्टी ने लोकसभा के लिये 33 और विधानसभाओं के लिये 355 उम्मीदवार खड़े किये थे।[41] इन सभी उम्मीदवारों की उम्मीद भी लोहिया के ऊपर ही टिकी थी। दूसरे सारे देश में यही एक पार्टी थी जो ''समान दूरी'' के अपने परिचित सिद्धांत के चलते चुनाव में अकेली खड़ी रही। अतः पार्टी के चुनाव प्रचार की संपूर्ण जिम्मेदारी उसके एक मात्र नेता डा0 राममनोहर लोहिया के कंधों पर आ पड़ी। जिसका उन्होंने निर्वाह भी किया। लेकिन इसके कारण उन्होंने अपने निजी क्षेत्र पर ज्यादा ध्यान नही दिया। जबकि दूसरी ओर कांग्रेस पार्टी ने लोहिया को परास्त करने के लिये अपनी सारी ताकत उनके संसदीय क्षेत्र में एकत्र की थी। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अपनी अत्याधिक व्यस्तता के बावजूद लोहिया के चुनाव क्षेत्र में पूरे दो दिन रूके और उन्होंने बहुत सारी आमसभाओं में भाषण दिया।[42] श्री नेहरू ने मेहसूस किया कि क्षेत्र की जनता लोहिया की नीतियों और लोहिया दोनों को पसंद

करने लगी है। अतः नेहरूजी ने जनता के भावुक मन को लोहिया से विमुख करने के उद्देश्य से कहा ''लोहिया कहते है कि मैं एक चपरासी का नाती हूँ इस प्रकार लोहिया ने मेरे दादाजी को चपरासी कहा है।'' ऐसा कहकर लोहिया के प्रति ओझे शव्दो का प्रयोग करने वाला, नेहरू का अंधविरोध करने वाला प्रचारित कर जनता की सहानुभूति अपने प्रति और कांग्रेस के प्रति बटोरने की कोशिश की। ये सब चुनाव तिथि के दो दिन पहले हुआ। इसके साथ की जाति के समीकरण के असर की वजह से लोहिया चुनाव में चौदह हजार से अधिक मतों से पराजित हो गये। लोहिया के विरूद्ध कांग्रेस की जीत का विशलेषण करते हुये 'धर्मयुग' के संपादक गणेश मंत्री ने लिखा है ''यह जीत कांग्रेस पार्टी से ज्यादा त्रिभुवननारायण सिंह की जाति की जीत थी''।[43] इसका सबूत शीघ्र ही उस समय मिल गया जबकि त्रिभुवननारायण सिंह के योजना आयोग के सदस्य बन जाने के कारण इसी क्षेत्र में उप चुनाव संपन्न हुआ। गणेश मंत्री के अनुसार उप चुनाव में भी लोहिया खड़ा होना चाहते थे। लेकिन उनकी पार्टी के स्थानीय लोग भूमिहार जाति के प्रभुनारायण सिंह को खड़ा करना चाहते थे। ऐसा हुआ भी और प्रभुनारायण सिंह ने कांग्रेसी उम्मीदवार को लगभग पैंतीस हजार वोटों से हरा दिया। कुल मेलाकर 1957 के आम चुनावों में सोशलिस्ट पार्टी की परफारमेंस अच्छी नहीं रही। उसे अपेक्षा से बहुत कम लोकसभा में 9 और विधानसभाओं में 55 सीटें प्राप्त हुई।[44]

डा0 लोहिया कोरे पंथ वाले नही थे। उन्होंने कर्म तथा चिंतन के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व में विकास की समस्या का सदैव ध्यान में रखा वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और स्वभाव में स्वतन्त्र अभिव्यक्ति हो। वे व्यक्तित्व की किसी एक विशिष्ट पहलू की एकाकी और सीमित वृद्धि के पक्ष में नही थे।

लोहिया ने हमेशा इस प्रकार के रास्ते तैयार किये जिनमें मौलिकता

और समाजवाद पनपता था। डा0 लोहिया एक आदर्श सांसद के रूप में देखे जाते थे। वे अच्छे विचारक और क्रान्तिदर्शी थे, और उनका व्यक्ति अनूठा था उन्होंने समाजवादी होते हुये भी समाजवाद का अनुकरण नही किया उन्होने हमेशा व्यवहारिक एवम् प्रयोगात्मक समाजवाद की पुष्टि की।

लेकिन लोहिया ने निराश न होते हुये, कहा "बडी ठेस लगती है ऐसे मौकों पर। शरीर अपने धर्म को निभाता ही है। हां, मन जरूर ऐसे मौके पर बैठकर सोचता है कि यह क्या हो रहा है। खैर, मैं इतना ही मानता हूं कि सोशलिस्ट पार्टी में और मुझमें वह हिम्मत और वह चिपकाने आये जो मोहम्मद गोरी में थी, सत्रह दफा हारने पर भी अठाहरवीं दफा कोशिश करना। इस प्रकार लोहिया, चुनावी शोरगुल खत्म हो जाने के बाद फिर से अपनी मुहिम, देश में सिद्धांतनिष्ठ और तत्वशुद्ध राजनीति की प्रतिष्ठा स्थापित करने में नये उत्साह के साथ जुट गये।

डा0 लोहिया हमेशा संसदीय चितंक माने जाते थे वे एक महान देशभक्त और जीवनपर्यन्त विद्रोही के रूप में अपना जीवन गरीबों की सेवा में लगाया, उन्होंने तस्वीर खींची वो कितनी सच्ची थी भारतीय समाज की। चूंकि डा0 लोहिया के विचार में सच्चाई सादगी और वास्तविकता थी कहीं किसी प्रकार का बनावटीपन और दिखावा नहीं था।

1962 में प्रधानमंत्री के विरूद्ध उम्मीदवारी :

डा0 राममनोहर भारतीय संसद की आत्मा थे उन्होंने संसद की गरिमा को हमेशा माना और उसका अनुसरण किया वो कभी किसी प्रकार के ऐसे वकतत्वयो का सहारा नहीं लेते थे जो ज्ञान आदि शाक्तिहीन हो उनके प्रत्येक वक्तव्य में ओजोषिता और अनुपमता थी क्योंकि लोहिया हमेशा से ही पद दलितों और गरीबों का प्रेरणा के श्रोत थे।

हिन्दुस्तान के तीसरे आम चुनाव 1962 में सम्पन्न हुये। आम चुनाव पूर्व भारत सरकार द्वारा गोवा को मुक्त करा लिया गया था, जिसकी स्वतंत्रता की मशाल डॉ0 लोहिया ने ही जलायी थी। लेकिन गोवा की मुक्ति के लिए आमचुनाव तक इंतजार करना, लोहिया को अखर गया। यह मुक्ति चुनाव के ऐन मौके पर क्यों की गई। गोवा विजय की घूस दी गईं है।'' बाद में 1966 में एक पत्रकार वार्ता में यह पूछे जाने पर कि ''क्या आप प्रधानमंत्री के खिलाफ लड़ रहें हैं?'' लोहिया ने 1962 में प्रधानमंत्री के खिलाफ खड़े होने के कारण बताते हुए कहा; ''मैं प्रधानमंत्रियों के खिलाफ नहीं लड़ते फिरता। आपने यह कैसे सोच लिया। क्योंकि पहले प्रधानमंत्री ने गोवा आक्रमण के समय चुनाव करके वोटरों को धोखे में डाला इसलिये मैं उनके विरूद्ध लड़ा। नहीं तो मैं प्रधानमंत्रियों से लड़ने की खोज नहीं करता फिरता हूँ।'' 1962 में इस प्रकार फूलपूर संसदीय क्षेत्र से प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के खिलाफ सोशलिस्ट पार्टी की ओर से डा0 राममनोहर लोहिया चुनाव में खड़े हुये। इस मौके पर वर्षों बाद लोहिया ने नेहरू को एक पत्र लिखकर उन्हें ''प्रिय प्रेसीडेन्ट'' के नाम से संबोधित किया। उन्होंने लिखाः ''इस चुनाव में जीत आपकी प्रायः निश्चित है, लेकिन यदि 'प्रायः निश्चित' अनिश्चित और हार में बदल जाये तो मुझे खुशी होगी और देश का भला होगा। आपको भी सुधर कर बढ़िया आदमी बनने का मौका मिलेगा।'' नेहरू ने भी ''प्रिय राममनोहर'' को जबाव में लिखाः ''मुझे खुशी है कि राजनीति के क्षेत्र में नहीं आऊंगा।'' लेकिन यह जुदा बात है कि नेहरू अपना वादा कायम न रख सके और उन्हें अपने संसदीय क्षेत्र में चुनाव प्रचार के दौरान तीन या चार बार जाना पड़ा। 1962 में फूलपुर क्षेत्र इस प्रकार सहज ही आकर्षण और उत्सुकता का केन्द्र बन गया। सारी दुनिया की आंखें फूलपुर की ओर लगी थीं। लोहिया का चुनाव प्रचार एक दम सादगीपूर्ण था। उनके पास न

तो साधन थे, न पैसा और न ही कार्यकर्त्ताओं की फौज। इसकी याद करते हुये लोहिया के साथी मधुलिमये ने लिखा है: ''लोहिया ने फूलपुर में प्रधानमंत्री के खिलाफ जो आम चुनाव लड़ा और एक तिहाई से अधिक वोट प्राप्त किये – उसमें मुश्किल से दो जीपों का इस्तेमाल किया गया था, तो लोग विश्वास नहीं करेंगे।''[45]

साधन और साथियों की कमी के साथ ही अन्य परिस्थितियाँ भी लोहिया के विपरीत थीं। उनकी पुरानी पार्टी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और उसके तात्कालीन अध्यक्ष, लोहिया के पुराने साथी अशोक मेहता ने, अपनी पार्टी का समर्थन प्रधानमंत्री को देने की घोषणा करते हुये कहा: ''भूतकाल की तरह प्रधानमंत्री नेहरू के खिलाफ कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया जायेगा। ये हमारे सम्मान का प्रतीक होगा।'' इसके अलावा सत्तारूढ़ पार्टी के सर्वोच्च नेता होने के नाते सरकार और पार्टी दोनों के साधन, धन और कार्यकर्त्ताओं की भीड़ फूलपुर में श्री नेहरू के समर्थन में इकट्ठा हो गई थी, जिनमें केन्द्र और राज्यों के मंत्री, उपमंत्री, संत और मौलवी सभी शामिल थे। लोहिया को बदनाम करने के सभी हथकण्डे अपनाये गये। उन्हें जमींदार जागीदार कहकर बेगारी की प्रथा फिर शुरू होने का कहकर किसानों को ड़राया गया। लोहिया नाम से उन्हें लोहे का व्यापारी, जिसे काले बाजार में लोहा बेच देने के आरोप में सरकार ने गिरफ्तार किया था, अतः वो प्रधानमंत्री से बदला लेने खड़े हुये हैं, कहकर उन्हें जनता की निगाह में नीचा गिराने की कोशिशें की गईं। इसके विपरीत लोहिया अपने भाषणों में अपनी पार्टी के कार्यक्रम और सिद्धान्तों की चर्चा करते थे। अपने श्रोताओं से एक शपथ लेने को कहते थे कि वो अपनी घरवालियों की और बच्चों की पिटाई नहीं करेंगे। अलबत्ता प्रधानमंत्री के राजसी ठाटबाट और उन पर सरकारी खजाने से प्रतिदिन खर्च किये जा रहे पच्चीस तीस हजार रूपये की तीखी आलोचना करते थे। उनका कहना था: ''महात्मा गांधी का युग

कर्तव्य और सादगी का था तो पं0 नेहरू का जमाना वैभव, फैशन और फिजूल खर्ची का है। मेरी पक्की राय है कि हिन्दुस्तान की जीत के लिये प्रधानमंत्री की हार जरूरी है।" लोहिया को बड़ी ठेस इस बात से पहुंची कि मतदाताओं को प्रभावित करने के लिये ऐन चुनाव के मौके पर उनके क्षेत्र में केन्द्र सरकार द्वारा 33 मील लम्बी सड़क के लिए 33 लाख रूपया मंजूर किया गया। इस घटना का बाद में जिक्र करते हुये ऐसे कार्यों को "भ्रष्ट आचरण" में शामिल कर ऐसे चुनावों को रद्द किये जाने की लोहिया ने चुनाव आयोग से मांग की थी।

डा0 लोहिया का संदेश हमेशा साध्य साधन की एक रूपता पर केन्द्रीभूत था उनका ये स्वयं कहना था कि साध्य का नैतिक होना ही पर्याप्त नहीं है। साधन को भी नैतिक होना चाहियें जिससे आपस में एक-दूसरे का तारतम्यता और एकरूपता बनी रहे।

बहरहाल जैसी कि उपेक्षा थी चुनाव में प्रधानमंत्री पं0 नेहरू की जीत हुई। लेकिन चुनाव लड़कर लोहिया ने यह प्रमाणित कर दिखाया कि नेहरू अजेय नहीं है। संसदीय क्षेत्र में 43 मतदान केन्द्रों में लोहिया को नेहरू से ज्यादा बोट मिले। बम्बई से प्रकाशित टाइम्स आफ इंडिया ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि "नेहरू को मत देने वाले दो मतदाताओं के पीछे एक ने सोशलिस्ट पार्टी के नेता को मत दिया है।" लोहिया का फूलपुर एवं समीपवर्ती इलाहाबाद संसदीय क्षेत्रों की जनता पर पड़े प्रभाव का सबूत इस क्षेत्रों में अगले आम चुनावों में समाजवादी नेता और छोटे लोहिया के नाम से जाने वाले जनेश्वर मिश्र की जीत से भी मिलता है। श्री जनेश्वर मिश्र वर्तमान में श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बनी केन्द्रीय सरकार में रेल मंत्री हैं।

लोहिया का सिद्धान्त था कि प्रत्येक भारत के नागरिक को भारतीय संसद और गरिमा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिसमें भारतीय संसद और संविधान

एकरूपता की श्रेणी पर खरे उतर सके तथा भारत का प्रत्येक नागरिक संसदीय मूल्य को जाने और अपने जीवन में सामाजिक सांस्कृति और आर्थिक क्रान्ति ला सके।

इसके साथ ही, इस चुनाव का, लोहिया के हार जाने के बाद भी, हिन्दुस्तान में लोकतन्त्र को सुदृढ़ करने की दृष्टि से बड़ा महत्व है। लोकतन्त्र में प्रधानमंत्री अपराजेय नहीं है- यह महत्वपूर्ण सीख उन्होंने भारतीय जनता को दी। इसी सीख का शुभ परिणाम 1977 में उस समय मिला जबकि आपातकाल के बाद हुये आम चुनावों में तात्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी अपने संसदीय क्षेत्र रायबरेली में पराजित हो गई। ये एक अलग संयोग है कि उन्हें कोर्ट और बोट दोनों में परास्त करने का श्रेय भी लोहिया के प्रसिद्ध शिष्य राजनारायण को प्राप्त हुआ था।

डा0 लोहिया ने हिन्दुस्तान में लोकतन्त्र को आम जनमानस की आत्मा माना क्योंकि भारत के प्रत्येक आम चुनाव में लोकतन्त्र की महिमा का वर्णन किया जाता हैं। जिन्हें आम चुनाव अलग-अलग तरीके से उसे आम जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करके एक भारतीय लोकतन्त्र को नई व्यवस्था दी जाती है। इसलिये लोकतान्त्रिक में संसद चुनाव और संविधान इन तीनों का गठबन्धन होता है।

1951 से 1963 तक का कार्यकाल भारतीय सामयिक, आर्थिक और राजनीतिक अयामों पर कई प्रकार के परिवर्तन होते रहे उनमें विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का सहयोग लोकतान्त्रात्मक प्रणाली को मिलता रहा लोग भरसक प्रयास करते रहे कि व्यक्ति अपने मूल्यों को पहचाने और साथ-साथ चुनाव और उपचुनाव की गरिमा को जिससे पूरा राष्ट्र संविधानिक अवधारणा का आचरण कर सके।

1963 के उपचुनाव में विजयी लोहिया :

1960 तक, सरकार की गलतनीतियों की वजह से आर्थिक क्षेत्र में हिन्दुस्तान वड़ी कमजोर हालत में पहुंच चुका था। आर्थिक विकास में ठहराव आ चुका था वहीं गरीवी और असमानता में वृद्धि की गति में तेजी आ गई थी। इस सबके साथ ही चीन के साथ सीमा विवाद में चीन के हाथों हिन्दुस्तान की अपमान जनक पराजय ने, जो अक्टूबर/नवंबर 1962 के समय हुई, भारतीय जनता और सरकार दोनों को झकझोर दिया। ऐसे माहोल में 1963 में हुये तीन उपचुनावों, फर्रूखावाद, अमरोहा और विजनोर की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट हुआ। हमेशा की तरह तगड़ा था। इसको व्यक्त करते हुये लोहिया ने रमा मित्र को लिखे पत्र में लिखा ''तुमसे हो सके तो फर्रूखाबाद जाना। दवाव ज्यादा पड़ रहा है। फिर भी इरादा न वदलेगा। तुम शहर और दो चार गांव में जाकर पूछना-क्या लोग मुझे जानते हैं, क्यों, सोशलिस्ट पार्टी के कामों का पता है या क्या लोग मुझे लड़ाना चाहते हैं वगैरह। लेकिन लोग लोहिया को अच्छी तरह जानने लगे थे। उनके मुद्दों को देकर लोहिया द्वारा चलाये सत्याग्रहों और हाईकोर्ट में जन समस्याओं को लेकर लड़े मुकदमों की याद जनता को अच्छी तरह से थी। आश्वस्त हो जाने के वाद लोहिया चुनाव में खड़े हुये। उनके खिलाफ कांग्रेस के उम्मीदवार डॉ केसकर थे इसके अलावा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने भी अपने उम्मीदवार के रूप में भरतसिंह राठौर को खड़ा किया था। हमेशा की ही तरह इस बार भी कांग्रेस ने लोहिया को हराने के लिये अपनी पूरी शक्ति, सभी परखे हुये हथकंडे दांव पर लगा रखे थे। लेकिन उपचुनाव होने के कारण इस बार देश भर से समाजवादी भी सैकड़ों की संख्या में आकर फर्रूखाबाद संसदीय क्षेत्र में फैल गये। उनकी मेहनत रंग लाई और लोहिया ने अपने प्रतिद्वन्दी

उम्मीदवार को साठ हजार से भी अधिक बोटों से पराजित कर विजय का वरण किया।[46]

सारा देश लोहिया की विजय से प्रसन्न हुआ। लगा कि यह जो आज हुआ, बहुत पहले हो जाना चाहिये था। लोहिया की जीत ने हिन्दुस्तान के संसदीय इतिहास को नया मोड़ दे दिया। लोकसभा में लोहिया का चिर प्रतीक्षित प्रवेश इस प्रकार संपन्न हो गया। उनके प्रवेश के बाद लोकसभा के इतिहास का न केवल नया अध्याय खुला बल्कि लोकसभा का सौन्दर्य ही; उसका स्वरूप और व्यवहार-दोनों में गहरा बदलाव आने लगा। लोकसभा में लोहिया के साथ, लगा कि जनता भी घुस गई। इस महत्वपूर्ण घटना पर, लोहिया के संसद में प्रवेश पर कांग्रेसी सांसद कवि रामधारी सिंह दिनकर इतने प्रफुल्लित हुये कि उन्होंने निम्न पंक्तियों की रचना कर लोहिया का लोकसभा में स्वागत किया।

तब भी मां की कृपा, मित्र अब भी अनेक छाये हैं,

बड़ी बात तो यह कि लोहिया संसद में आये हैं।

तब को लोहिया महान हैं,

एक ही तो वीर यहाँ सीना रहा तान है।

इस प्रकार फर्रूखाबाद संसदीय क्षेत्र से उपचुनाव में निर्वाचित होकर डॉ0 राममनोहर लोहिया ने दिनांक 13 अगस्त, 1963 को लोकसभा में, तीसरी लोकसभा के पांचवें सत्र के प्रथम दिन, संसद सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण कर, अपना आसन ग्रहण किया।

1963 में कन्नौज संसदीय क्षेत्र से निर्वाचित लोहिया :

डा0 लोहिया एक विचारक चितंक और स्वप्नदिष्टा थे चुनाव या

उपचुनाव को हमेशा से भारतीय लोकतन्त्र की पराकाष्ठा मानते थे। डा0 लोहिया ने संसदीय प्रणाली को निर्भीक और पवित्र बनाने का प्रयास किया उन्हें अपने ऊपर नियन्त्रण था जिससे सारा राष्ट्र और समाज भारतीय राजनीति के मूल्य को जान सके।

हिन्दुस्तान के चौथे आम चुनाव 1967 में संपन्न हुये। इस आम चुनाव में लोहिया संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में कन्नौज संसदीय क्षेत्र से खड़े हुये और अपने निकटतम प्रतिद्वंदी कांग्रेस के उम्मीदवार श्री शंभुनारायण मिश्र को पराजित कर विजयी हुये। लोहिया का यह चुनाव भी, उनके चुनाव प्रचार की दृष्टि से एवं अन्य अधोलिखित घटनाओं की वजह से उल्लेखनीय रहा।

1. सरकार ने चुनाव पूर्व लोहिया का संसदीय क्षेत्र फर्रूखाबाद का बंदरबाट कर उसका नाम बदलकर कन्नौज कर दिया, लेकिन खास तौर पर ऐसे विधान क्षेत्र जहाँ से पिछले चुनाव में लोहिया को अच्छी बढ़त मिली थी, निकाल कर, इटावा जिले के अन्य क्षेत्र उसमें मिला दिये। इसका लोहिया ने एक प्रेस ब्यान के जरिये विरोध भी किया।[71] इस पर लोहिया के साथियों ने उनसे चुनाव क्षेत्र बदल कर कहीं और से चुनाव लड़ने का आग्रह किया, जिसे लोहिया ने यह कहकर ठुकरा दिया "माँ और बेटा, भाई और बहन, पति और पत्नी इन सब रिश्तों को एक में मिला दें, उस तरह का रिश्ता क्षेत्र और प्रतिनिधि का होता है।[47]

2. लोहिया ने अपने चुनाव प्रचार के दौरान सभी संप्रदायों के लोगों के लिये समान कानून लागू करने के सिद्धांत को खुलेआम समर्थन कर एक 'स्टेटमेनशिप' का सही परिचय देकर अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। कांग्रेस ने अपने प्रचार में लोहिया के इस ब्यान को मुसलमानों के बीच खूब प्रचारित

किया, लेकिन अपने सिद्धांतों पर अडिग, वोटों की परवाह न कर लोहिया अविचलित रहे। बाद में लोहिया से प्रभावित आरिफ मोहम्मद खान ने मुस्लिम पर्सनल लॉ के मुद्दे पर आठवीं लोकसभा में राजीव गांधी मंत्रीमंडल से इस्तीफा देकर सभी को चकित कर दिया था।

3. मुसलमानों के साथ ही, ब्राह्मणों की हमेशा भिक्षावृत्ति रही है- शासन में उनका कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। अतः अपना मत डा0 लोहिया जैसे कर्मठ समाजवादी को दीजिये।"

4. लोहिया के स्वयं के चुनाव क्षेत्र के अलावा 1967 के आमचुनाव हिन्दुस्तान के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुये- देश में परिवर्तन की हवा के वाहक बने। और इस हालत के पैदा करने में लोहिया का सबसे बड़ा योगदान था।

चौथे आम चुनावों के बाद आठ राज्यों में कांग्रेस सरकार का पतन हुआ। हिन्दुस्तान में सरकार का पर्याय बन चुकी कांग्रेस को लोकसभा में भी, पिछले आम चुनावों की तुलना में कम सीटें मिलीं- उसका दो तिहाई बहुमत समाप्त हो गया।77 जनता में विश्वास पैदा हो गया कि संसद न आने पर सरकार को बदला जा सकता है। लोकसभा में समाजवादी दल की सदस्य संख्या 7 से बढ़कर 23 हो गई, हांलाकि लोहिया इस उपलब्धि से खुश नहीं थे। लेकिन 1200 वर्षों की सडन के बाद भारतीय राजनीति में गति और परिवर्तन का युग प्रारंभ हो जाने के कारण उन्हें प्रसन्नता भी हुई।

16 मार्च, 1967 को चौथी लोकसभा का सत्र शपथ ग्रहण के साथ प्रारंभ हुआ। शपथ लेने के पूर्व लोहिया ने कहाः "राजस्थान और उत्तरप्रदेश में जो कुछ हो रहा है उसी की पृष्टभूमि में जो कुछ राज्यों बगैरह के बारे में नगर पालिका जैसे कानून हैं उसी की पृष्ठभूमि में मैं यह कसम ले रहा हूँ।"

13 अगस्त, 1963 को लोकसभा में प्रथम बार शपथ लेते समय भी लोहिया तीन वाक्य कहना चाहते थे, लेकिन अध्यक्ष ने अनुमति प्रदान नहीं की। उस समय सच कमजोर था, शायद इसीलिये। लेकिन 1967 में,भारतीय राजनीति में काफी परिवर्तन आ चुका था, तभी लोहिया को इस बार न अध्यक्ष ने रोका न किसी और ने टोका।

तीसरी लोकसभा की पहली बैठक हांलाकि 16 अप्रैल 1963 को हुई थी। लेकिन लोहिया का लोकसभा में प्रवेश 13 अगस्त, 1963 को हुआ था। इस लोकसभा की अंतिम बैठक 5 दिसम्बर, 1966 को हुईं। चौथी लोकसभा की पहली बैठक 16 मार्च, 1967 को हुई लेकिन इसी वर्ष के मानसून सत्र के अंतिम दिन 12 अगस्त, 1967 के दिन, असमय ही उनका निधन हो गया। इस प्रकार 57 वर्ष के अल्प जीवन में मात्र 4 वर्ष के लगभग उन्होंने सांसद का जीवन जिया। और इन चार वर्षों के अपने कार्यों से लोकसभा और भारत के लोकतन्त्र को नया जीवन प्रदान कर दिया।

समाजवादी धरातल डा0 लोहिया के राजनैतिक राष्ट्र में समता की अपूर्ण लहर दौड़ी। निरगुणात्मक समता को उन्होंने ठोस रूप दिया। भारत में प्रजातन्त्र और संविधान को भ्रष्टाचार, वर्णव्यवस्था और आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास किया उनकी राजनीतिक नीतियाँ भारत जैसे राष्ट्र के लिए एक ऐसी देन है। जो भारत की आर्थिक, संस्कृत, मानसिक, राजनैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर ले जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 300
2. वही, पृ0 308
3. वही, पृ0 320
4. समाजवादी दल का चुनाव घोषणा पात्र 1961
5. स्टेटमेंट आफ प्रंसीपल्स एण्ड प्रोगाम्स सोशलिस्ट पार्टी, हैदराबाद, 1956, पृ0 33
6. वही, पृ0 31
7. वही, पृ0 32
8. स्टेटमेंट आफ प्रंसीपल्स एण्ड प्रोगाम्स सोशलिस्ट पार्टी, हैदराबाद, 1956, पृ0 32
9. वही एवं दिनमान, 28 जनवरी, 1966
10. लोहिया, समदृष्टि, सोशलिस्ट पार्टी के सातवें सम्मेलन के अवसर पर दिसम्बर 1963 में कलकत्ता में दिये भाषण से पृ0 4
11. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 325
12. वही
13. धर्मयुग, बम्बई, 1991 गणेशमंत्री के लेख राज ने भी बदला है, समाज को से
14. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 323
15. रजनीकांत वर्मा, लोहिया पृ0 99
16. वही पृ0 100
17. धर्मयुग, बम्बई, 1991 गणेशमंत्री के लेख राज ने भी बदला है, समाज को से

18. वही
19. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 323
20. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 326
21. वही पृ0 375
22. हैदराबाद में अक्टूबर 1966 में आयोजित लोहिया के साथ प्रेस की बातचीत से उद्धृत : लोकसभा में लोहिया, भाग12 पृ0 363
23. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 176
24. वही, पृ0 177
25. वही
26. मधुलिमये, समस्यायें और विकल्प, पृ0 29
27. द टाईम्स आफ इंडिया, नई दिल्ली दि0 27.1.61
28. रजनीकांत वर्मा लोहिया पृ0 101
29. वही पृ0 103
30. वही
31. वही पृ0 104
32. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 375
33. लोहिया, चुनाव और भ्रष्टाचार, उद्धृत लोकसभा में लोहिया, भाग-15 पृ0 366
34. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 377
35. वही
36. मधुलिमये, पोलीटिक्स आफ फ्रीडम, पृ0 411
37. रमा मित्र, लोहिया थ्रू लटर्स, पृ0 65
38. मधुलिमये, ऐज आफ होप, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, 86, प10 190

39. रजनीकांत वर्मा, लोहिया, पृ0 106

40. रामधारी सिंह दिनकर, संस्करण और श्रद्धांजलियां, उदयाचल, पाठना, 1969, पृ0 172-73

41. लो0स0वा0वि0 दिनांक 13 अगस्त, 63 कालम

42. लोकसभा में लोहिया, भाग-13, भूमिका से

43. वही

44. मधुलिमये, पोलीटिक्स आफटर फ्रीडम, पृ0 414

45. लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 2

46. लोकसभा वाद विवाद, दि0 13 अगस्त, 1963, कालम 1

47. थर्ड लोकसभा ए सोविनियर, लोकसभा सेकेट्रियेट, नई दिल्ली।

अध्याय – पंचम

डॉ0 लोहिया द्वारा लोकसभा में उठाये प्रमुख मुद्दे

डॉ0 राम मनोहर लोहिया द्वारा लोकसभा में उठाये मुद्दे

(अ) राष्ट्रीय मुद्दे :

1. घरेलू मुद्दे :

डा0 राममनोहर लोहिया एक अध्ययनशील एवं दिवेकशील राजनेता थे। वे अनेक विषयों में अध्येता और पुरोधा थे वे अपने विचारों में हिन्दुस्तान एक लोकतन्त्र की पराकाष्ठा पर केन्द्रीभूत करना चाहते थे। उनकी सोच विचार और भावनाओं में जनता के प्रति चितंन साफ झलकता था उनमें दूसरों को आकर्षित करने की कला थी तथा लोहिया एक विचारशील एवं विवेकवान व्यक्ति थे। जो सदा से ही व्यहारिक राजनीति में विश्वास रखते थे। लोहिया ने हमेशा मजदूर और किसान दानों को लेकर चलते थे। इसके साथ न्याय वे हमेशा अन्याय व अपमान का प्रतिकार करते थे।

डॉ0 राममनोहर लोहिया एक विद्वान राजनेता थे। वो एक अएंययनशील प्राणी थे, अनेक विषयों के गहन अध्येता, अनेक सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के प्रणेता थे। उनके पास इस देश को देने के लिये बहुत कुछ था; विचार, दृष्टि और स्वप्न। अतः हिन्दुरतान की सबसे बड़ी पंचायत लोकसभा में पहुंचकर उन्होंने अपने विगत वर्षों में अर्जित विचार और अनुभव की पूँजी को दोनों हाथों खूब लुटाया-सरकार, संसद और हिन्दुस्तान की जनता को खूब सुनाया। लोकसभा में लोहिया ने जो कुछ भी बोला, जिन मुद्दों को उठाया-उनके प्रत्येक वाक्य के पीछे उनका वर्षों का चिंतन साफ झलकता है।

अर्थनीति :

डा0 राममनोहर लोहिया विश्व के समाजवादी अर्थशास्त्रीयों में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, बर्लिन विश्व विद्यालय में 1929 में उन्होंने नमक और सत्याग्रह पर डाक्टरेट ली थी वही उनकी समाजवादी अर्थशास्त्री का अध्ययन करने का मौका मिला दरअसल समाजवाद का महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक तथ्य ही है। इसे वैज्ञानिक समाजवाद के जनक मार्कस व समाज का निर्णनायक तत्व कहा जाता है।

डॉ0 लोहिया मार्कस के आर्थिक चिंतन की अपरिहार्यता को स्वीकारते हुये अनार्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभुत्व को भी महत्व देते थे। उनकी दृष्टि में धार्मिक महात्वांकाक्षावें, शक्ति का मद, यश लिप्सा, स्त्री-पुरूष के बीच परस्पर आकर्षण आदि सामाजिक स्थितियों के संयोजन में गम्भीर भूमिका का निर्वाह करते हैं। डा0 लोहिया ने अमीरी-गरीबी के अन्तर को समग्र विषमताओं का मूल मनाते हुये सत्यवद्ध के पाठ आधार भूत आर्थिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये है।

(1) वर्ग-उन्मूलन (2) मूलनीति (3) अन्य नीति (4) भूमि का पुनः वितरण (5) आर्थिक विकेन्द्रोकरण (6) अन्न सेना व भू-सेना (7) समाजीकरण और (8) व्यय की सीमा।

डॉ0 लोहिया मूल रूप में अर्थशास्त्री थे। अतः उनके प्रिय विषयों में इतिहास के साथ अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान था। अर्थनीति को लेकर, खासतौर पर हिन्दुस्तान सरीखे पिछड़े देशों के सन्दर्भ में जो सैकडों वर्षो साम्राज्यवादी शोषण के शिकार रहे है। उनकी कल्पना में पैदावार में बढ़ोतरी के साथ खर्च पर संयम की आवश्यकता का बराबर महत्व है। अन्यथा विकसित देशों की नकल में उपभोग, फिजूलखर्ची और झूटे ठाठ-बाट के चक्कर में आकर विकासशील देश

अपने संसाधनों की विकास के अभाव के कारण हमेशा दूसरों पर आश्रित बने रहने का खतरा बना रहेगा, जो कभी हो सकता है कि राजनैतिक गुलामी से भी बदतर सावित हो। अतः लोहिया ने लोकसभा में अपने प्रथम भाषण में ही जो हिन्दुस्तान के संसदीय इतिहास में पहली बार सरकार के खिलाफ प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव पर वहस के दौरान दिया गया था, हिन्दुस्तान की जर्जर होती जा रही अर्थव्यवस्था पर मर्मातिक प्रहार किये।

तीन आना बनाम पन्द्रह आना बहम :

आर्थिक हितो की संयमता को ध्यान में रखते हुये डा0 लोहिया ने उत्पादन विनिमय तथा वितरण पर एकाधिकार रखने वाला अन्तोगत्वा शोषित बन जाता है। साथ ही दूसरा वर्ग शोषित बन जाता है। मार्कस बुखारिन, आदि वर्गो उत्पत्ति का कारण आथिक मानते हैं। डा0 लोहिया इन विचारों को एकागी सत्य स्वीकरते हुये वर्ग निर्माण के कार्यों में सामाजिक तथा वैधिक कारण भी जोड़ते है। डा0 लोहिया का आर्थिक चिंतन आधुनिकता और अर्थनीति पर केन्द्रीभूत था उनकी पूँजीवाद व्यवस्था और वर्गउन्मूलन की प्रक्रियाओं में विशेष हस्तक्षेप रखते थे। न्याय सार्थकता व प्रचुरता समाजवाद का लक्ष्य है।

दिनांक 21 अगस्त, 1963 के दिन लोहिया ने सरकार को उसी के हथियार- आंकड़ों द्वारा; प्रगति के बारे में तब तक दिखाये जा रहे सरकारी आंकड़ों के द्वारा यह साबित कर सभी को स्तब्ध कर दिया कि हिन्दुस्तान के साठ सैकड़ा आदमी केवल तीन आना रोज के है।

उन्होंने कहा :

''अनाज पैदावार 6 से 8 करोड़ टन तक बढ़ी है, लेकिन उस

समय में आवादी कितनी बढ़ गई, इसको भी ध्यान में रखना

चाहिये। हम दुनिया के सबसे भूखे देश हैं।"[1]

इसके वाद लोहिया ने दुनिया के अन्य देशों की वृद्धि दर का उल्लेख करते हुये वताया कि एक ओर जहाँ अमेरिका एवं रूस 200 से 300 रूपये के हिसाब से, घाना सरीखे तीस चालीस रूपये की साल के हिसाब से बढ़ रहें हैं। वहीं हिन्दुस्ततान छः-सात रूपये के हिसाब से घिसट रहा है। उन्होंने बताया कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय आमदनी 1948 की तुलना में 8500 करोड़ से बढ़कर हाँलाकि 13,500 करोड़ हो गई लेकिन खर्च 1000 करोड़ से बढ़कर 5,500 करोड़ हो गया। इसी का नतीजा यह निकला, लोहिया ने कहा- यदि साठ सैंकड़ा कुटुम्ब 25रू0 महीने पर निर्वाह करते हैं, पर जिन्दगी निर्वाह करते हैं।"[2]

इसके अलावा देश के केवल पचास लाख डेढ़ खरब रूपये की आमदनी में से पचास अरब रूपये हड़प लेते हैं। और बाकी के बचे साढ़े तैंतालीस करोड़ लोगों के लिये केवल कुछ सौ अरब रूपये बच पाते हैं। इस आय के वितरण की असमानता की वजह से पूंजीकरण संभव नहीं हो पाता। उन्होनें घोषणा की कि यह सरकार "अज्ञान के आधार पर बांध ली और परिणामहीन लफ्फाजी तथा शब्द जाल के ऊपर अपना कामकाज चला रहीं है।"[3] 22 अगस्त, 1963 को लोहिया के इस दावे को चुनौती देते हुये प्रधानमंत्री ने कहा- "डा0 लोहिया ने हिसाव निकाला है कि देश की 60 प्रतिशत जनता कि वे इस नतीजे पर कैसे पहुंचे। इस गणित में उन्होंने भारी गलतियाँ की है, प्रति परिवार और प्रति व्यक्ति की आय में उन्होंने भ्रम पैदा कर दिया है। अतएव उन्होंने इसे 5 से भाग दे दिया।"[4] लोहिया ने तत्काल इसका प्रतिवाद करते हुये प्रधानमंत्री से 27 करोड़ आदमियों की 3 आने प्रति आदमी के हिसाब से आदमनी का हिसाब लगाने

को कहा, जिसके उत्तर में श्री नेहरू ने एक इकांनामिस्ट का हवाला दिया, जिस पर लोहिया ने कहा- "बड़ा पछतायेंगे आप।"

श्री नेहरू - पछतायेंगे ?

लोहिया - खेती कारखाने का ज्ञान आपका बड़ा कम है।[5] बाद में इस घटना की चर्चा करते हुये मधुलिमये जी ने लिखा हैं- "नेहरू ने उस शॉम पीतांबर पंत को गलती मेहसूस कर बुलाकर डांटा।"[6] ये श्री पीतांबर पंत वहीं इकोनामिस्ट थे जिनका जिक्र नेहरूजी ने लोहिया से लोकसभा में किया था। कुल मिलाकर प्रधानमंत्री ने प्रति व्यक्ति आय पन्द्रह आना स्वीकार की। लेकिन इस बहस ने 26 अगस्त के दिन फिर नया रूप ले लिया जब तात्कालीन योजना मंत्री गुलजारी लाल नंदा ने सितम्बर 1961 से जुलाई 1962 तक के नेशनल सेम्पुल सर्वे के ताजा आंकड़ों के आधार पर स्वीकार किया कि "साठ प्रतिशत आबादी की आमदनी साढ़े सात आना प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत है।"[7] लोहिया ने फिर मंत्री की गलत ब्यानी पर अध्यक्ष महोदय से विरोध प्रगट किया। और कहा "मैने अपने खत में आपको न्यूनतम आमदनी और औसत आमदनी का फर्क बतलया है, जिसे प्रधानमंत्री बिल्कुल नही जानते सोलह बरस से नही जानते है।"[8] इस प्रकार, योजनामंत्री के बयान के साथ सरकार की ओर से दो दावे प्रस्तुत किये गये जो एक दूसरे से मेल नही खाते थे। सरकार के परस्पर विरोधी दावों के कारण लोहिया का दावा जनता की नजरों में ज्यादा स्वीकारा गया।

बाद में, लोहिया की मृत्यु के बाद, कांग्रेस के युवातुर्क नेता मोहन धारिया ने भी माना और कहा कि 1968-69 में देश के 37 करोड़ लोग ऐसे थे जिनका दैनिक उपभाग 50 पैसे या इससे भी कम था।"[9] जो लोहिया के कथन की सच्चाई को प्रगट करता है।

राष्ट्रीय आय का वितरण :

राष्ट्रीय आय के असमान वितरण के बारे में लोकसभा और देश का ध्यान, अपने पहले भाषण में आकृष्ट करने के बाद दिनांक 6 सितम्बर, 1963 के दिन लोहिया ने राष्ट्रीय आय के वितरण के विषय को लेकर ढाई घंटे की अल्पकालीन चर्चा का प्रस्ताव एवं शुभारम्भ किया। जिसमें लोहिया के अलावा श्री नाथपाई, याज्ञिक, रामसेवक यादव, भागवत झा आजाद आदि सांसदों ने भी हिस्सा लिया। देश भर में फैल रही भयंकर भुखमरी की हालत का वर्णन करते हुये उन्होंने कहा- मैं आंखो देखी हालत बताऊं जो कि प्रधानमंत्री, योजना मंत्री और सरकार को अपने सामने रखनी चाहिये जो यह है कि मैने बनारस में गायों को मुर्दों का मांस खाते देखा है- इस सरकार में। उड़ीसा में जहां मछलियां बिल्कुल नहीं रह गई थी, बहुत मामूली थीं सैकड़ों को जाल फेंककर मछली पकड़ते देखा है।''

मौर्य : राजस्थान में बोबर के दाने बीन कर खाते देखा है।''[10]

खपत के आधुनिकीकरण और पैदावार का पिछड़ापन यहीं देश की दुर्दशा का कारण है- इस ओर इंगित करने के बाद लोहिया ने अपने द्वारा उठाये इस मुददे और उसके समर्थन में प्रस्तुत आंकड़ों का रहस्य एवं उद्देश्य प्रगट करते हुये कहा- ''मेरी बहस यह नहीं है कि हिन्दुस्तानियों की ओर खासतौर से 27 करोड़ की आमदनी तीन आने या साढे तीन आने है, बल्कि यह देश इतना गरीब है कि जिसका अन्दाजा इस सरकार को नहीं है और इस गरीबों को दूर करने के लिये जब तक इस सरकार में भावना नहीं आयेगी तब तक कोई नुस्खा तैयार नहीं हो सकता।''[11]

डॉ0 यतीन्द्र ने लोहिया द्वारा उठाई इन बहसों का महत्व स्वीकारते हुये लिखाः "इस बहस ने लोगों का ध्यान देश में एकाधिकार के विकास की बढ़ती हुई प्रवृत्ति की ओर खींचा। इसके ग्रामीण व नगरीय जीवन के बीच बढ़ती हुई आय विषमता की खाई के तथ्य भी उभरकर सामने आये।"[12] 1970 के बाद तो सरकार स्वयं लोहिया द्वारा लगातार रखे गये तथ्यों की सच्चाई स्वीकार करने लगी। बढ़ती आर्थिक विषमता की पुष्टि आर्थिक आंकड़ों इकटठा करने वाली संस्थायें करने लगीं। तभी इसी के परिणाम स्वरूप "गरीबी हटाओ" का नारा स्वयं सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस को लगाना पड़ा।

दाम नीति :

डॉ0 लोहिया उपभोक्ता वस्तुओं के दाम उनकी लागत के डेढ़ गुना के भीतर बांधने की नीति के लोकसभा में आने के बहुत पहले से तीव्र प्रचारक रहे हैं। दाम नीति सोशलिस्ट पार्टी के चुनाव घोषणा पत्रों का एक प्रमुख हिस्सा रही है तथा अपनी पार्टी के घोषणा पत्र के अनुरूप जिन कार्यक्रमों को लोहिया ने लोकसभा में अपने प्रथम भाषण में स्थान दिया था। उसमें उनकी प्रिय दाम नीति भी थी। उन्होंने कहा- "स्टेप्टोमाइसिन की सुई सरकारी कारखाने में, दो आने के खर्च पर वनती है, वाजार में चौदह आने में बिक रही है। तपेदिक के फेफड़े से लूट करते हुये सरकार को शर्म नहीं आती है।" लोहिया चाहते थे कि यह सुई अपनी लागत के ड़ेढ़ गुना यानि कि ज्यादा तीन आने में उपभोक्ताओं को उपलब्ध होनी चाहिए। लोहिया ने इसके बाद अपनी मुहिम लगातार जारी रखी। प्रश्न, एवं उनके उत्तर दिये जाने के दौरान पूरक प्रश्नों के जरिए, खाद्यान्न विषय पर हुई बहसों में हिस्सा लेते हुये लोहिया ने अनेकों बार दाम बांधने के नीति की पुरजोर वकालात की। 17 फरवरी, 1964 के दिन राष्ट्रपति के अभिभाषण के प्रति

धन्यवाद प्रस्ताव का विरोध करते समय उन्होंने अपने भाषण का मुख्य मुद्दा दाम नीति को बनाया था। अनाज के दामों में सालभर के भीतर ही, या कि नई फसल के आने तक, तेजी से बृद्धि पर चिंता प्रगट करते हुये; उन्होंने एक महत्वपूर्ण सुझाव पेश किया-

''मै खाली एक नियम बताना चाहता हूँ जिससे किसान भी बचेगा, उपभोक्ता भी बचेगा साथ ही पैदावार भी बढ़ेगी कि दो फसलों के बीच अनाज के दाम के एक आना सेर से ज्यादा उतार चढ़ाव नहीं होना चाहिये।''[13]

20 फरवरी,1964 को गेंहू के आटे के भाव पर एक अल्प सूचना प्रश्न के उत्तर में, लोहिया द्वारा पूरक प्रश्न किये जाने पर उस समय के खाद्यमंत्री स्वर्ण सिंह ने जवाव देते हुये कहा : ''इसके मुताल्लिक सरकार क्या नियंत्रण करना चाहती है। मैं समझता हूँ कि वाजिब बात है। इस बारे में हम बहुत तेजी से सोच रहे हैं और इसके मुताल्लिक उपाय करेगे।''[14] लोहिया ने 2 मार्च, 64 को खाद्यान्न समस्या पर बहस में किसानों की उपज के दाम के साथ कारखाने में बनी वस्तुओं के दाम पर भी एक साथ नियंत्रण की मांग की- क्योंकि दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए है। मंत्री महोदय से ठोस जबाब दिलाये जाने की, मांग के जवाब में अध्यक्ष ने लोहिया से कहा,

अध्यक्ष : ''उसके जवाब में निनिस्टर साहब ने कहा है कि हाँ, सरकार इस पर गौर करके फैसला करेगी।

लोहिया : पिछली दफा भी यही कहा था।[15]

लेकिन सरकार की तरफ से कोई ठोस नीति की घोषणा नहीं हुई। लोहिया ने अध्यक्ष को पत्र लिखकर मंत्री महोदय से दाम नीति पर बयान देने की

मांग की;[16] उन्होंने पूछा कि सरकारी बताये कि आवश्यक वस्तुओं के दामों में कितना अंश है(1) खर्च समेत ढुलाई (2) मुनाफा (3) कर (4) फिजुली। लेकिन सरकार ने नही बताया। लोहिया जानते थे कि 100 पैसे की खरीद की गई वस्तुत में 35 पै0 लागत है, 25 पै0 कर है, 15 पै0 करोड़पति का मुनाफा है और 15पै0 फिजुली है, या चन्दा है।[17] लोहिया चाहते थे कि सरकार इसे स्वीकार करे और फिर इस बात का इलाज ढूंढे कि आवश्यक वस्तुओं के करों के ऊपर और मुनाफे के ऊपर कैसे नियंत्रण लगाया जा सकता है। सरकार द्वारा अनसुनी किये जाने पर भी लोहिया ने धैर्य नही खोया और कभी दिल्ली को आपरेखी में गुड़ की गड़बड़ी और मुनाफे के प्रश्न पर तो कभी उर्वरक संबंधी भागवत का आजाद के ध्यानाकर्षण पर बोलते हुये,[18] कभी चीनी के उत्पादन पर पूछे मौखिक उत्तर के बीच पूरक प्रश्न के जरिये,[19] कभी कृषि वस्तुओं की कीमत पर प्रश्न के रूप में[20] तो कभी शक्कर उद्योग को उत्पादन शुल्क में छूट के प्रश्न पर[21] यानि कि उत्पादन या कि मूल्यों को लेकर लोकसभा में जब भी कोई प्रश्न अथवा की बहस हुई, उसमें लोहिया ने हिस्सा लिया तो दाम नीति का आग्रह उन्होंने हमेशा किया। लेकिन सरकार की ओर से किसी भी समय दामनीति को लेकर कोई संतोषप्रद चक्कर उन्हें नही मिला। दरअसल लोहिया की दाम नीति की भारतीय पूँजीवाद के द्वारा भारी लाभ कमाये जाने और उसके कारण उपभोक्ता के हो रहे बेतहाशा शोषण के प्रति चिंता की उपज है। दूसरा उनका सोच यह भी रहा है कि कीमतों का बढ़ना सारी अर्थव्यवस्था को हानि पहुँचाता है। इस परिप्रेक्ष्य में लोकसभा में, अन्यथा अत्यन्त थी, लोहिया के दामनीति संबंधी सुझाव बहुत जी न्यायिक, तर्क संगत व व्यवहारिक है।

डा0 लोहिया का आर्थिक चिंतन मानवतावादी धरातल पर आधारित

है। उनका समाजवाद मार्कसवादी विचारधारा पर खडा है। अपितु इसमें व्यक्ति समाज दोनो में समाहित चेष्ठओं उघारने का थल किया गया है। जिसमें सम्पत्ति पर न समाज न व्यक्ति का अधिकार रह जाता है। क्योकि दोनो को एकाधिकार समाज के लिये कष्ट दायक सिद्ध हो सकता है। ये जनतन्त्रात्मक प्रक्रिया में भूखे व विलासी दोनो अति स्थितियो को एक समान धरातल दोनों चाहते है। वस्तुतः वे गाँधी वादी चिंतन व मार्क्सवादी चिंतन के मध्य एक रास्ता निकालते है। जो न पूजीवादी है और न समाजीकृत है।

खर्च पर सीमा :

डा0 लोहिया मितव्यी मानसिकता के ये वो चाहते थे राष्ट्र और समाज का विकास हो किन्तु उनमे किये जाने वाले खर्च सही और क्रियान्वित तरीके से उनमे किसी प्रकार का कुप्रबंधक व उदासीनता न हो नौकरशाही फिजूलखर्ची आदि उदासीनता जैसे तत्व पर जोर देते थे वे ऐसा मानते थे की उनके साधनो पर सबका अधिकार है।

अधिक विनियोजन द्वारा सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का निर्माण करके गरीबी निवारण का प्रबन्ध किया जा सकता है। देशी बचत के लिये या तो कराधान में वृद्धि की जाये या कि खर्च कम करके बचत को प्रोत्साहन दिया जाये। लोहिया ने इसीलिये खर्च पर सीमा के निर्धारण का सुझाव दिया था। लोकसभा में दामनीति की तरह ही खर्च पर सीमा लगाने के सवाल को लोहिया ने, जब भी मौका मिला तब उठाया है। 10 मार्च 1964 के दिन बजट पर चर्चा के दौरान बोलते हुये लोहिया ने कहाः

“हर व्यक्ति ने पीछे हजार रूपये महीने से ज्यादा खर्च न हो तो मेरे हिसाब से सालभर में 22-25 अरब रूपया, लेकिन किसी भी हिसाब से

10-15 अरब रूपया बचता है जो कर बोध को हटाने या नई पूँजी बनाने के लिये इस्तेमाल हो सकता है। तो माननीय वित्त मंत्री इस बात पर कब सोचेंगे- यह मेरा सवाल है।"[22] सवाल का जवाब नहीं मिलने पर लोहिया ने लिखित में प्रश्न पूछा जिसका योजना मंत्री द्वारा लिखित उत्तर दिनांक 4 मार्च, 1965 को दिया गया। लोहिया ने पूछा थाः "क्या चौथी योजना के दौरान विकास कार्यों के लिये धन जुटाने के उद्देश्य से प्रति व्यक्ति पर अधिकतम सीमा लगाने का कोई प्रस्ताव विचाराधीन है?" उत्तर में योजना मंत्री ने बतायाः "इस प्रक्रिया में जिन संभावित उपायों पर विचार किया जायेगा उसमें प्रति व्यक्ति व्यय पर अधिकतम सीमा लगाने की उपर्युक्तता तथा व्यवहार्यता भी होगी।"[23]

सरकारी उत्तर से संतुष्ट न होकर लोहिया ने फिर 24 फरवरी, 1966 की चौथी योजना के प्रारूप के सवाल पर मौखिक उत्तर के समय योजना मंत्री से पूरक प्रश्न के जरिये खर्च के ऊपर सीमा लगा देने से कितना रूपया बच सकेगा- जानने की कोशिश की। लेकिन योजना मंत्री, लोहिया के पुराने साथी अशोक मेहता ने उन्हें यह कहकर निराश किया कि "इस मामले में हमारी क्या केलकुलेशन्स हैं, वह मैं इस वक्त आपकी खिदमत में पेश नहीं कर सकता हूँ।"[24] असल में सरकार ने लोहिया के सुझाव को गम्भीरता से नहीं लिया। लोहिया ने अक्सर अपने लेखों, वक्तव्यों के जरिये इस बात को बड़े दर्द के साथ व्यक्त किया है कि लोकसभा में मंत्री जब ठोस उत्तर नहीं देकर, उत्तर को टालने या कि टहलाने की कोशिश करे- उसका कोई इलाज नहीं है। ऐसे कई अवसर आये जबकि लोहिया ने सिद्धान्त और नीति के मुद्दों को लोकसभा में उठाकर यह प्रयास किया कि सरकार उन्हें समुचित सम्मान देकर उचित कार्यवाही करे- लेकिन उन्हें निराशा हाथ लगी। दूसरे, नीतिगत मुद्दों को, जो सरकार पर मानने

के लिये बाध्यकारी हो- ऐसे स्वरूप में पेश करने के लिये लोकसभा में- प्रक्रिया संबंधी इतनी बाधायें हैं कि अधैर्यवान थे। तभी खर्च पर सीमा के प्रश्न पर उन्होंने अपने प्रयास चौथी लोकसभा में जाकर भी जारी रखा और आखिर में जाकर 4 अगस्त, 1967 के दिन व्यक्तिगत मासिक व्यय को सीमित करने के उद्देश्य से समिति नियुक्त किये जाने के बारे में एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर पाने में सफल हो सके। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये उन्होंने कहा- ''यह सभा संकल्प करती है कि सरकार को व्यक्गित मासिक व्यय 1500 रू0 तक सीमित करने हेतु प्रस्ताव तैयार करने के लिये एक समिति नियुक्त करनी चाहिए जोकि विकास कार्य में लगने के लिये प्रतिवर्ष एक हजार करोड़ रूपया उपलब्ध किया जा सके।''[25] संकल्प प्रस्तुत करने के पूर्व उन्होंने लोकसभा में अपने प्रथम प्रसिद्ध भाषण का स्मरण कराते हुये, सदस्यों से कहा- ''इस माननीय सदन में एक बार पहले तीन आने बनाम 15 आने की वहस हो चुकी है। यह आज की बहस रोग का निदान है।''[26]

कुछ कांग्रेसी सांसदों ने व्यवस्था के प्रश्न खड़े कर लोहिया को प्रस्ताव प्रस्तुत करने से रोकने का असफल प्रयास भी किया। लेकिन कम्युनिस्ट श्री एस.एम. वनर्जी ने प्रस्ताव को नैतिक, सामाजिक एवं संवैधानिक दृष्टि से उचित करार देते हुये प्रस्ताव का समर्थन किया।[27] लोहिया ने प्रस्ताव पर जब भाषण प्रारंभ कर दिया तो उसे सुनकर कांग्रेसी सांसद शिवरानायण इतने अभिभूत हुये कि अध्यक्ष से लोहिया को और 10-12 मिनिट अधिक समय देने का आग्रह कर बैठे। लोहिया ने हिसाब लगाकर आंकड़ों सहित यह सिद्ध करने की कोशिश की कि डेढ़ लाख परिवारों की आय पर उनका नियम लागू कर दिया जाये तो ''इन डेढ़ लाख कुटुम्बों पर ढ़ाई अरब रूपया खर्च होगा और 750 करोड़ रूपये की

बचत हो जायेगी।"[28] इसके अलावा लोहिया ने एक अभिनव सुझाव भी, बचत के प्रोत्साहन के लिये प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा- "मैंने सुना है कि संतान वगैरह के मामले में आदमी जरा कुछ ज्यादा आतुर रहता है। कुछ रूपया बीस बरस तक हम अनके नाम में जमा करते रह सकते है।"[29]

खर्च पर सीमा लगा कर अथवा कि बचत के जरिए जो रूपया बचे उसे देश के निर्माण में- पैदावार बढ़ाने में लगाया जायें; क्योंकि लोहिया ने बताया केवल पूरी खेती की सिंचाई व्यवस्था करने के लिये 40 अरब से 1 अरब रूपयों की जरूरत पड़ेगी। बहस में कुछ सदस्यों द्वारा यह शंका प्रगट करने पर कि ऐसा करने से आदमी कमाने के प्रति सुस्त हो जायेगा। लोहिया ने प्रगट किया कि वो भोग की व्यवस्था पर नहीं बल्कि भोग की इच्छा पर शोक लगाना चाहते हैं। अपना देश जब भरपूर हो जाये उसके बाद आपको जो करना हो करो। लेकिन "बीसे बरस तक इस तरह से जैसा मैंने बताया है काम चलाओं।"[30] लोहिया की यह बात यदि उस समय मान ली जाती तो- आज खर्च पर सीमा की मांग आ प्रासंगिक हो गई होती, लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

डा0 लोहिया की दृष्टि में व्यय की सीमा रेखा होना चाहिये वे आसान खपत को समाज की प्रगति को रोकने का कारण मानते थे। विलासी जीवन तथा उसके लिये किये गये श्रम को भी वे प्रगति विमुख कार्य मानते थे। उससे उत्पादन में न वृद्धि होता है। और न सामाजिक जीवन स्तर में सुएंार ही हो पाता है। खर्च कम किये जाये जिससे निम्न स्तर के लोगों को ऊपर लाया जाये अतः उन्हें वोनस दिया जाये इसमें असमनता की खाई पढ़ेगी और वर्ग भेद-भाव कम होगा और लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना हो सकेगी। उनके इन विचारों के सर्मथन में अटलविहारी वाजपेयी एवं एम. कडड्पन्न जैसे व्यक्ति है।

योजना :

लोहिया योजनाबद्ध विकास की अवधारणा से तो सहमत थे लेकिन जिस ढ़ंग से हिन्दुस्तान में पंचवर्षीय योजनायें बनायी जाती हैं और उनका क्रियान्वयन किया जाता है, उसके तीव्र आलोचक थे। लोकसभा में योजना के बारे में बोलते हुये उन्होंने बड़ी सटीक टिप्पणी करते हुये कहा- ''इस योजना को देशहीन, दिशाहीन मूर्ख विद्वानों ने बनाया है और इस पर अमल करते हैं भ्रष्ट हुई।''[31]

9 दिसम्बर, 63 को तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यवर्ती मूल्य निर्धारण के प्रस्ताव पर चर्चा में भाग लेते हुये लोहिया ने प्रधानमंत्री और मंत्रियों के ठाट-बाट की कड़ी आलोचना की; इससे चिढ़कर कांग्रेसी सदस्यों ने लोहिया से प्रश्न किया कि ये वर्णन योजना के अन्तर्गत कैसे आता है?

लोहिया :- सबसे बड़े सरद साहब के घर में दो लाख की दरियाँ और कालीन बिछी है। ये सब योजना में आता है। फिर खाली ये दो लाख नहीं इनकी नकल करके न जाने कितने खर्च किये जाते हैं दो अरब, दो खरब का नुकसान इस तरह होता है।''[32]

उन्होंने प्रगट किया कि हिन्दुस्तान की पैदावार की नींव पर रूस-अमेरीका तर्ज पर खपत की इमारत खड़ी नहीं की जा सकती। लोहिया ने अपने भाषण के दौरान योजना की जो कसौटियाँ बतायीं वो निम्नानुसार हैं।''[33]

1. हमने कितने तरक्की की है, भूत के मुकाबले में।

2. अपने पड़ौसियों और दुनिया के दूसरे देशों के मुकाबले में।

3. हमारी आशायें क्या हैं?

मेरी विनम्र राय में योजना आयोग के सदस्य लोहिया के विचारों से सीख लेकर आज भी देश का कल्याण कर सकते हैं।

सार्वजनिक उद्योग :

लोहिया बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किये जाने के पक्षधर थे, लेकिन उनके संचालन और प्रबंधन के तौर तरीकों से नाखुश थे। अपनी इसी भावना को प्रगट करते हुये, उन्होंने लोकसभा में सार्वजनिक और निजी दोनों उद्योगों के क्रियाकलापों के बारे में बोलते हुये; ये सटीक टिप्पणी की- 'निजी धन्धों ने सरकारी धन्धों से बदइन्तामी सीखी है, सरकारी धन्धों ने निजी धन्धों से लूट सीखी है।''[34] इसका इलाज बताते हुये, खासतौर पर सार्वजनिक उद्योगों के बारे में, लोहिया चाहते थे कि नियंत्रण सरकारी के हाथों में सीधे नहीं रहना चाहिए। उनके प्रबन्धन के लिये लोहिया ने किसी एजेन्सी के सृजन का सुझाव दिया,[35] जो उनकी निम्न कसौटियों को पूरा कर सके।[36]

1. समता का मन
2. मजदूर मालिक का लोकतंत्री रिश्ता
3. वेतन में समता
4. लोकहित को बढ़ावा
5. कारखानों का इंतजाम

अन्न समस्या :

अर्थ चिंतन के बाद जिस प्रश्न ने लोहिया को अपने संसदीय जीवन में सर्वाधिक उद्वेलित किया है- वह है भूख, अकाल और दुर्भिक्ष से लड़ाई और इसी समस्या के दूसरे पहलू अन्न, भूमि और सिंचाई के प्रश्नों को शीघ्र हल किये

जाने की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना। लोहिया की इन मुददों को उठाने की शैली बड़ी प्रभावी थी। वो पहले प्रश्नों के माध्यम से, पूरक प्रश्नों के जरिए, खाद्यान्न जैसे विषयों पर चर्चा के दौरान, भूख अकाल और दुर्भिक्ष से संबंधित ध्यानाकर्षण प्रस्तावों के बीच सदस्यों और सरकार के सामने भुखमरी और अकाल कुपोषण आदि के बारे में, तथ्यों के जरिये आंकड़ों सहित वास्तविक चित्र या कि यथार्थ प्रस्तुत करते थे, जिसे जानकर सुन-कर सदस्यगण अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते थे और सरकार अपनी अकर्मण्यता के प्रति शर्मिंदगी मेहसूस करती थी। लोहिया को धिक्कार सरकार को कर्प के लिये प्रेरित करती थी।

2 मार्च 64 को खाद्यान्न समस्या पर बहस में हिस्सा लेते हुये उन्होंने सरकार से पूछा- बतलाओ कितने समय के अंदर तुम हिन्दुस्तान का पेट भर दोगे, नें नहीं कहता कि 3000 कैलोरी के हिसाब से, 1500, 1700, 2000 जो भी बाँधों तुम हिन्दुस्तान का पेट भर दोगे और किए एंग पर भर दोगें।[37]

25 सितम्बर, 1964 के दिन लोहिया ने बताया कि हिन्दुस्तान के "तीस करोड़ आदमी चार घटांक रोज पर जिंदा रहते हैं। उन्होंने कहा कि (सरकार के अन्न के मंत्री ने) पौने छः घटांक पर जिंदा रहते हैं। देश को यह जान लेना चाहिए कि चार घटांक सही है या पौने छः घटांक सही है।"[38] लोहिया की असली चिंता निचले तबके के साधारण लोगों के बारे में ज्यादा रहती थी जो जनसंख्या का लगभग साठ सैकड़ा हिस्सा होता हैं। तभी उन्होंने कहा- "मैंने सुझाव दिया हैं- कि एक तो सैंकड़ा के अंक बताये जायें, पूरी चालीस करोड़ जनता के अंक बताये जायें और दूसरे निम्न तीस करोड़ के अंक बताये जायें। यानि साठ सैकड़ा के अंक बताये जायें। इस पर भी बहस होनी चाहिये।"[39]

लेकिन सरकार ने कभी भी साठ सैंकड़ा जनसंख्या के पोषण के आंकड़े उपलब्ध नहीं" कराये। सरकार की इस मामले में घोर असफलता को धिक्कारते हुये उन्होंने 11 अप्रैल, 1964 को विदेश कार्य मंत्रालय की अनुदान मांगों पर बहस में बोलते हुये कहा- "हिन्दुस्तान जब तक अन्न के लिये भीख माँगता फिरता है तो फिर उसकी विदेश नीति कहाँ चल पायेगी। आखिर एक हद होती है। एक हद तक ही हो सकता है कि कोई देश भीख भी माँगता रहे और साथ-साथ बड़ी आदर्शवादिता की डींग भी हाँकता रहे।"[40]

दिनांक 7 सितम्बर, 1964 को खाद्य मंत्री मण्डल के प्रस्ताव पर कि "देश की अन्न स्थिति पर विचार किया जाये। लोहिया ने अपना वैकल्पिक प्रस्ताव रख कर उस समय की अन्न के क्षेत्र में देश की वास्तविक हालत की कलई खोल कर रख दी। उन्होंने प्रस्ताव किया "अन्न स्थिति का अवलोकन करने के बाद सदन की राय है कि:

1. मंत्री, नौकरशाह और नगर सेठ के त्रिकोण ने अन्न नीति का खात्मा किया है।
2. सरकारी फिजूल खर्ची का असर करो और नोटों के चलन पर पड़ा है जिससे दाम बड़े हैं।
3. हजार रूपये प्रति मास की सीमा वैकल्पिक खर्चे पर न लगाकर करीब 12 अरब का सालाना नुकसान होता है, अन्यथा पैदावार बढ़ाने के लिये पूंजी की तरह लगाया जा सकता है।
4. करीब 15 अरब रूपयों का अनाज विदेशों से पिछले सालों में मंगाकर अनाज की देशी पैदावार बढ़ाने का काम रोका है।

5. आयात निर्यात नीति के बिगड़ जाने से विदेशी विनिमय की घातक भूख के कारण चीनी, दाल, फल इत्यादि भोजन को बाहर भेजा जा रहा है- जिससे दाम वढ रहे हैं पेट कट रहा है।

6. अनाज के संवंध में सटटा नीति और कर्ज नीति बिगडी होने के कारण तथा चालू मुनाफे की दर ऊँची होने के कारण सारा आर्थिक और भोजन जीवन अस्त व्यस्त हो गया है।

7. अनाज के दो दामों, खुला और सस्ता के कारण भुखमरी और मुनाफाखोरी वढी है, भ्रष्टाचार भी।

इसलिये सदन चाहता है कि ये सारे कारण दूर किये जायें।[41] लेकिन सदन ने लोहिया का प्रस्ताव 10 के मुकाबले 203 मतों से ठुकरा दिया।[42]

अनावृष्टि, अकाल और दुर्भिक्ष की समस्या : भूख से मौत की परिभाषा

उन दिनों देश में अकाल हर साल, देश के विभिन्न हिस्सों में पड़ना एक आम बात थी। इस प्रकार अनावृष्टि, अकाल और दुर्भिक्ष के कारण भूखो और परेशान जनता की दुर्दशा की ओर शासन का ध्यान लगातार आकृष्टि करने की पीड़ा लोहिया और उनके साथी खासतौर पर किशन पटनायक ने उठा रखा था। इस समस्याओं को उठाने के प्रयासों में, खासतौर पर तीसरी लोकसभा में, समाजवादी सदस्यों को कई बार अध्यक्ष द्वारा निष्कासित किये जाने का दण्ड भोगना पड़ा है, साथ ही उदण्ड व्यवहार के जंगली अपेक्षा भी उन्हें सहन करने पड़े। लेकिन लोहिया के नेतृत्व में उन्होंने मनुष्य की तकलीफ, खुद तकलीफ सहन कर, प्रगट करते रहने का कार्य सदैव किया है। लोहिया की मूल समस्या थी कि देश के हिस्सों में अकाल से निपटने की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की है, लेकिन

केन्द्र सरकार इसे राज्यों की समस्या मानकर हाथ झाड़ना चाहती थी। लोहिया की एक अन्य पुरजोर माँग अकाल संहिता का निर्माण करना और उसके लागू करना था। लोहिया इसके साथ ही भूख और भूख से मृत्यु की परिभाषित करवाना चाहते थे। उन्होंने सरकार द्वारा परिभाषा नहीं प्रगट करने पर-अपनी खुद की परिभाषा भी प्रस्तुत की थी लेकिन सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। 13 मई, 1966 को अकाल संहिता के बारे में मंत्री द्वारा दी गयी सूचना और उत्तर में गलत बयानी पर वक्तव्य देते हुये लोहिया ने कहा- 'मेरी राय में तीन छटांक रोज यानि 170 ग्राम के नीचे भोजन लगातार गिर जाये, तब उसे कानूनी दृष्टि से भुखमरी मानना चाहिए।'' इसके पूर्व 9 मार्च, 1966 को भी भूख से लोगों की मृत्यु हो जाने पर अल्पसूचना प्रश्न के उत्तर के बीच पूरक के जरिए लोहिया ने भूख की परिभाषा देते हुये कहा ''मेरी परिभाषा है कि मरने से दो-तीन या चार महीने पहले तक अगर किसी को सौ ग्राम से ज्यादा प्रतिदिन खाने को नहीं मिला है तो उसे भूख से होने वाली मौत समझा जाये।''

श्री सुब्रह्मण्यमः में भुखमरी से मृत्यु के इस मापदण्ड का नहीं स्वीकार करना। सरकार के लगातार इस प्रकार के उदासीन रूख से खींच कर लोहिया को कहना पड़ा था- ''जब तक आपकी सरकार की मौजूदा नीति चलती रहती है तब तक इस देश में दुर्भिक्ष प्रतिवर्ष हुआ करेंगे। खाली फर्क यह है कि इसमें दस लाख मरते हैं या एक लाख मरते हैं या पाँच लाख मरते हैं।'' कुछ सदस्यों द्वारा लोहिया से यह पूछने पर कि यदि वो अन्य मंत्री होते तो ऐसी हालत में क्या करते ? लोहिया ने आत्मविश्वास सहित उत्तर देते हुये कहा- ''एक तो दीर्घकालीन सिंचाई जो अभी मैंने कहीं कि मुफ्त सिंचाई पूरी 26 करोड़ एकड़ के लिए, दूसरे अनाज और कारखानों के दामों में संतुलन।''

डा0 लोहिया का दृष्टिकोण हमेशा आर्थिक चिंतन पर केन्द्रित था। उनका आर्थिक नीतियाँ मानवतावादी थी वो भूखों की समस्याओं को राजनीति से जोड़ कर चलते थे। उनकी दृष्टि में जो लोग ये कहते है। कि राजनीति को भोजन से अलग रखो या तो वे अज्ञानी हैं या बेईमान राजनीति का मतलब ये पहला काम भूखे और लाचार लोगों का पेट भरना है। जिस राजनीति में लोगों का पेट नहीं भरता वह राजनीति भ्रमट पापी और नीच है, अपना देश जटिल समस्याओं से ग्रसित है। अतः वहाँ की राजनीति प्रमुख उद्देश्य ही रोटी की समस्या का हल तलाश करना है।

फसल उत्पादन, पानी और सिंचाई की व्यवस्था :

तीसरी लोकसभा में लोहिया का सारा ध्यान जहां अन्न के क्षेत्र में सरकारी नीति की असफलता के कारण अकाल और भुखमरी की जनता पर पड़ रही मार को उजागर कर सरकार को लज्जित और जनता को उत्तेजित करना था, वहीं चौथी लोकसभा में उन्होंने बड़े रचनात्मक सवाल और सुझाव पेश कर सरकार को फसल उत्पादन बढ़ने के लिये अच्छे बीज, यंत्र उर्वरक और सिंचाई की भरपूर व्यवस्था करने के लिये उकसाने का कार्य किया। लोहिया ने रबी फसल का उत्पादन, कपास का उत्पादन, कम अवधि की फसलें, जल्दी उपज देने वाले गेंहू के उन्नत बीज आदि के बारे में बहुतेरे प्रश्न कर शासन को इस दिशा में कदम बढ़ाने को मजबूर किया है। दिनांक 30 मई 67 को कम अवधि की फसल योजना के बारे में लोहिया के प्रश्न का उत्तर देते हुये अन्न मंत्री श्री शरदे ने बताया: ''देश में वर्तमान कठिन खाद्य स्थिति को देखते हुये खास कर सूखा के कारण, यह फैसला किया गया था कि पूर्वी फसल कटने के बाद और खरीफ की फसल बोने के पहले की बीच की अवधि में कम समय में उपज देने वाली फसलों की

सम्भावनायें ढूढी जायें।" फसलों के उत्पादन के लिये पानी और सिंचाई की व्यवस्था की आवश्यकता की ओर भी लोहिया ने प्रभावी तरीके से शासन का ध्यान खींचा था। 7 जून, 1967 को बजट पर सामान्य बहस के दौरान बोलते हुये उन्होंने कहा- "मैं चाहता हूँ कि उस रूपये का और वह जमुना जैसी गन्दी नदी से पानी उलीच कर फेंक देने में, जैसे आसमान पानी फैंकता है, चाहे नहर से पानी फेंके, जमीन के नीचे से पानी निकालों, चाहे कच्चे कुये से, चाहे मशीन के कुये से जिस तरह से भी हो, पानी निकालो।"

कृषि कार्य के लिये कुल बिजली उत्पादन का आधा हिस्सा :

लोहिया ने ही पहली बार अपने एक प्रश्न के माध्यम से दिनांक 20 जुलाई, 1967 के दिन राज्यों में बिजली के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत कृषि कार्यों के लिये सुरक्षित रखने का सुझाव रखा था, जिस पर नौंवी लोकसभा के विश्वनाथ प्रताप सिंह मंत्री मण्डल एवं चन्द्रशेखर मंत्री मण्डल ने विचार किया है। इसके साथ ही लोहिया ने खेती को दी जाने वाली बिजली की दरों में और कमी करने का संकेत भी इसी प्रश्न के माध्यम से दिया था। लोहिया ने बड़े पैमाने पर पम्पिंग सेट के उत्पादन की माँग सरकार से की थी जिनसे नदियों के किनारे की जमीन की सिंचाई हो सके। दिनांक 28 जुलाई, 1967 को स्वयं द्वारा पूछे प्रश्न के मौखिक उत्तर के दौरान पूरक प्रश्न पूछते उन्होंने कहा- "हमारे यहाँ कोई एक लाख मील नदियाँ होंगीं। अगर मंत्री महोदय हर दस मील पर एक पम्पिंग सेट लगा दें, तो दस हजार पम्पिंग सेट की आवश्यकता होगीं और उनसे करीब एक या दो करोड़ एकड़ भूमि को पानी मिल सकेगा।" इसके उत्तर में मंत्री महोदय ने बताया "अनेबिल मेम्बर नेबड़ेहाई प्रेशर पम्पिंग सेट्स के बारे में पूछा है, जो नदियों का पानी खींच कर खेतों को पानी दे सके। उनको बनाने का इंतजाम

अभी तक हमारे यहाँ नहीं है।''

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में विद्युत व्यवस्था एक प्रमुख समस्या है। जिसका उद्देश्य कृषि के द्वारा लोगों का अधिक से अधिक रोजगार दिलाना और भूखे और गरीब लोगों का पेट भरना डा0 लोहिया का दृष्टिकोण विद्युत का उत्पादन सुचारू रूप से किया जाये जिससे देश का प्रत्येक नागरिक आर्थिक विकास की क्रान्ति को तप कर सके जो अत्यन्त सजग और प्रत्यनशील रहे, देश की कृषि व्यवस्था के द्वारा प्रत्येक नागरिक लाभान्वित हो सके और उसके परिवार का सन्तुलित भोजन द्वारा पालन-पोषण हो सके।

भाषा :

अर्थनीति, अन्ननीति के साथ जिस मुद्दे को बड़ी सिद्धान्त के साथ लोहिया और उनके निर्देशन में उनके समाजवादी सांसदों ने लोकसभा में उठाया है वह है भाषा का सवाल। लोहिया भाषा के प्रश्न को पैदाबार के साथ जोड़ते थे। प्रश्न प्रशासन में अंग्रेजी को हटाने का इसलिये पैदा होता था ताकि भारतीय भाषायें- उसकी जगह प्रतिष्ठित हो सकें। लोकसभा में अपने प्रथम भाषण में लोहिया ने भाषा के सवाल को उठाते हुये कहा- ''मातृभाषा के जरिये कामकाज चले तो पैदावार बढ़ सकती है।'' इसी भावना को उन्होंने प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री को 25 अक्टूबर, 1964 को लिखे पत्र में व्यक्त करते हुये कहा- ''अंग्रेजी कभी हट नहीं सकती जिसका मतलब है गरीबी कभी हट नहीं सकती।''

लोकसभा में लोहिया के आने के पहले अधिकतर कामकाज अंग्रेजी में होता था। अंग्रेजी न जानने वाले सांसद हीन भावना से ग्रस्त रहते थे, इसीलिये अक्सर चुप रहते थे। लेकिन लोहिया ने अपने भागीरथ प्रयासों के बल पर हिन्दी और उसके साथ ही भारतीय भाषाओं की गंगा को लोकसभा में अवतरित कराया।

उन्होंने अपने प्रश्नों के माध्यम से अन्यथा आम बहसों में सरकारी कामकाज में भारतीय भाषाओं के साथ हो रहे भेदभाव और अन्याय को उजागर करके उनकी घोर उपेक्षा की सरकारी प्रवत्ति पर अंकुश लगाया। उनके इस कार्य में भागवत झाँ आजाद एवं शिवनारायण सरीखे कांग्रेसी सांसदों ने भी सहयोग किया। इस मामले में लोहिया का सामना अंग्रेजी समर्थक मुहम्मद करीम चावला के साथ था जो अधिकतर भाषा विषयक बहसों के समय शिक्षा मंत्री के रूप में उनको जवाब देते थे। 19 मई, 1966 को इंडियन स्कूल आफ इण्टरनेशनल स्टीडीज द्वारा शोध छात्र वैदप्राताप वैदिक द्वारा हिन्दी में प्रेषित छात्रवृत्ति एवं छुट्टी की प्रार्थना लौटा देने पर, अल्प सूचना प्रश्न पर हुई बहस में, स्कूल प्रबंधकों का बचाव करते हुये, चावला ने कहा- "संविधान किसी गैर सरकारी संस्था अथवा विद्या संस्था पर हिन्दी नहीं लागू करता। इण्डियन स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज एक स्वायत्त निकाय है।" श्री चागला के उत्तर से उत्तेजित श्री भागवत झाँ आजाद ने मंत्री से पूछा- "रूपया कौन देता है?

श्री बागड़ी : यह गलत है। मंत्री महोदय का जवाब गलत है। बहस के दौरान लोहिया एवं मधुलिमये ने संविधान की धारा 343 एवं 351 का हवाला देकर यह निरूपित किया कि सरकार का यह दायित्व कि वह हिन्दी के बढ़ावा दे और उसके विकास का प्रयास करें। लोहिया के मतानुसार 1965 के बाद से संघ के कुछ खास कार्यों को छोड़कर सभी कार्यों में अंग्रेजी के प्रयोग पर संविधान ने पाबंदी लगा रखी हैं। इसके पूर्व भी 9 मई, 1966 को लोहिया ने हिन्दी में हस्ताक्षर वाले आवेदन पत्र की रेलवे मंत्रालय द्वारा नामंजूरी का सवाल उठाया था। तब कहीं जाकर रेल मंत्री रामसुभग सिंह को स्वीकार करना पड़ा; उन्हीं के शब्दों में : "हम लोग चाहते हैं कि जिस भाषा का फार्म हो, उसी में दस्तखत किये जायें, लेकिन

हमने यह एक नयी सहूलियत दी है कि अंग्रेजी के फार्म में हिन्दी में हस्ताक्षर किये जा सकते हैं।''

डा0 राममनोहर लोहिया एक अच्छे भाषाविद् थे। जिन्हें भारत की मात्र भाषा हिन्दी से विशेष लगाव था उनकी भाषा शैली परमार्जित थी। कहीं किसी प्रकार का उनकी भाषा में त्रुटि व अपूर्ण नजर नहीं आती थी। वे अच्छे भाषा नियन्त्रक और चिंतक थे। डा0 राममनोहर लोहिया में भारत के समस्त हिन्दी साहित्य का सम्मान किया और अधिक से अधिक हिन्दी भाषा का प्रोत्यसाहित्य और जागरूक बनाने का प्रयास किया था।

भ्रष्टाचार :

लोहिया द्वारा उठाये मुद्दों में सबसे ज्यादा परेशानी सरकार को उसके मंत्रियों को उसके अफसरों को होती थी, जो उनके भ्रष्ट आचरण से संबंधित मामलों पर आधारित होते थे। सच तो यह है कि लोहिया के लोकसभा में आने के बाद से ऊँचे स्तर के भ्रष्टाचार की ग्राफिक गति में गिरावट आ गई थीं। इसका एक मात्र कारण लोहिया द्वारा लगातार भ्रष्टाचार के मामलों को, ठोस जानकारी एवं तथ्यों के साथ लोकसभा में उजागर करना है। दूसरे उन्होंने सबसे पहले प्रहार, प्रगट आचरण के मामले में प्रधानमंत्री पर ही किया और अपने इस एक कार्य द्वारा सभी मंत्रियों का सावधान हो जाने का संकेत दे दिया। लोहिया इस मामले में किसी का छोड़ने वाले नहीं थे। 6 मई, 1965 को बच्चों के लिये अनुपयोगी टानिक पर आधा घंटे की बहस; जिसका प्रस्ताव स्वयं लोहिया ने किया था, की शुरूआत करते हुये उन्होंने स्पष्ट किया- ''मैंने अपनी जिंदगी में किसी से द्वेष में कोई बात नहीं कहीं है, सार्वजनिक प्रश्नों पर किसी को छोड़ा नहीं है, यह बात तो हैं।'' इस आधा घंटे की बहस का संबंध भी तात्कालीन वित्त मंत्री श्री

कृष्णामाचारी की कंपनियों से था, जो नकली और अनुपयोगी टॉनिक असली कम्पनी के नाम पर, जिसके वितरण की व्यवस्था का भार उन पर था, बेच कर लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर अवैध ढंग से कमाई में लिप्त थीं। आरोपों के जवाव में मंत्री महोदय ने पहले तो 9 अप्रैल को लिखा कि उन्होंने अपने बेटों से व्यापारिक संबंध तोड़ लिये हैं; फिर 24 अप्रैल, 1965 को लिखा कि डायरेक्ट टैक्स बोर्ड को जवाब के लिये भेजा है। इधर लोहिया द्वारा रिजर्व बैंक से यह मालूम करने पर कि बुडबर्ड ग्राइप वाटर कंपनी की ओर से कितना पैसा विदेश जाता है उसने कोई जवाब नहीं दिया। तभी लोहिया ने कहा- ''जांच बहुत जरूरी हो गई। और वित्तमंत्री पर आप जांच बिठा दीजिये।''

इसके पहले भी 24 मार्च 1965 को लोकसभा में लोहिया ने कृष्णामाचारी पर आरोप लगाया था और कहा था- ''नहीं तो कृष्णामाचारी साहब एण्ड कम्पनी के पास कुल 20-30 लाख रूपये थे अँग्रेजी राज के खत्म होते समय, शायद उससे भी कम थे लेकिन आज 3-4 करोड़ रूपये हो गये हैं।'' उन्होंने माँग की जो- ''पिछले 15-17 वर्षों में जिन-जिन मंत्रियों की दो पीढ़ी के परिवारों ने धन कमाया है जप्त हो जाना चाहिए।

गाँधी और लोहिया हमेशा भ्रष्टाचार के खिलाफ थे भारत का लोकतन्त्र और वहाँ की जीवन्त परम्परायें वैज्ञानिक विश्वासों लोकधार्मिकता निष्ठायों, बहुभाषियें,, कहावतों, लोकसुक्तियों और लोकअवधारण में ही पल्लवित और पुष्पित होता है। यहाँ का प्रत्येक नागरिक भ्रष्टाचार में है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पीडित है। ये भ्रष्टाचार मानवीय विचारधारा और उसमें आचरणों को प्रभावित करती है। भ्रष्टाचार हमेशा सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों को भी प्रभावित करता है क्योंकि भ्रष्ट व्यक्ति का कोई नैतिक मूल्य नहीं होता है।

नेता, अफसर और सेठ का त्रिकोण :

दर असल भ्रष्टाचार के गड्डे में नेता, अफसर और सेठ का तिगड्डा धंसा हुआ है- लोहिया ने इसे पहचान कर लोकसभा में प्रगट कर दिया था। 28 नवंबर, 1963 को कम्पनी एक्ट एमेडमेंट बिल पर बहस में हिस्सा लेते हुये उन्होंने पूछा- मैं जानना चाहता हूँ कि इस वक्त केंन्द्रीय मंत्रालय में कौन ऐसा मंत्री है जिसके दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों में से कोई किसी कम्पनी के साथ न जुड़ा हो।''[43] इसके साथ ही लोहिया ने मेहसूस किया कि जो सरकारी अफसर मंत्रियों और व्यापारियां को नाजायज सुविधायें प्रदान करता है और यह प्रगट हो जाने पर जब सरकार उस अधिकारी के खिलाफ जब कार्यवाही करने को मजबूर हो जाती है तो व्यापारी कंपनी उस मुअत्तल अफसर को अपने यहाँ ऊँची जगह पर नौकर रख लेती है। दिनांक 26 जुलाई, 1966 को ''पी'' फार्म के बगैर एअर इंडिया द्वारा टिकट जारी करने के मामले में लोहिया द्वारा पूछे प्रश्न के जवाब में पूरक प्रश्न के जरिये लोहिया ने पूछा- ''इसलिये क्या सरकार इस षडयन्त्र को तोड़ने के लिये कोई कदम उठाने की बात सोच रही है जिससे व्यापारियों, मंत्रियों और अफसरों के इस इकट्ठेपन को खत्म करके कोई न कोई नतीजा निकाला जा सके।''[44] बजाय नतीजा निकलने के ऐसां प्रकरण सामने आ गया जिससे लोहिया की अवधारणा की सच्चाई और साफ होकर सामने आ गई। पब्लिक एकाउन्टस कमेटी न लोहे फौलाद के मामले में मंत्री सुब्रह्मण्यम को जिसके साथ पैसा जुड़ा हुआ था उस हुकम को बिना किसी उचित तर्क के निकालने का दोषी ठहराया था। इस मामले में जीतपाल सेठ, मंत्री सुबह्ममण्यम और नौकरशाह-भूतलिंगम् तीनों शामिल थे, जिनके ऊपर रिपोर्ट आयी थी। मुर्एुलिमये ने मंत्री के खिलाफ

विशेषाधिकार भंग का मामला उठाने का प्रयास किया 8 अगस्त, 1966 को लेकिन सफल नहीं हुये।

9 अगस्त, 1966 को लोहिया ने व्यवस्था का प्रश्न उठाते हुये कहा- ''आप देख रहे हैं कि किस तरह से यह सारा देश सेट, नौकरशाह और मंत्री के त्रिकोण की साजिश के कारण बर्बाद होता जा रहा है।[45] फिर इसी रोज शचीन्द्र चौधरी के आर्थिक प्रस्ताव पर बोलते हुये उन्होंने कहा कि- ''महीनों मेहनत करो तो कृष्णामाचारी साहब जाते हैं, महीनों मेहनत करो तो एक मंत्री कैसे साहब जाते हैं।'' उन्होंने आगे कहा ''यह सारी व्यवस्था इतनी बिगड़ गयी है, लूट इतनी मच गई है कि देश के बनाने की बात सामने नहीं रह गयी है।''[46]

उपरोक्त प्रसंगों के अलावा जिन प्रसिद्ध भ्रष्टाचार के मामलों का भंडाफोड़ लोहिया ने लोकसभा में किया उनमें अमीचंद प्यारेलाल जहाजरानी कंपनी, जयंती शिपिंग कम्पनी और रामगढ़ के सोने का मामला उल्लेखनीय है।

अमीचन्द प्यारेलाल जहाजरानी कंपनी :

दिनांक 2 सितंबर, 1966 को श्री हरिश्चन्द्र माथुर के 'योजनाओं का पुनर्स्थिति निर्धारण प्रस्ताव' पर बोलते हुये लोहिया ने विदेशी मुद्रा की बरबादी और सरकार को धोखा देने वाली अमीचन्द प्यारेलाल जहाजरानी की कारगुजारियों पर पर्दा ड़ालने के लिये चार मंत्रियों को दोषी ठहराया। यह जहाजरानी कंपनी वर्मा से भारत चावल के वजन में बहुत कमी हो जाती थी। भारत सरकार द्वारा जहाजी कंपनी से हरजाना माँगन पर, जहाज कंपनी ने बचाव के लिए एक चिट्ठी द्वारा जहाज के कप्तानों को निर्देश दिया कि वो बीच के बन्दरगाहों में खाली बोरे छाप ठप्पे के साथ जहाज के अलग-अलग हिस्सों में लदवा दें। यह चिट्ठी रंगून में

भारतीय दूतावास के पास किसी तरह पहुंच गयी। दूतावास ने उसे आवश्यक कार्यवाही के लिये भारत सरकार को भेज दिया। लेकिन लोहिया के शब्दों में "इस खत को दबा दिया, उस कंपनी के खिलाफ कोई कार्यवाई नहीं हुई।" संबंधित मंत्री को निकाल बाहर करने की माँग के साथ लोहिया ने उल्लखित पत्र को सदन की मेज पर रख दिया।[47] इसके बाद लोहिया और उनके साथियों ने इस मामले को कई दफा, विशेषाधिकारी भंग के मामले के रूप में, व्यवस्था के प्रश्न आदि के माध्यम से उठाने का प्रयास किया, लेकिन कोई सार्थक बहस न हो सकी।[48] 7 सितम्बर, 1966 को व्यवस्था के प्रश्न पर रामसेवक यादव ने कहा- "आज आखिरी दिन है। ए0पी0जे0 द्वारा बर्मा से आने वाले चावल को लेकर लाखों रूपयों का नुकसान हुआ है। उस समय के खाद्य मंत्री की, विदेशी मंत्री की ओर प्रधानमंत्री की जिम्मेदारी थी। उस पत्र को यहाँ रखा भी गया है। और आपने उसको रखने की अनुमति भी दी थी। अब आप इसको क्यों नहीं ले रहे हैं। "इसके बाद अंध्यक्ष द्वारा कोई कार्यवाई न करने के विरोध में समाजवादी सदस्यों ने सदन त्याग भी किया।"[49]

.अध्यक्ष महोदय द्वारा मामले पर मौन साध लेने पर, लोहिया ने प्रश्नों के माध्यम से पहले जानकारी प्राप्त की और उसी के आधार पर आखिर में आधा घंटे की बहस प्राप्त करने में सफल हुये। यह बहस दिनांक 1 दिसम्बर, 66 को सम्पन्न हुई। बहस में लोहिया ने तथ्यों सहित, जहाजों के नाम एवं हर बार के फेरे में चावल के वजन में कमी के आंकड़ों सहित लाखों की हेराफेरी के मामले को उजागर करने का पुरजोर प्रयास किया, लेकिन खाद्य राज्य मंत्री गोविन्द मेनन ने अपने जवाव में कहा- "यह ठीक है कि पत्र द्वारा धोखा देने का प्रयास किया गया था परन्तु धोखा दिया नहीं गया।" बहस के आखिर में मंत्री की गलत

वयानी से भौचक्के लोहिया ने अध्यक्ष से कहा- ''यह विशेषाधिकार का सवाल है। मंत्री महोदय ने जानबूझकर सदन में असत्य भाषण किया है।'' 2 दिसम्बर 66 को अध्यक्ष ने तत्परता के साथ श्री एस0के0 पाटिल एवं श्री स्वर्ण सिंह को अपने व्यक्तिगत स्पर्ष्टीकरण प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की। इस अवसर का लाभ उठाते हुये दोनों ने लोहिया द्वारा लगाये आरोपों को झूठा और निराधार कहते हुये मानने से इंकार कर दिया। श्री पाटिल ने लोहिया को आरोप बाहर दोहराने की चुनौती दी, जिसे लोहिया ने सहर्ष स्वीकार किया। 5 दिसम्बर 66 को मंत्री के खिलाफ आरोपों की जाँच के माँग के संदर्भ में बोलते हुये लोहिया ने लोकसभा में कहा' ''अभी हमारे त्यागीजी ने कहा था कि आरोप बाहर लगाओ। मैं उनको बतलाना चाहता हूं कि पचास बार ये आरोप लगाये जा चुके हैं। जननाम की मासिक पत्रिकायें ये बात छाप चुकीं हैं। मैं जानना चाहता हूं कि क्यों मुकदमा नहीं चलाया है।'' लेकिन लोकसभा या कि सरकार ने मंत्रियों के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की बहरहाल लोहिया ने मामले का पीछा चौथी लोकसभा में पहुंचकर भी जारी रखा। 27 जून, 1967 को सरकार ने लोहिया द्वारा पूछे प्रश्न के उत्तर में आखिर में स्वीकार किया- कानूनी परामर्श प्राप्त करने के बाद सरकार ने कम्पनी के सरकार को धोखा देने की कोशिश करने वाले कर्मचारी के विरूद्ध, जिसने अनुदेश जारी किये थे, अपराधात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया है।'' इसी निर्णय की दृष्टि में शासन कम्पनी के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिये आवश्यक पग उठा रही है, यह भी उत्तर में कहा गया। इस प्रकार कम्पनी द्वारा धोखाधड़ी किये जाने लाखों रूपयों की हानि पहुंचाने की लोहिया की बात सच साबित हुई। लेकिन 1962 से लोहिया द्वारा मामला उठाये जाने तक इस गड़बड़ी को मालूम हो जाने के बाद भी पर्दा डालने के दोषी मंत्री पात्र आरोप

निराधार है कहकर बरी हो गये जबकि आरोप निराधार नहीं थे, यह 27 जून 67 के सरकारी जवाव से प्रकट होता है।

डॉ0 लोहिया ने हमेशा देश की चिंता की और धीरे-धीरे देश के अध:पतन में गंभीरता को देखा उन्होंने डॉ0 भगवानदास महौर और पुरूषोत्तमदास टंडन जैसे व्यक्ति को भी आदर्श बनाने का प्रयास किया वो चाहते थे हिन्दुस्तान का प्रत्येक व्यक्ति अपनी गरिमा और उसके महत्व को समझे जिससे भ्रष्टाचार, जातिवाद, निरंकुशवाद और सामप्रदायवाद जैसी कुसंगति प्रवृत्तियों को नष्ट कर सके।

जयंती शिपिंग कम्पनी :

डॉ0 धर्मतेजा की जयंति जहाजरानी कंपनी पर लोहिया की नजर बहुत पहले से थी। 4 अप्रैल, 64 को उद्योग मंत्रालय पर बहस ने दौरान उन्होंने कहा था- ''एक जनरल जो उर्वसी की लड़ाई में इतना बेकार साबित हुआ आज एक निजी धन्धे में 10000 रूपया महीने की बिना इन्कमटैक्स वाली नौकरी कर रहा है।

श्री वनर्जी, प्रधानमंत्री का रिश्तेदार है।

डॉ0 लोहिया : बनर्जी साहब कहते हैं कि रिश्तेदार हैं। असल बात क्या है? माननीय प्रधानमंत्री का रिश्तेदार है। उस आदमी को जिसने यह जहाज कम्पनी बना रखी है, सरकार की तरफ से इतनी अनेकों सुविधायें मिली हैं कि वो उसका जबाव प्रधानमंत्री के रिश्तेदार को सुविधा देकर दिया करते हैं। जब तक यह सारी चीजें चलती रहेंगी, यह सब कोरी बकवास है और देश का दुर्भाग्य ही चलता रहेगा। इसलिये मैं चाहता हूं कि जड़ से इसको सुधारा जाये। जड़ से उस

पर कुठाराघात किया जाये।" लोहिया की आशंकायें, अन्य आशंकाओं की तरह डा0 तेजा के मामले में भी सच साबित हुई और शीघ्र ही उनकी कम्पनी और डा0 तेजा की गतिविधियां छन-छन करके प्रकाश में आने लगीं। दिनांक 1 अप्रैल 1966 को लोहिया के एक प्रश्न के जवाव में जहाजरानी मंत्री श्री संजीव रेडडी ने अपने लिखित उत्तर में बताया कि जयंती शिपिंग कम्पनी के कामकाज के बारे में लगाये आरोपों के मामले की जांच की जा रही है। मई 66 तक उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर सरकार को कार्यवाई करने पर मजबूर होना पड़ा। 10 जून, 66 को कम्पनी का मैनेजमेंट सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। डा0 धर्म तेजा के विरूद्ध जापान की मित्सूशीवी कम्पनी का कर्ज अपने खाते में लेने और जाली प्रस्ताव तैयार करने इस प्रकार अमानत में खयानत और जाली दस्तावेज के दफा 465, 466, 505 और 406 के मामले बनते थे। अलावा इसके भारत सरकार से कम्पनी को दिये कर्ज को भी तेजा ने खुद के हिसाब में डाला था और जहाजों की बिक्री पर करोड़ों रूपयों की दलाली खाने के आरोप भी थे। ये सारी बातें लोहिया ने 24 अगस्त 66 को जयन्ती शिपिंग (टेकिंग ओवर आफ मैनेजमेंट) बिल पर हुई बहस में व्यक्त की। लोहिया ने श्री धर्म तेजा को तत्काल गिरफ्तार करने एवं यदि वो भारत में नहीं है तो इन्टरपोल के जरिये उसे गिरफ्तार करवा कर भारत सरकार सारे मामले चलाये जाने की मांग की।

लोहिया की मांग के जबाव में प्रधानमंत्री ने कहा-

श्रीमती इंदिरा गांधी : सवाह यह है कि -

इन्टरपोल कैसे काम करता है? यदि डा0 तेजा फ्रान्स में है तो प्रत्यावर्तन आदेश चाहिये, फ्रांस के साथ हमारा कोई समझौता नहीं है। डा0 लोहिया ने उसी समय सदन मे, इसके बाद श्री दिनेश सिंह को एक पत्र लिखकर

यह समझाने की कोशिश की कि एक्स्ट्राडिशन राजनीतिज्ञों का होता है। साधारण अपराधियों का नहीं, लेकिन सरकार ने सुनकर भी अनसुना कर दिया। दिनांक 22 मई 67 को एक प्रश्न के मौखिक उत्तर के बीच पूरक के जरिए मधुलिमये ने सारे मामले की पारलियामेन्टी कमेटी द्वारा जांच की मांग की। 13 जून 67 को डा0 लोहिया ने एक प्रश्न द्वारा यह जानने की कोशिश की कि इन्फोर्समेंट डाइरेक्टीरेट और वित्त मंत्रालय के धर्म तेजा को गिरफ्तार कर लेने के सुझाव देने के बाद भी तेजा के भारत से भाग निकलने में मदद देने के मामले में गृह मंत्रालय और सी0बी0आई0 की जिम्मेदारी से जांच की गई है, सरकार ने जबाव दिया, मामले की जांच हो रही है। लोहिया के पल्ले अधिकतर, भ्रष्टाचार के मामलों को प्रकाश मेंजाने के माध्यम के रूप में, आधा घंटे की बहस की पड़ती थी। लेकिन लोहिया इस अवसर का भी भरपूर प्रयोग, अपने कौशल और चातुर्य की दर पर खूब करते थे। 23 जून, 67 को स्वयं द्वारा उठायी, आधा घंटे की बहस में लोहिया ने धर्म तेजा की पत्नी रणजीत तेजा के पत्र को उद्घृत करते हुये, इस संबंध में उस समय तक की सरकार की भूमिका को संदेह के घेरे में ला दिया। वस्तुतः डा0 लोहिया की इस मामले में रूचि का रहस्य और उददेश्य यही थी कि तेजा कांड में सरकार के ऊंचे लोग शामिल हैं। इस बहस में कांग्रेसी सदस्यों ने काफी टोका टाकी की, इस पर लोहिया ने कहा- यह मामला सरकार के ऊंचे शिखर तक पहुंच जाता है। मैने अक्सर इस सदन में देखा है कि सरकार के इधर'-उधर के लोगों पर हमला हो तो ठीक है, लेकिन जब सर्वोच्च शिखर पर हमला हो जाता है तो आप लोग इस तरह छटपटाने लगते हैं जैसे मछली नदी के बाहर निकाल दी गई हो। इसके बाद 25 जुलाई 67 को आधा घंटे की बहस का सरकारी जबाव जो सदन के सभा पटल पर रखा गया था उस पर वक्तव्य देतु

हुये लोहिया ने सरकार के उपप्रधानमंत्री और यातायात मंत्री, इफोर्समेंट विभाग और गृह मंत्रालय के बीच तालमेल की कमी को उजागर करते हुये सिद्ध किया कि मामले में सरकार की नियत संदिग्ध है।

लोहिया ने कहा- जैसे इन्होंने (धर्म तेजा ने) अपने देश को और कम्पनी को लूटा है जालसाजी करके, उस दोष में इस सरकार के लोगों ने भी, मंत्रियों और नौकरशाहों ने हिस्सा लिया है। तो इस संसद के सामने जो बात आ रही है वह यह नहीं है कि धर्मतेजा दोषी है या नहीं। उससे मुझको क्या मतलब पड़ा हुआ है। बल्कि मुझको मतलब इस बात से है कि कहीं ऐसा न हो एक दोषी को पकड़ लें और दूसरा दोषी हाथ छुड़ाकर भाग जाये।''

लोहिया का मानना था कि ऐसी बातों के सामने आ जाने से देश का बड़ा भारी हित होता है। तभी उन्होंने अपने अथक प्रयासों के जरिये सरकारी व्यक्तियों की सम्पत्ति, बड़े व्यापारियों, उद्योगपतियों द्वारा आयकर अपवंचन, विदेशी मुद्रा विनिमय नियमों का उल्लंघन, स्वर्ण घोटाला कांड जैसे अनेक लोकहित के, लेकिन सरकार पर और निहित स्वार्थी तत्वों पर चोट करने वाले मामले उठाये। 21 जून 1967 को लोहिया के साथी समाजवादी सांसद जार्जफर्नाडिस ने सरकारी दफतरों में लगे व्यक्तियों की सम्पत्ति के ऊपर उठायी आधा घंटे की बहस में हिस्सा लेते हुये, लोहिया ने उच्च स्तर के भ्रष्टाचार के कारण अर्जित अवैध सम्पत्ति की जांच पडताल और जप्ती के लिये सरकार द्वारा एक स्थायी आयोग बनाने की मांग की, उन्होंने कहा बड़े बड़े सरकारी अफसरों और लोगों के पास स्वराज्य के वर्ष से लेकर अब तक जितनी सम्पत्ति है, इकटठी हुई है, उसकी जांच की जाये और जितनी सम्पत्ति अनुचित उनके पास समझी जाये उसकी जप्ती की जाए। अगर ऐसा एक स्थायी आयोग बना दिया जाये तो मैं

समझता हूं कि विश्वास को इतनी जबरदस्त लहर फैल जायेगी देश के अंदर की शायद उससे हम लोगों में एक नया उजाला आ जाएगा।

लोहिया ने हमेशा भारत के किसी भी सम्पत्ति को नुकसान नहीं पहुंचाया बल्कि उनका उद्देश्य था कि प्रत्येक कम्पनी भारत की अर्थव्यवस्था को सुव्यस्थित और सुचारू बनाये जिससे हर व्यक्ति समाज का एक प्रमुख हिस्सेदार बन सके और इसके अलावा भारतीय सभ्यता और जनतंत्रात्मक प्रणाली भी गतिशील हो सके, ये उद्देश्य लोहिया जी का था।

प्रधानमंत्री : पं0 जवाहर लाल नेहरू-

गांधी, लोहिया और नेहरू आपस में तीनों ही भारतीय लोकतंत्र की आत्मा थे, परन्तु इन तीनों का व्यवहारिक एवं प्रयोगात्तमक जीवन भिन्न था, क्योंकि इन तीनों लोगों की दिनचर्या और लोकतंत्रात्मक दिष्टव्य और परिकल्पनायें अलग-अलग थी। गाँधी और लोहिया में समानता थी फिर भी नेहरू इन सबसे भिन्न थे। उनके विचार हमेशा पाश्चात्य संस्कृति पर टिके हुये थे। उन्होंने भारत की दिशा और दशा उच्च कोटी की यंत्रीकरण के रूप में देखना चाहा परन्तु लोहिया और गाँधी किसी दूसरे रूप में देखना चाहा।

प्रधानमंत्री का पद लोहिया के लिये हमेशा रूचि एवं अध्ययन का प्रिय विषय रहा है। लोकसभा में आने के पूर्व ही लोहिया प्रधानमंत्री के ठाठ-बाट और फिजूलखर्ची के कठोर आलोचक रहे हैं, लेकिन हमने पाया है कि खर्च पर रोक लगाने की लोहिया की मांग या कि मंशा केवल प्रधानमंत्री तक सीमित नहीं होकर, प्रत्येक नागरिक पर लागू होती थी, अतः खर्च पर सीमा उनका एक विचार था, प्रधानमंत्री विद्वेष नहीं। प्रधानमंत्री जनता का सेवक होता है, किसी भी लोकतांत्रिक समाजवादी विचारधारा के व्यक्ति के लिये यह बात अजीब नहीं

लगेगी। लेकिन लोहिया के लोकसभा में प्रवेश लेने के चौथे दिन ही जब 16 अगस्त 63 को प्रश्नोत्तरकाल में लोहिया ने प्रधानमंत्री से कहा।

लोहिया : बहाना, यह शब्द इस्तेमाल नहीं होना चाहिये। प्रधानमंत्री जोकर हैं, सदन मालिक हैं। मालिक के साथ नौकर को जरा अच्छी तरह से बात करनी चाहिये।

इतना सुनना था कि लगा कि अजूबा हो गया। लोहिया ने यह क्या कह दिया। कांग्रेसी सांसद भी भागवत झा आजाद तो सहन न कर सके और बोले वह नौकर है तो आप चपरासी हैं।

लोहिया : मंजूर करूंगा, जाइये और बनिये उनके चपरासी, ऐसे नौकरों को इकट्ठा कर रखा है।

अगले दिन श्री डी0सी0 शर्मा ने लोहिया के कथन को निकाल देने की मांग की, लेकिन लोकतंत्र के सौभाग्य से, अध्यक्ष ने मांग को नामंजूर कर दिया। इस प्रकार लोकसभा में पहली बार प्रधानमंत्री को सीधी चुनौती देने वाला, उन्हें उनकी सही स्थिति बतलाने वाला संसद सदस्य पहुंच चुका था। यह भी एक संयोग है कि लोहिया का सामना उनके अल्पकाल के संसदीय जीवन में ही तीन प्रधानमंत्रियों से हो गया, श्री जवाहर लाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती इंदिरा गांधी। लोहिया ने निर्भीकता के साथ प्रधानमंत्री पर, जो उन्हें आपत्तिजनक लगा उसे प्रकट करते हुये प्रहार किये जो किसी भी विरोधी दल के नेता के लिये एक सामान्य कर्तव्य है, लेकिन यहां हिन्दुस्तान में, चूंकि इसके पहले ऐसा नहीं हुआ था अतः कुछ लोगों को लोहिया का व्यवहार असामान्य, अशिष्ट और असाधारण लगा।

28 नवम्बर, 63 को कम्पनी एक्ट एमेंडमेंट बिल पर बहस में बोलते हुये, लोहिया ने कहा- "एक बड़े मंत्री को, उस कम्पनी को कम्पनी कानून मुताबिक चंदा देने का अधिकार नहीं था लेकिन 50 हजार का चेक जोते ही दे दिया, उसका नाम है कानपुर का कपड़ा कमेटी।

चेयरमैन : यहां पर नाम लेना ठीक नहीं होगा।

लोहिया : इसलिये कि वे प्रधानमंत्री स्वयं हैं। प्रधानमंत्री गलत ढंग से रूपया लेते हैं।

चेयरमैन : आर्डर-आर्डर, उन्हें शिष्ठता का रक्षण करना है।

प्रधानमंत्री व्यापारिक घरानों से कांग्रेस पार्टी के चुनाव कोष में धन स्वीकार करते थे यह बात श्री नेहरू द्वारा 1952 में घनश्याम दास बिरला को लिखे एक पत्र से प्रगट होती है जिसमें उन्होंने श्री बिरला से पार्टी के केन्द्रीय कोष में अपना कंट्रीब्यूशन भेजने का अनुरोध किया था। नेहरू फेमिली एण्ड घनश्याम दास बिरला नामक पुस्तक में जो 1986 में प्रकाशित हुई है, यह पत्र पृष्ठ 53-54 पर उद्घृत है। आगे चलकर इसी तरह के मिलते जुलते प्रकरण में श्री के0डी0 मालवीय को मंत्रीमण्डल से स्तीफा देना पड़ा था। अतः लोहिया यदि प्रधानमंत्री के उपरोक्त कार्य का लोकसभा में उल्लेख कर उसकी आलोचना कर रहे थे तो उसका उददेश्य लोकतंत्र के खंबों को मजबूत करना ही था।

लोहिया प्रधानमंत्री पद के रूतबे, शान शौकत और विशेष सुविधा दिये जाने के प्रबल विरोधी थे। इसका सीधा कारण लोकतंत्र और राजतंत्र में फर्क का है। लोकतंत्र में प्रधानमंत्री राजा जैसा व्यवहार करे उन्हें असहनीय था। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण लोकसभा में लोहिया ने उन प्रसंगों को छांट-छांट कर

प्रगट किया है जो प्रधानमंत्री के पद के साथ जुड़ी विशेष सुविधाओं को उजागर करते थे। 5 मार्च 1964 को वजट पर आम बहस के दौरान उन्होंने बताया- ''प्रधनमंत्री का जो घर इलाहाबाद में है, उसके बारे में 1962 तक मुझे पता है। उस घर पर कम से कम 1800 या 2000 रूपया महीने के हिसाब से कर लगना चाहिए, जवकि लग रहा है 1800 साल के हिसाब से। असल में लोहिया यहां हिन्दुस्तानी अधिकारियों की 'जी हुजूरी' की मानसिकता को प्रकट कर रहे हैं, यह तय है कि इलाहाबाद नगर पालिका को प्रधानमंत्री ने कभी नहीं कहा होगा कम कर लगाने को, लेकिन अधिकारियों ने नासमझी में ऐसा किया होगा। प्रधानमंत्री द्वारा रचित पुस्तकों की रायल्टी का ममला भी लोहिया ने आम बहसों के साथ प्रश्नों के माध्यम से भी उठाया। लोहिया ने सरकार के 57 लाख रूपयों के खर्चे पर छपी किताबों की रायल्टी उनके वारिस को दिये जाने का विरोध किया। इसके अलावा लोहिया ने नेहरू जी के लायडज बैंक इंगलिस्तान में खाते का मामला भी उठाया। जो उनके अनुसार 1947 के पहले तो ठीक था लेकिन 1947 से 1960 के आसपास तक एक या दूसरे गैर कानूनी रूप में चलता रहा। इन आरोपों के उत्तर में गृह मंत्री चव्हाण जिन्होंने कहा कि लायडस बैंक में कोई खाता नहीं था, वहीं उप प्रधानमंत्री देसाई ने बैंक में खाता होने की पुष्टि कर सरकार को स्थिति हास्यादस्पद बना दी।

डा0 लोहिया संसद में प्रत्येक प्रश्न पर चिंतन करते थे। और सोचते की वास्तव में प्रधानमंत्री को कौन-कौन सी सुविधायें उचित है। और कौन-कौन सी अनुचित क्योंकि उनके दृष्टिकोण में यर्थात और आदर्श था। ना कि चाटुकारिता और चापलुसी वे हमेशा विश्वास रखते थे कर्तव्य और कर्म की वेदी पर न की भोगविलासिता पर।

श्री लालबहादुर शास्त्री :

डा0 लोहिया और शास्त्री भ्रष्टाचार के खिलाफ थे क्योंकि इन दोनों पर कभी किसी प्रकार से भ्रष्ट आचरण के आरोप नहीं लगायें गये इन दोनों व्यक्तियों में आचरण और अभिव्यक्तियों अपने आपमें सर्वोत्तम थी क्योंकि इनका जीवन निष्कपट निश्चल और विकासोन्मुखी था। शास्त्री हमेशा से ही त्यागमयी व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे। उसका व्यक्तित्व साफ-सुथरा था कहीं किसी प्रकार का कालापन था कालिक दिखायी नहीं पड़ती थी उनका आन्तरिक और बाहरी मन एक जैसा था शास्त्री भारत की गरीमा का सम्मान करते थे वो समझते थे कि लोकतन्त्र का जीवन कितना महत्व है। और प्रत्येक देश की राजनीति के लिये लोकतन्त्र से किसे फायदा और नुकसान है क्योंकि लोकतन्त्र सारे विश्व का एक अनोखा और अनुठा शासन करने की पद्धति है। जो राजतन्त्र की तुलना में उत्तम है।

श्रीमती इंदिरा गांधी :

श्रीमती इंदिरा गाँधी भारत के लोकतन्त्र की एक आत्मनिष्ठा, आत्मगौरव एवं आत्मत्यागी प्रधानमंत्री थी उनका व्यवहार लक्ष्य स्पष्ट था, कही किसी प्रकार का पाखण्ड और आडम्बरवाद नहीं था। वो बाहरी व आन्तरिक रूप में एक जैसे दिखायी पड़ती थी उनकी सोच और विचारों में अकुलाहट नहीं थी पारगम्यता और पारदर्शिता थी।

मध्य प्रदेश के शहर रायपुर में दिनांक 25 फरवरी 1966 को एक आमसभा में भाषण करते हुये, उस समय चालू लोकसभा के अधिवेशन के बारे बोलते हुये लोहिया ने व्यक्त किया कि शुरू के तीन हफ्तों में नये प्रधान के साथ व्यवहार करने में कुछ संयम से काम लेने का बंधन मैंने अपने ऊपर लगाया था,

क्योंकि वो मुझसे उम्र में कुछ कम है और मैं चाहता था कि वो अपने काम को समझ लें। लेकिन 16 मार्च 1966 को ट्रेफिक पुलिस के सिपाही ने प्रधानमंत्री की गाड़ी निकल जाने देने के लिये लोहिया की टैक्सी को रोक लिया। उसी दिन इसको लेकर समाजवादी सांसद रामसेवक यादव ने लोकसभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहा। 17 मार्च, 1966 को उपाध्यक्ष महोदय ने इसका उल्लेख करते हुये बताया कि पुलिस के सिपाही ने दूसरी ओर के यातायात को गुजरने का संकेत कर दिया था, इसलिये विशेषाधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं हैं। लोहिया ने इसका तत्काल प्रतिवाद करते हुये कहा: "यह बिल्कुल झूठ है अध्यक्ष महोदय।"

लोहिया : यह बिल्कुल झूठ हैं। दोनों गाड़ियां एक ही दिशा में जा रहीं थीं। इतना बड़ा झूठ बोलकर प्रधानमंत्री बच जाना चाहती है।

लोहिया ने इस घटना का लाभ उठाते हुये असल के लिहाज से तीन बेहतरीन सिद्धांत लोकसभा में पेश किये। पहला, आवागमन के नियम के बारे में कोई भी भेदभाव नहीं होना चाहिए, दूसरा; सदन एवं लोकसभा की सार्वभौमिक सत्ता के बारे में सदस्यों में विभेद नहीं करना चाहिए, तीसरा; सरकारी नौकरों को जो भी कोई काम करें उसके बारे में सचेत रहना चाहिए और खाली यह कहकर कि बड़े अफसर ने हुकम दिया है उसको नहीं टाल देना चाहिए।

इन्दिरा गाँधी की छवि और सम्मान सारे विश्व में अलग थी लोहिया के हर व्यक्ति का मन्तव्य और दृष्टव्य को कभी-कभी सोचने के लिये मजबूर हो जाती थी, कि उनको किस सच्चाई से संतुष्ट किया जाय जिससे भारतीय राजनीति का पुनरूउत्थान हो सके यही दृष्टि कोण "प्रियदर्शनी" इन्दिरा गाँधी का था क्योंकि उन्होंने भारतीय लोकतन्त्र को बचपन में पल्लिवत और पुष्पित होते हुये देखा लेकिन यौवन की शुरूआत होने से पूर्व ही इन्दिरा गाँधी के जीवन का अन्त हो

गया, किसी जहां में खो गई केवल उनके सिद्धान्त और नीतिया लोहिया की तरह जीवित है।

अन्तर्राष्ट्रीय विषय (विदेशी मामले) :

डा0 लोहिया ने अन्तराष्ट्रीय मामलों पर बहुत से व्याख्यान दिये उनके विचार लेख तथा भाषण अन्तराष्ट्रीय मामलों पर केन्द्रीयभूत थे, इसके अतिरिक्त डा0 लोहिया ने उत्कृष्ट एवं विपुल भाषणों के द्वारा अन्तराष्ट्रीय मुद्दों को भी सुलझाने का प्रयास किया। डा0 लोहिया की नीतियों में पारदर्शिता और गम्भीरता थी। कहीं लोहिया की अस्पष्टता और लचीलापन नजर नहीं आता था, अन्तराष्ट्रीय मुद्दों पर लोहिया की विचार धाराओं में।

पं0 जवाहर लाल नेहरू की मंत्री परिषद के विरूद्ध प्रथम अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुये लोकसभा में अपने प्रथम भाषण में राममनोहर लोहिया ने भारत की विदेशनीति की शोचनीय हालत कर वर्णन करते हुये कहा : ''वर्तमान सरकार की विदेशनीति निरपेक्ष बिनलगांव की नीति नहीं है। कुछ मंत्री सोवियत कैम्प के साथ कुछ अटलांटिक गुट के साथ लगा रखे हैं। मंत्रीमण्डल दो हिस्सों में टूटी है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या इतिहास में और कोई भी देश ऐसा रहा है, जो किसी विदेशी प्रश्न पर इतना टूटा है, जितना हिन्दुस्तान।''

हिन्दुस्तान की इस खंडित विदेश नीति का ही यह नमूना था कि जब लोहिया ने हिन्दुस्तान की जमीन की हवा में चीनी प्रधानमंत्री को ले जा रहे विमान को उड़कर जाने की अनुमति दिये जाने के प्रश्न पर और हिन्दमहासागर में अमरीका के सातवें बेड़े की हलचल के सवाल पर विदेशमंत्री के खिलाफ निंदा प्रस्ताव लाने की कोशिश की, लेकिन विरोधी सदस्यों के एकमत न होने की और असहयोग की वजह से सफल न हो सके। लोहिया ने स्वयं कहा ''मैंने कम्युनिस्टों

से कहा तुम अपना सातवें बेड़े पर गुस्सा उतार लेना। स्वतन्त्र वालों से कहा तुम चीनी उडान पर उतार लेना। मैंने मन में सोचा कि मुझ जैसे को मौका मिल जायेगा, दोनों के ऊपर वाण चलाने का।" इस प्रकार यह प्रगट हुआ कि सरकार एवं लोकसभा में विभिन्न व्यक्ति या गुट अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में रूसी अथवा कि अमरीकी दृष्टिकोण से सोचते थे न कि हिन्दुस्तानी दृष्टिकोण से। इससे अधिक शोचनीय दशा वास्तव में ढूढ़े नहीं मिलेगी।

डा0 लोहिया ने हमेशा चीन हो या सोवियत रूस हो उन सब के प्रति लोहिया ने कई कडे और दृढ़ विचारों को समय-समय पर प्रस्तुत किये क्योंकि उनके विचारों में एक मानवतावादी नीतियों के अतिरिक्त लोकतन्त्रात्मक प्रणालिओं को भी बढ़ाया देते थे। वे समझते थे कि चीन भारत के लिये कितना मित्रवत व कितना शत्रुवत है। उन्होंने हमेशा विदेशी मुद्दों पर सिफारिशे की और मानव जाती का हिन्दुस्तानी अंश और उनकी संस्कृति का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार किया।

चीन के प्रति नीति का सवाल :

लोकसभा में लोहिया के प्रथम प्रवेश के पूर्व ही हिन्दुस्तान चीनी के हमले के कटु एवं शर्मनाक अनुभवों के दर्दनाक दौर से गुजर चुका था। ऐसे में सरकार द्वारा बेशर्मी के साथ चीन के संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश की वकालत किये जाने पर खीझ और क्षोभ के साथ लोहिया ने लोकसभा में कहा : "चीन हमारे देश पर हमला किये हुये है। युद्ध है, कहते हैं। लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान राष्ट्रसंघ में चीन की भरती के लिये पैरवी कर रहा है, कोई लाड़ला अपनी मां के वलात्कारी के साथ मां की शादी करवाने की इच्छा करे, यह कैसी वात है।

एक सदस्य : यह उपमा बड़ी खराब है।

लोहिया : यह उपमा बहुत खराब है, लेकिन इससे भी ज्यादा खराब मांमले चल रहे हैं

लोहिया ने चीनी प्रधानमंत्री को ले जा रहे विमान को हिन्दुस्तान की सीमा से होकर गुजर जाने की अनुमति देने पर सरकार की लोकसभा में कड़ी आलोचना की । और इस प्रश्न के बारे में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के कथन को, बचाव की कि "करांची और ताशकंद का कोई और रास्ता होगा तो बहुत लम्बा होगा, कोई सीधा रास्ता नहीं होगा।"[50] गलत बयानी कहकर उसे सुधारने की मांग की। लोहिया ने कहा- "हिन्दुस्तान का मन कुचला जा चुका है, वरना आज हिन्द में इसी बात को लेकर बगावत हो जाती कि जिसने हमारी धरती पर हमला किया उसको हवा का इस्तेमाल करने का मौका दिया।"[51] हमलावर चीन के साथ कठोर नीति का प्रश्न लोहिया के मानस को सदैव उद्वेलित करता रहा। उनकी इच्छा थी कि चीन के मामले में सरकार ऐसे संकल्प की नीति पर चले कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में चीन अकेला पड़ जाय। इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा- "दक्षिण एशिया में या तो आप चुप रहो, चीन के खिलाफ न बोल सकते हो तो न बोलो लेकिन जब बोलो तब चीन के खिलाफ बोलो। यह आपकी नीति हो जानी चाहिए।"[52]

दिनांक 22 अप्रैल, 1966 को चीन के विस्तार को रोकने के लिए प्रशांत क्षेत्र में एकता के संकल्प के प्रस्ताव पर बोलते हुये लोहिया ने चीन के खिलाफ थाई देश, मलेशिया, फिलीपीन, दक्षिण कोरिया, जापान और ताइवान जैसे देशों के साथ संबंध सुधारने की कोशिश करने की मांग की। इसी बहस में बोलते हुये उन्होंने फिर से चीन के संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश को भारतीय समर्थन देने

के प्रयासों के घातक परिणामों की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट किया।[53]

लोहिया ने इसके बाद लगातार अपने प्रश्नों के द्वारा सरकार का ध्यान चीन पाकिस्तान के बीच गुप्त करार, चीन के अणुविस्फोट को देखते हुये भारतीय सुरक्षा का पुनरीक्षण और चीन और दूसरे देशों के बीच निकट सहयोग के खतरों की ओर दिलाने का प्रयास किया।[54]

भारत पाकिस्तान युद्ध के अवसर पर चीन पाक हलचलों के बारे में सरकार द्वारा दिये वक्तत्य पर सवाल पृछते हुये लोहिया ने कहा- ''अब चीन ने उसी तरीके से हमले की धमकी दी है तो मेरा जैसा आदमी यह कहना चाहेगा कि हमला होने के बाद पेकिंग के इस जंगली जानवर को तिब्बत की गुफाओं में ढूंढ़ कर खत्म कर देना चाहिए।''[55]

चौथी लोकसभा में जून, 1967 के महीने में चीन का प्रश्न लोकसभा मे लगातार गहराया। इन बहसों में से अधिकतर की शुरूआत लोहिया और उनके साथियों ने की थी और उन्होंने इन बहसों को जानदार और अर्थपूर्ण वनाने की कोशिश की। 13 जून, 1967 को लोकसभा में चीन द्वारा भारतीय राजनयिकों की नजरबंदी के ऊपर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव लाया गया। इसी दिन नक्सलवाटी और खाटीवादी में स्थिति पर हुई बहस में बोलते हुये लोहिया ने कहा- ''चीन तो पिछले दस पन्द्रह बरस से एक पागल जानवर की तरह बर्ताव करता आ रहा है। जब किमाय और मात्सू में उसके दांत टूट गये तो उसने हिमालय के कच्चे और मुलायम मांस में अपने दांत गड़ा दिये।''[56] अगले ही दिन 14 जून, 1967 को चीन में भारतीय कूटनीतिज्ञ को संरक्षण दे सकने में भारत सरकार की कथित असफलता पर मधुलिमये स्थगन प्रस्ताव रख पाने में सफल हुये। स्थगन प्रस्ताव के सह प्रस्तावक के रूप में लोहिया ने बहस प्रारंभ करते हुये

चीन के साथ संबंध विच्छेद कर लेने की मांग की।[57] उन्होंने कहा "या तो संकल्प शक्ति करो या चीन के साथ समझौता करो। .... समझौता होने की एक ही गुंजाइश है कि तिव्वत का मामला हल हो जाये। तिव्वत का मामला हल हुये विना समझौता असंभव है।"[58]

तिब्बत का मामला :

तिव्वत ऐशिया महाद्वीप के अन्तर्गत आता है जो एक लामाओं का देश है। परन्तु चीन उस पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपना अधिकार जताता रहता है तिव्वत की राजधानी ल्हासा है। जिसकी अपनी एक संस्कृति और सभ्यता है। डा0 लोहिया ने तिव्वती मामले पर कई प्रकार के वक्तव्य और विचारों को समय-समय पर उदलित एवं अन्दोलित करने का प्रयास किया।

तिव्वत के सवाल पर वोलते हुये अपने लोकसभा के प्रथम भाषण में ही लोहिया ने कहा: "तिव्वत की शिशु हत्या चीन ने की थी उसे स्वीकार करके प्रधानमंत्री ने बड़ी भूल की।"[59] लोहिया ने लोकसभा में तिब्बत के विस्थापितों के पुनर्वास के बारे में और संयुक्त राष्ट्रसंघ में तिब्बत का मामला उठाये जाने के बारे में 22 मई, 1967 को प्रश्न पूछे, जिनके उत्तर लिखित में दिये गये। सरकार ने बताया कि तिब्बत का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाने का "फिलहाल, ऐसा कोई प्रस्ताव नही है।"[60] लेकिन लोहिया के प्रयासों की बदोलत विदेश मंत्री श्री चागला ने तिब्बत के राजकीय अधिकारों का मानला जिनको मौलिक अधिकार, बुनियादी हक या शहरी हक कहते हैं, संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाना स्वीकार किया- लोहिया ने इस बात पर खुशी जाहिर की। 14 जून, 1967 को अपने स्थगन प्रस्ताव पर बोलते हुये मधुलिमये ने बताया कि 1947 में दिल्ली में हुये एशियाई सम्मेलन में तिब्बत एक स्वतंत्र देश की हैसियत से सम्मिलित

हुआ था, तब फिर क्या वजह है कि 1946-47 में उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश देने के लिए सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया और फिर एक डेढ़ साल के भीतर ही अपनी नीति में परिवर्तन कर लिया।

तिब्बत के मसले पर सबसे जीवंत बहस 14 जुलाई, 1967 को हुई, जब लोकसभा ने ''सदन की राय में दलाईलामा को तिब्बत की विस्थापित सरकार का मुख्य मानकर भारत सरकार, तिब्बत को कम्युनिस्ट चीन के उपनिवेशक शासन से मुक्त करा कर, उसे आजाद कराने के लिये हर प्रकार की सहायता करें; प्रस्ताव पर विचार किया। प्रस्ताव के समर्थन में बोलते हुये लोहिया ने ऐतिहासिक दृष्टि, अन्तर्राष्ट्रीयता के हिसाब से आजाद तिब्बत और या राष्ट्रीयता के हिसाब से कैलाश मानसरोवर।'' लोहिया ने भारत चीन के बीच मैकमोहन रेखा को कभी स्वीकार नहीं किया था। उनकी मान्यता थी कि भारत और आजाद तिब्बत की रेखा मैकमोहन रेखा हो सकती है लेकिन चीन के साथ मैकमोहन रेखा कभी नहीं हो सकती हैं। अतः उन्होंने कहाः ''या तो स्वतन्त्र तिब्बत अन्यथा चीन और भारत की सीमा कैलाश मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र ही हो सकती है।''

लोहिया ने आशा प्रगट की चीनी लोगों की हजार कोशिशों के बावजूद तिब्बत की जनता उठेगी और आजाद होगी।

विश्व की समस्यों और पाकिस्तान के बारे में हिन्दुस्तांन सरकार की कमजोरी का बड़ा कारण भी एक अन्दरूनी आर्थिक नीति की कमी है। गरीबी खत्म करने का एक कार्यक्रम अगर हिन्दुस्तान के अन्दर तेजी से चलाया जाये तो पाकिस्तान में फिर से हिन्दुस्तान से मिलने की इच्छा पैदा होगीं, और हिन्दुस्तान को दुनिया का आदर और सत्कार मिलेगा। अगर कुछ हिन्दुओं की समझमें और

कोई दलील न आये तो उन्हें जल्द से जल्द ये बात समझा देनी चाहिये की पाकिस्तान के विरोध के लिये जरूरी है कि वह मुसलमानों का दोस्त है उसी तरह जो मुसलमानों का विरोधी है। वह जरूरी तौर पर पाकिस्तान का दोस्त व ऐजेन्ट है मुसलमानों का विरोध करना और उन्हें दवाना दो राष्ट्रों का सिद्धान्त का समर्थन करना है। और इसलिये पाकिस्तान को इससे ताकत मिलती है। इसके अलावा सम्प्रदायिक दंगों कराने वालों के खिलाफ सरकार को तेजी और सख्त से सख्त कार्यवाही करनी चाहिए।

हिन्दुस्तान के लोग ऐसी कार्यवाही का स्वागत करेगें अगर उन्हें मालूम हो जाये की यह पाकिस्तान के प्रति देश की व्यापक नीति का एक हिस्सा है।

भारत पाक संबंध : भारत पाक महासंघ

लोहिया भारत विभाजन के सख्त विरोधी थे। लेकिन एक वार पाकिस्तान वन जाने के वाद उनकी इच्छा दोनों देशों के बीच परस्पर भाईचारे के प्रगाढ़ संवंधों की स्थापना करवाने की थी। पाकिस्तान के संबंध में लोहिया एक समग्र नीति के अपनाये जाने के पक्षधर थे। दिनांक 11 अप्रैल, 1964 को विदेश मंत्रालय की अनुदान मांगों पर बहस में बोलते हुये उन्होंने कहा- "हिन्दुस्तान पाकिस्तान को इस तरह रहना चाहिए जैसे दो शरीर एक दिल या दो जीभ और एक दिमांग।" पाकिस्तान के गृहमंत्री हवीबुल्ला खां का वक्तव्य उद्धृत करते हुये उन्होंने वताया कि "वह नहीं चाहते कि हिन्द और पाकिस्तान दो विभिन्न देश विभिन्न लोगों के हिसाब से खड़े रहें, लेकिन एक ही देश और एक ही लोगों के दो हिस्सों की तरह रहें।"

कश्मीर समेत भारत पाकिस्तान के बीच की सभी समस्याओं का

हल लोहिया की नजरों में हिन्द पाक महासंघ के निर्माण हो जाने में निहित है, अन्यथा नहीं। 11 सितम्बर 64 को धारा 370 के निलंबन के प्रस्ताव पर लोकसभा में बोलते हुये उन्होंने कहा- ''एक तरफ जड़ बन जायें कि कश्मीर किसी हालत में नहीं छोड़ेगें और दूसरी तरफ जड़ बन जायें कि हिन्द पाक का रिश्ता सुधारने हम कश्मीर को छोड़ने तैयार है। लचीला दिमाग बनाइये। लचीला दिमाग एक ही हो सकता है कि हिन्द पाक का महासंघ बने तभी यह मसला हल हो सकता है।''

हिन्द पाक संबंधों की जटिलता और कभी न हल हो सकने वाली प्रतीत होती कश्मीर समस्या के परिप्रेक्ष्य में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों ओर के बुद्धिजीवी विचारक लोहिया के हिन्द पाक महासंघ के सुझाव की ओर ध्यान देने पर मजबूर हो रहे हैं। भारत के प्रसिद्ध पत्रकार निखिल चक्रवर्ती ने टाइम्स आफ इण्डिया में प्रकाशित अपने लेख में सुझाव को अपना हार्दिक समर्थन देते हुये सहमति प्रगट की है। हमारी राय में भी समस्या का एकमात्र हल यह दिखाई देता है।

पाकिस्तानी आक्रमण :

किसी भी तरह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जोड़ने का सिलसिला शुरू करना होगा। मैं यह मान कर नहीं चलता कि जब हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा एक बार हो चुका है। वह हमेशा के लिये हुआ हैं किसी भी भले आदमी को यह बात माननी नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारों का ये धंधा हो गया है कि एक दूसरे की सरकार को खराब कहे और दोनों ही सरकारे अपने अपने मुल्कों के प्रति घृणा का प्रचार व प्रसार करती रहें। दोनों सरकारों के हाथ में इस वक्त बहुत खतरनाक हथियार है। लेकिन जनता अगर चाहे तो

मामला बदल सकता है। हिन्दुस्तान पाकिस्तान का मामला अगर सरकारों की तरफ देखें तो सचमुच बहुत बिगड़ा हुआ है। इसमें कोई शक नहीं लेकिन ऐसी सूरत में भी पाकिस्तान हिन्दुस्तान के महासंघ की बात कहना चाहूँगा। यह विचार एक देश तो नहीं लेकिन दोनों कम से कम कुछ मामलों में शुरूवात करें ऐसे की वह निभ जाये तो अच्छा और न निभे तो और कोई रास्ता देखा जाये सब मामलों में न सही लेकिन नागरिकता के मामले के और अगर हो सके तो थोड़ा बहुत विदेशनीति के मामलों में थोड़ा बहुत पलटन के मामले में एक महासंघ की बातचीत शुरू हो।

पाकिस्तान ने 1 सितम्बर, 65 को भारत पर बड़े पैमाने पर सशस्त्र हाक्रमण कर दिया। आक्रमणकारी को उचित सबक सिखाने के लिये लोहिया ने लोकसभा में लगातार सरकार को लाहौर पर शीघ्र कब्जा कर लेने के लिये उकसाया। उनके इस रवैये का मूल कारण था- वो चाहते थे कि चीन और पाकिस्तान के पलटनी घमंड को तोड़ा जाये ताकि उनके दिमांग ठिकाने पर आ सके। 17 सितंबर, 65 को प्रकाशवीर शास्त्री के संविएंान संशोधन के प्रस्ताव पर बोलते हुये उन्होंने कहा- भारत पाक के मामले में तो हमें बज्र से भी कठोर होना चाहिए लेकिन हिन्दु मुसलमान के मामले में फूल से भी ज्यादा मुलायम होना चाहिए।'' 24 सितंबर, 65 को भगवत झा आजाद के युद्ध विराम और भारत का राष्ट्रमंडल छोड़ने संबंधी प्रस्ताव पर बोलते हुये उन्होंने पाकिस्तान के अगले हमले की आशंका से सावधान रहने की सलाह दी और कहा- ''पाकिस्तान का पलटनी घमंड, जिसको मैं समझता हूँ। धक्का लगा है, चूर नहीं हुआ, तो पाकिस्तान फिर से हमला करने की कोशिश करेगा।'' युद्ध के दौरान लोहिया लोकसभा में हिन्द पाक रिश्ते के पूरे मसले पर और हिन्दुस्तान में हिन्दु मुसलमान के रिश्तों पर

बहस चाहते थे, ताकि पाकिस्तान की सेना और जनता पर असर पड़े और वहां बगावत हो। लेकिन लोहिया की यह इच्छा पूरी न हो सकी जिसका दुख उन्होंने इन शब्दों मे प्रगट किया- "आप जानते हैं यह एक अद्‌भुत लोकसभा है। एक लड़ाई चल रही है--- लड़ाई शायद खत्म भी होने वाली है, लेकिन हिन्दुस्तान की लोकसभा इस बारे में कुछ नहीं बोल पायी है।"

तासकंद में राष्ट्रपति अयूब खाँ के साथ प्रस्तावित भेंट पर प्रएंानमंत्री शास्त्री के लोकसभा में दिये बयान पर लोहिया ने अमरीका एवं पाकिस्तान के राष्ट्रपति और रूस के प्रधानमंत्री से कहा "कि जब कश्मीर के ऊपर अकेले कोई समझौता संभव नहीं, बल्कि दोनों देशों का किसी न किसी प्रकार संघ, चाहे एक लचीला महासंघ। इसके अलावा कोई और रास्ता नहीं रह जाता है- इसका उल्टा फिर जंग होता है।"

इसके बाद से घटित सारी घटनायें लोहिया के कथनों की सच्चाई प्रगट करती है।

रूस - अमरीका से संबंध :

डा0 लोहिया ने हमेशा सोवियत रूस को अपना केन्द्र बिन्दु माना जिसमें भारत एक लोकतंत्र को मानने वाला और रूस कम्यूनिस्ट को फिर भी आपस के दोनों में समन्वय लाने का प्रयास किया। दोनों की विचार धारायें विश्व और मानवता के हित में हैं, क्योंकि दोनों देश चाहते हैं, कि देश में अमन चैन और शान्ति रहे न ही किसी प्रकार की द्वेष और ईर्ष्या बल्कि सभी मिल-जुल कर मानवता की सेवा करें ये लोहिया का मूल मन्त्र है। जो भारत और रूस को आपस में जोड़ता है।

लोहिया रूस और अमरीका दोनों देशों के साथ भारत के अच्छे संबंधों के हिमायती तो थे ही, लेकिन इन दोनों देशों के बीच भी आपस में अच्छे संबंध कायम हो ऐसा चाहते थे। ताकि दोनों मिलकर दुनिया में गरीबी मिटाने के कार्यक्रम में आपस में सहयोग कर सकें। लोहिया ने अपनी इस भावना की अभिव्यक्ति लोकसभा में कई अवसरों पर की है। 20 मई, 1964 को एक अल्पसूचना प्रश्न के माध्यम से लोहिया ने पूछा- "क्या मैं जान सकता हूँ कि हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों ने श्री टैलबैट और अमरीका के दूसरे प्रतिनिधियों से बातचीत की, दुनिया से गरीबी मिटाने के लिये कार्यक्रम पर, कच्चे माल और पक्के माल के व्यापारी की शर्तों पर और अमरोका के राष्ट्रपति और रूस के प्रधानमंत्री के शिखर सम्मेलन की इस संबंध में बात की, यदि नहीं तो क्यों नहीं। लेकिन सरकार के पास इतनी ऊँची बात झेलने की न इच्छा थी न शक्ति। 11 अप्रैल, 64 को विदेश मंत्रालय की अनुदान मांग पर बहस के दौरान लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की; उत्पादन, दाम, हथियार, हुनर और जमीन की पांच असमानताओं का उल्लेख करते हुये कहा कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति का लक्ष्य इन्हें संसार के सामने लाना और समाप्त करना होना चाहिए। 28 सितम्बर, 64 को वेदेश नीति पर हुई बहस में बोलते हुये उन्होंने फिर रूस अमरीका के बीच सहयोग की बात उठाई उन्होंने कहा- 'यहाँ पर एक ही बात ज्यादा उठती है कि किस गुट में जायें रूस के गुट में या कि अमेरीका के गुट में।--- सह अस्तित्व के साथ सामीप्य के सिद्धांत को भी जोड़ी, यानि रूस और अमरीका को नजदीक लाने की कोशिश करो ताकि वे एक-दूसरे के गुण सीखें और एक-दूसरे के साथ दुनिया को सुधारने में सहयोग करें।" उन्होंने मांग की कि दुनिया से गरीबी मिटाने के लिये रूस और अमरीका का शिखर सम्मेलन होना चाहिए।

दिनांक 9 मई, 1966 को लोहिया ने संयुक्त राज्य अमरीका के केन्द्रीय गुप्त वार्ता अभिकरण द्वारा भारत की अणु क्षमता के विषय में जासूसी किये जाने के समाचारों पर एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव द्वारा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रस्ताव पर हुये सवाल जवाब में लोहिया और उनके साथी मधुलिमये ने अकादमिक एवं कूटनीतिक संस्थाओं के द्वारा अमरीका द्वारा सी0आई0ए0 के माध्यम से जारी जासूसी गतिविधियों की ओर सरकार को आगाह करते हुये सावधान और सतर्क रहने का आग्रह किया।

पश्चिमी एशिया :

दिनांक 25 मई, 1967 को पश्चिम एशिया की स्थिति पर विदेशमंत्री श्री चागला ने लोकसभा में एक वक्तव्य दिया, वक्तव्य पर स्पष्टीकरण पूछते हुये लोहिया के साथी मधुलिमये ने सदन को याद दिलाया कि 1965 में स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण का सबसे ज्यादा समर्थन उनकी समाजवादी पार्टी ने किया था। लेकिन उन्होंने खेद व्यक्त किया कि भारत पर चीनी एवं पाकिस्तानी आक्रमण के समय तथाकथित निरपेक्षता की नीति चलाने वाले सभी देशों ने आक्रान्त देश का साथ नहीं दिया। यह हमारी विदेश नीति का नतीजा है। दूसरे उन्होंने पूर्व और पश्चिमी जर्मनी, उत्तर और दक्षिण कोरिया, भारत और पाकिस्तान सरीखे इजरायल और अरब देशों के बीच, यदि दुनिया में तनाव का अन्त करना है तो महासंघ बनाने का सुझाव दिया। लोहिया ने अपने साथी के सवालों का पुरजोर समर्थन करते हुये, अध्यक्ष महोदय से, सरकार द्वारा जवाब दिलाने का अनुरोध किया। उन्होंने आगे कहा- ''हमारी जो नीति अरब और इजरायल के संबंध में है उसके चार तत्व हैं। एक यह कि अरब राज्यों से प्रेम, दूसरे अरब जातियों से प्रेम, तीसरे यहूदी जाति से प्रेम और चौथे, इजरायल राज्य के अस्तित्व का स्वीकार। ----

इन चार तत्वों को साथ लेकर आप चलेंगे तो बढ़िया नीति चला पायेंगे।''

दिनांक 6 जून, 1967 को पश्चिमी एशिया की स्थिति पर प्रधानमंत्री ने सदन में वक्तव्य दिया। लोहिया ने इस अवसर पर स्वेज नहर को राष्ट्रीयकरण करने के लिये मिश्र के राष्ट्रपति श्री नासिर की तारीफ की लेकिन वहीं उन्होंने इजरायल के नागरिकों की संकल्प शक्ति की भी भरपूर प्रशंसा की।169 इसी प्रसंग में एक भेंट में लोहिया ने बताया- ''स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण की बात सबसे पहले राजदूत के साथ अपनी बातचीत में।''170 इसी का स्मरण करते हुये उन्होंने सदन में भी बताया- ''लम्बा किस्सा है मैंने एक बार कोशिश की थी, जब मैं जवान था कि इजरायल और मिश्र की दोस्ती करवायी जाये। लेकिन जो सामने बैंठे हैं, उनके पूर्वजों ने उसको पसंद नहीं किया।'' तभी उन्होंने व्यक्त किया।'' अब समय है कि सब लोग ठंडे होकर अरब इजरायल महासंघ की संभावनाओं की खोज करें। हमारी सदी के इस सबसे बड़े पाप, पुराने देशों के स्वतंत्रता प्राप्त करने के समय उनके विभाजन की किसी तरह खत्म करना होगा।'' लोहिया के विचार काविले गौर हैं।

सामान्य विदेश नीति : गुट निरपेक्षता :

डा0 लोहिया की विदेश नीति गांधी और नेहरू से अलग थी उनकी विदेश नीति में पारगम्यता और पारदर्शिता थी वे सामाजिक और आर्थिक चिंतन करते थे कि दुनिया में समस्त देश जो गुट निरपेक्षता से जुड़े हुये है। वे सब मिलकर एक हो और सारे विश्व को एक परिवार की तरह देखें। जिससे विश्व में समस्त राष्ट्र अपने आपको गतिशील की श्रेणी में रख सकें। लोहिया का मुख्य उद्देश्य विश्व विकास नीति की स्थापना करना और आर्थिक दृष्टि से उसके अधिक से अधिक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक बिन्दुओं के लिये उसको

व्यापक बनाना। जिस तरह से हिन्दुस्तान की विदेशनीति सरकार द्वारा चलाई जा रही थी, लोहिया उससे संतुष्ट नहीं थे। उनके अनुसार चीनी, आक्रमण के समय विदेश नीति का खोखलापन प्रगट होकर सामने आ गया; इससे निकले नतीजों की पुष्टि बाद के पाकिस्तानी आक्रमण ने भी कर दी। तभी 11 अप्रैल,1964 को विदेश मंत्रालय की अनुदान मांग पर हुई बहस में हिस्सा लेते हुये लोहिया ने कहा- ''बिनलगांव के हरजाई देश है। इस नीति पर हमें भयंकर रूप से सोचना पड़ेगा। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल, अफ्रीकाई देशों के ऊपर सहारा और बिनलगांव के ऐसा समझना, यह तीन हमारे लिये बहुत खराब चीजें हैं।''

25 सितम्बर, 1964 को अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विदेश मंत्री के प्रस्ताव पर लोहिया ने अपना स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये प्रस्तावित किया। ''यह सदन वर्तमान वैदेशिक स्थिति और भारत सरकार की तत्संबंएंी नीतियों पर विचार करने के बाद, निश्चय करता है कि विदेश नीति और उसके सिद्धान्त और अमल दोनों पहलुओं की असफलता और निकम्मेपन के कारणों की जाँच वैदेशिक मंत्रालय कराये और कि पूरे विश्व के बारे में विस्तृत जाँच होनी चाहिए और महत्वपूर्ण देशों के साथ तनावपूर्ण रिश्तों की भी अलग-अलग जाँच सदन के सामने पेश की जाए।'' लोहिया का उक्त प्रस्ताव यदि स्वीकार हो जाता तो देश का भला ही होता- विदेश नीति को एक नई दिशा प्राप्त हो जाती। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

14 सितंबर, 1965 को, लोहिया के निष्कर्षों को स्वर देते हुये उनके साथी रामसेवक यादव ने लोकसभा में स्पष्ट किया- ''निरपेक्ष और अफ्रीकाई देशों पर भारतीय विदेश नीति का अब तक अधिक समय गया, परन्तु इसका कोई नतीजा नहीं निकला जैसा कि चीन के हमले ओर भारत पाक युद्ध से जाहिर है या जैसा कि जकार्ता में हुआ है। इसलिए क्या अब हमारी विदेशनीति का कुछ

समय रूस और अमरीका के उपर भी लगाया जायेगा।''

लोहिया ने निरपेक्षता का मतलब समझते हुये, चीन के विस्तार को रोकने के लिये प्रशांत क्षेत्र में एकता के संकल्प पर बोलते हुये लोकसभा में कहा कि ''निरपेक्षता का मतलब है कि अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करके जो कुछ प्रश्न सामने आयें उसके लिये राय बनाना। 'लेकिन किस तरह से यह निरपेक्षता की नीति चली है, इसको समझाते हुये उन्होंने 2 अगस्त, 1966 को सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुये कहाः ''गंगा नये- गंगा नाथ जमना गये -जमना नाथ। वाशिंगटन गये तो अमरीका मित्र, मास्को गये तो रूस मित्र।--- यह है इनकी निरपेक्षता की नीति। ''उन्होंने आगे कहा कि अगर निरपेक्षता का मतलब असलियत से हट कर मन को भुलावा देना हो तो ऐसी निरपेक्षता को उखाड़कर फेंक देना चाहिए। सरकार की खंडित विदेशनीति का जिक्र करते हुये उन्होंने पश्चिमी एशिया की स्थिति पर प्रधानमंत्री के द्वारा दिये बयान पर बोलते हुये कहा कि- ''यह सरकार शरीर के हिसाब अमरीका की हो गई है और मनके हिसाब से रूस की।'' इसके कारणों की जाँच पड़ताल करते हुये लोहिया ने चीन में भारतीय कूटनीतिक को संरक्षण देने में सरकार की असफलता पर स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये, दिनांक 14 अगस्त, 1967 को लोकसभा में कहा- ''मैं अनुमान लगा सकता हूँ कि नौकरशाही का एक टुकड़ा, जिसने पिछले बीस-तीस वर्षों में कुछ नहीं सीखा, जिसको अन्तर्राष्ट्रीय खेल छोकरा कहा जा सकता है। ऐसे लोग विदेश विभाग में हैं जिन्होंने यह फैसला कर रखा है कि यहाँ एक बाजी मार लो और एक बाजी वहाँ खेल लो। इस तरह की विदेश नीति चल नहीं सकेगी।'' विदेश मंत्रालय के बजट अनुदान पर 17 जुलाई, 1967 को हुई बहस में बोलते हुये लोहिया ने असंतोष प्रगट करते हुये कहा कि विदेशी मामलों पर बहस

सामयिकता के दलदल में फंसकर, तात्कालीन घटनाओं जैसे अरब इजरायल युद्ध, चीन का अणु विस्फोट, वियतनाम आदि पर सिमट कर रह जाती है। व्यापक नीति के सवाल को अपनी ओर से उठाते हुये उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान की विदेशी नीति को दुनिया में निरस्त्रीकरण के प्रस्ताव भी जोड़ना चाहिए। उन्होंने कहा- "दुनिया एक रोग में फंसी है- इसके दो पहलु हैं अफ्रीका की दरिद्रता और दूसरा पहलू है- यूरोप और अमरीका का अस्त्र। अस्त्र और दरिद्रता- अगर इन दोनों से लड़ेगें, तव जाकर नयी दुनिया बसा पाओगे।" मेरे विचार से हिन्दुस्तान की विदेश नीति का ही नहीं वल्कि दुनिया के सभी देशों की विदेश नीति का लक्ष्य यदि आज अस्त्र से, दरिद्रता से निपटने का हो तो सही अर्थों में गांधी और लोहिया के सपनों की दुनिया का निर्माण संभव हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. लोकसभा वादविवाद, दिC 21.08.63, कालम 1830 से 1859
2. वही, एवं लोकसभा में लोहिया, भाग 1, राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971, 222
3. वही
4. लोकसभा वाद विवाद दि0 22.08.63 कालम 2204-5
5. वही
6. मधुलिमये, मुशिंगज आन करेन्ट प्राब्लम एण्ड पास्ट इवेन्टस, पृ0 180
7. लोकसभा में लोहिया, भाग-1, पृ0 47
8. वही
9. सम्पदा बम्बई मई 1973, पृ0 229
10. लोकसभा वाद विवाद दि0 06.09.63 कालम 4876
11. वही, कालम 4875
12. डॉ0 यतीन्द्रनाथ शर्मा, डा0 लोहिया : अर्थ दर्शन, पृ0 180
13. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 17 फरवरी, 65, लोकसभा में लोहिया, भाग-3, 1972, पृ0 15
14. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 20 फरवरी, 64, लोकसभा में लोहिया, भाग-3, 1972, पृ0 38
15. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 2 मार्च, 64 खाद्यान्न समस्या पर बहस : लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृ0 72
16. लोहिया का लोकसभा अध्यक्ष के नाम पत्र, दिनांक 15-9-64 : उद्घृत : लोकसभा में लोहिया, भाग 4, पृ0 240

17. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 17 फरवरी, 64 लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृ0 16
18. लोकसभा वाद विवाद दि0 17 फरवरी, 64 लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृ0 16
19. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 19 अप्रैल, 66, चीनी का उत्पादन (मौखिक उत्तर) लोकसभा में लोहिया, भाग-9, पृ0 104
20. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 26 जुलाई, 66, कृषि वस्तुओं की कीमतत लिखित उत्तर : लोकसभा में लोहिया, भाग-10, पृ048
21. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 9 अगस्त, 66, लोकसभा में लोहिया, भाग-11, पृ0-20.
22. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 10 मार्च 64, लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृ0 101
23. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 4 मार्च 65, प्रति व्यक्ति आयच पर अधिकतम सीमा, लोकसभा में लोहिया, भाग-5, पृ0 41.
24. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 24 फरवरी, 66, लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृ0 170
25. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 24 फरवरी, 67, कालम 17256
26. वही, कालम 17255
27. वही, कालम 17257
28. वही, कालम 17262
29. वही, कालम 17267-68
30. वही
31. लोकसभा में लोहिया, भाग-5 प्रस्तावना से

32. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 9 दिसम्बर, 67, लोकसभा में लोहिया, भाग-2, पृ0 73
33. वही, पृ0 77
34. लोकसभा वाद विवाद 19 नवम्बर, 63
35. लोकसभा वाद विवाद 6 सितम्बर, 63, लोकसभा में लोहिया, भाग-1, पृ0 69
36. इन्दुमति केलकर, लोहिया, पृ0 474
37. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 2 मार्च 64 लोकसभा में लोहिया भाग 3, पृ0 68
38. लोकसभा वाद विवाद दि0 25 सितम्बर, 64, लोकसभा में लोहिया भाग-4, पृ0 85
39. वही, पृ0 86
40. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 11 अप्रैल, 64 लोकसभा में लोहिया भाग 3, पृ0188
41. लोकसभा वाद विवाद 7 सितम्बर 64, लोकसभा में लोहिया, भाग4, पृ0 7
42. वही, पृ0 38
43. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 28 नवम्बर, 63 लोकसभा में लोहिया भाग 2, पृ0 44
44. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 26 जुलाई, 66 लोकसभा में लोहिया भाग 10, पृ0 35-36
45. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 9 अगस्त, 66 लोकसभा में लोहिया भाग 11, पृ0 33
46. वही पृ0 41

47. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 2 सितम्बर 66 लोकसभा में लोहिया भाग 11, पृ0 245

48. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 5, 6 एवं 7 सितम्बर, 66, लोकसभा में लोहिया भाग 11, पृ0 253, 265 एवं 267

49. वही, पृ0 269

50. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 19 दिसम्बर, 63 कालम 5780

51. लोहिया, समदृष्टि पृ0 31

52. लोकसभा वाद विवाद, 31 मार्च 65, लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 143

53. लोकसभा वाद विवाद, दिनांक 22 अप्रैल, 66, लोकसभा में लोहिया, भाग 8, पृ0 141

54. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 25 जुलाई, 66, लोकसभा में लोहिया, भाग 10, पृ0 2 एवं 10

55. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 20 सितम्बर, 65, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 39

56. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 13 जून, 67, लोकसभा में लोहिया, भाग 14 पृ0 211

57. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 13 जून, 67, लोकसभा में लोहिया, भाग 14 पृ0 224

58. वही पृ0 228

59. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 21 अगस्तर, 63 लोकसभा में लोहिया, भाग 1, पृ0 224

60. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 22 मई, 67 लोकसभा में लोहिया, भाग 14 पृ013

अध्याय – षष्ठम

संसदीय लोकतंत्र के विकास में डॉ0 राममनोहर लोहिया का योगदान

संसदीय लोकतंत्र के विकास में डा0 लोहिया का योगदान

डा0 राममनोहर लोहिया संसदीय लोकतंत्र के विकास में अपनी मुख्य भूमिका रखते थे जिन्होंने हमेशा अपने जीवन काल में विभिन्न योगदान और प्रभावशीलता को व्यापक रूप से से माना उनके विचारों में लोकतंत्र एक समतावादी पराकाष्ठा पर केन्द्रभूत था जिसमें विभिन्न प्रकार की संसदीय आचरण मुद्रित हैं। उन्होंने हमेशा संसद को एक पवित्र स्थल माना जिसमें कई प्रकार की आलोचनायें और समालोचनायें भी समाहित थी उसके साथ-साथ हिन्दुस्तान का लोकतंत्र की कई प्रकार की कसौटी और चिरस्तात्वत भी था।

(अ) योगदान पर आलोचनात्मक दृष्टि :

हिन्दुस्तान की लोकसभा डा0 लोहिया के प्रवेश के पूर्व कमोवेश एक उच्च स्तर पर ऊंचे लोगों की वाद-विवाद सभा के मानिंद थी। अक्सर सरकारी कामकाज निपटाने, आपस में हंसी विनोद करने और विदेश नीति, कंपनी आदि के मामलों पर जिसका संबंध अधिकतर देश के धनी तबके से होता था, बहुत मुहावसा होता रहता था। सदस्यगण, जो स्वयं उच्च वर्ग से होते थे, आपसी बातचीत, व्यवहार, भाषण आदि में एक उच्च क्लब के अच्छे सदस्यों की तरह सारे नियम कायदे के पालन करने में शिष्टाचार से ग्रस्त रहते थे। कमी थी तो बस हिन्दुस्तान के आम आवाम की, उसके दुख और तकलीफ पर सोच विचार करने के लिये फुरसत और इच्छा शक्ति की। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण चौथी लोकसभा के सामने प्रस्तुत

हुये वादों के अध्ययन से मिलता है, जिसमें वर्गीय स्वार्थ के आधार पर यह प्रगट हुआ कि अधिकतम धनी वर्ग के स्वार्थ पर, 28 प्रतिशत वाद प्रस्तुत हुये, निर्धन वर्ग पर मात्र 13.20 प्रतिशत।[1]

यह आलम जब चौथी लोकसभा का है, जिसमें लोहिया की पार्टी संयुक्त समाजवादी दल के सदस्यों ने लगातार कमजोर तबकों के हित में वाद प्रस्तुत किये हैं, तो फिर इसके पूर्व की लोकसभाओं के बारे में निष्कर्ष स्पष्ट हो जाता है। तभी अध्ययनकर्ता को लिखना पड़ा- ''लोकसभा की कार्यवाही अभिजात तथा धनी वर्ग पर निर्धन वर्ग की अपेक्षा अधिक रूचि ली जाती है।[2] इस पृष्ठभूमि में लोहिया का लोकसभा में प्रवेश एक ताजा हवा के झोंके की तरह हुआ, क्योंकि उन्होंने अपने कार्यों से लोकसभा में उन लोगों की बात पहुंचाई, जिनके लिये लोकसभा बनाई गई है। मेरे इस कथन के प्रमाण के लिये इसके पूर्व के अध्याय के पन्ने पलट लेना पर्याप्त है। देश की सुरक्षा, उसका घटता क्षेत्रफल, भाषा, भोजन, भजन, वशन, भवन, देश के लोग उनके नागरिक अधिकार, धारा 107 और 109 की ज्यादतियां, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, देश की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक समस्यायें समाधान, गैरबराबरी, उद्योग, खेती, किसान, सिंचाई, कारखाने, मजदूर, लोकतंत्र और विदेशनीति निरस्त्रीकरण के साथ निरद्रीकरण, गोरे और रंगीन कुल मिलाकर दुनिया भर के गरीव, छोटे और आम आदमी की बात को लोहिया ने लोकसभा में उठाया। ऐसा हिन्दुस्तान की लोकसभा में पहले कभी नहीं हुआ था। हरिजन, शूद्र, आदिवासी, औरत, मुसलमान और पिछड़ी जातियों को महसूस हुआ कि पहली बार लोकसभा में उनके बारे में, उनकी समस्याओं के बारे में विचार किया जा रहा है। लोहिया की वाणी उन्हीं की वाणी थी। यदि हम कहें कि लोकसभा के बारे में हिन्दुस्तान की आम जनता ने जाना ही लोहिया के वहां पहुंच जाने के बाद से, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्री मधुलिमये ने लिखा है- प्रारम्भिक आम चुनावों में लोकसभा के उम्मीदवारों

का नाम तक मतदाताओं को ज्ञात नहीं रहता था। लोकसभा के बारे में जागृति और आस्था डा0 लोहिया के लोकसभा में प्रवेश के बाद ही होने लगी।[3] लोहिया सड़क के आदमी थे, लेकिन अपने कार्यों द्वारा वे संसद को सड़क पर और छोटे, गरीब, शोषित आदमी के पास ले गये और संसद में इन सबको ले गये। हिन्दुस्तान की लोकसभा को उन्होंने उसके सही मालिक, हिन्दुस्तान की जनता को समर्पित कर दिया।

लोकसभा में लोहिया के प्रवेश के पूर्व विरोधी दलों की कोई सार्थक भूमिका नहीं थी, जो एक स्वस्थ लोकतंत्र के विकास के लिये आवश्यक थी। इसके प्रमाण के लिये दो तथ्य ही काफी हैं, पहला आम जनता लोकसभा में विरोधीदल के नेता के रूप में पहली बार डा0 लोहिया के नाम से ही परिचित हुई, दूसरा यह कि पहली दो लोकसभाओं और तीसरी लोकसभा में भी अगस्त 63 के पहले सरकार के खिलाफ एक भी अविश्वास प्रस्ताव पर बहस नहीं हो पाई थी। लोहिया के शब्दों में ''मिली जुली कुश्ती'' सत्ताधारी और विरोधी पार्टी में चलती रहती थी। लोकसभा में विरोधी पार्टी की भूमिका को पहली बार वास्तविक एवं ठोस स्वरूप प्रदान करने में लोहिया का योगदान हिन्दुस्तान में संसदीय लोकतंत्र के विकास में अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने स्वयं की पार्टी को तो, संख्या में कम होते हुये भी, एक सशक्त एवं प्रभावी विरोधी दल के रूप में उभारा ही साथ ही साथ अन्य विरोधी पार्टियों के बीच सरकार के खिलाफ तालमेल पैदा कर, लोकसभा में एक मजबूत विरोध पक्ष हो, ऐसा भरपूर प्रयास किया। उनके उन प्रयासों के परिणाम ठोस रूप में चौथी लोकसभा में प्रगट हुये।

लोकसभा को भाषा प्रदान करना :

हिन्दुस्तानी लोकसभा में हिन्दुस्तान की लोक भाषाओं को प्रतिष्ठा दिलाने और सदस्यों द्वारा उन्हें व्यवहार में लाने के लिये प्रेरित करना, लोकसभा में लोहिया के योगदान का स्वर्णिम पृष्ठ है। अन्यथा इसके पूर्व लोकसभा में अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण बहसों का स्वरूप अधिकतर बनावटी होता था और दायरा सीमित। राज्यसभा के सदस्य प्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने, भारतीय भाषाओं और खासतौर पर हिन्दी की सेवा में लोहिया के योगदान की मुक्त कठ से प्रशंसा करते हुये लिखा- "हम सभी हिन्दी प्रेमियों ने संसद में हिन्दी की जितनी सेवा बारह वर्षों में की थी, उतनी सेवा लोहिया साहब ने अपनी सदस्यता के कुछ ही वर्षों में कर दी।[4] लोहिया ने लोकसभा में सारे भाषण हिन्दी में दिये। उन्होंने राजनीति, कूटनीति, कानून और विज्ञान समेत सभी विषयों पर जटिल और पेंचीदा बातों का विश्लेषण अत्यन्त सरल और तत्काल में समझ में आ जाने वाली मनोहर भाषा में किया है। उनके भाषणों को सुनकर उन लोगों का भ्रम दूर हो गया जो यह समझते थे कि हिन्दी में अंग्रेजी का सहारा लिये बिना पेंचीदा बातों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

हिन्दी के अलावा सभी भारतीय भाषाओं का लोकसभा में बराबर सम्मान और प्रयोग हो- लोहिया ने इस दिशा में पहल कर खुद और अपने साथियों के प्रयासों से इसे सम्भव कर दिखाया। इस बारे में 30 मार्च, 1967 को लोकसभा में देश की खाद्य स्थिति के प्रस्ताव पर हुई बहस में अध्यक्ष महोदय को और सदन को भी, श्री जे.एच. पटेल को अपनी मातृभाषा कन्नड़ में भाषण देने के लिये अनुमति प्रदान करने के लिये लोहिया और उनके समाजवादी साथियों, श्री मधुलिमये, श्री यादव एवं फर्नाडीज के प्रयास दृष्टव्य हैं।[5] इस प्रश्न पर सदन में काफी उत्तेजक बहस के बाद आखिर में अध्यक्ष ने श्री जे.एम. पटेल को कन्नड़ में अपना भाषण करने दिया। इस प्रकार लोहिया और उनके साथियों को सफलता प्राप्त हुई। तब से

कोई भी सदस्य अपनी मातृभाषा में लोकसभा में विचार व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र है, वो चाहे तो अपने भाषण का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत कर दे और न चाहे तो न करे, केवल ऐसे भाषण के साथ कार्यवाही वृतान्त में यह उल्लेख होगा कि सदस्य ने हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रूपांतर नहीं दिया।[6]

लोहिया ने हमेशा अपने प्रभाव की व्यापकता और उत्कृष्टता को एक समायामी प्रभुत्व माना तथा संसदीय गरिमा और उसकी भाषा को एक निश्चित रूप दिया जिसका सम्बन्ध हमेशा से समाजवादी और समन्वयवादी रहा क्योंकि उनके विचारों में हमेशा दो प्रकार की भाषा रही संसदीय और गैर संसदीय भाषा असौम्य व तुच्छ मानी जाती है। क्योंकि इसका प्रभाव संसदीय क्रियाकलापों और कार्यप्रणाली पर पड़ता है जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न सांसदों को एक निश्चित दिशा देता है। जिससे कि वह समाज और राष्ट्र को अच्छी दिशा दे सके।

लोहिया की आलोचना : संसदीय भाषा

भाषा को लोकर जहां लोहिया के योगदान की प्रशंसा की जाती है, वहीं कुछ लोग लोकसभा में लोहिया द्वारा प्रयुक्त भाषा और शब्दों के कटु आलोचक भी हैं, लोकसभा में लोहिया के प्रसिद्ध प्रथम भाषण को सुनकर ही सांसद रामसहाय पांडे ने लोहिया पर गंदी और असंस्कारित भाषा बोलने का आरोप लगाया।[7] बाद के अरसे में अध्यक्ष महोदय ने कभी स्वयं के निर्णयानुसार अथवा कि अन्य सदस्यों के आग्रह पर लोहिया के विभिन्न भाषणों के वाक्यांश एवं शब्दों को कार्यवाही के वृतांत से निकलवा दिया। हालांकि लोहिया ने अध्यक्ष की इन कार्यवाही को गलत ठहराते हुये उन्हें पत्र द्वारा अथवा सदन में उल्लेख कर निकाले शब्दों को फिर से कार्यवाही वृतांत में शामिल करने का अनुरोध किया है। ऐसे निकाले गये और निकाले जाने की मांग किये गये शब्दों में खोपड़ी, जहन्नुम और औरत जैसे शब्द शामिल हैं। अध्यक्ष

द्वारा खोपड़ी शब्द को निकाले जाने पर एतराज करते हुये लोकसभा में लोहिया ने 8 मार्च 66 को कहा- ''आपने खोपड़ी शब्द को हटवाकर भाषा पर अन्याय किया है। लोकसभा और अदालतें, ये दो खास जगह हैं जहां पर भाषा मंजा करती हैं।''[8] लोहिया ने आगे अंग्रेजी के शब्दों जैसे हेड, स्कूल, केरे नियम, ब्रेन, मांइड का हवाला देकर कहा कि इनके अर्थ जम गये हैं, उसी तरह हिन्दी में सिर, खोपड़ी, भेजा, मगज, दिमाग और चेतना आदि शब्द है- अतः ऐसे शब्दों को निकालना भाषा पर अन्याय करने के बराबर हैं। असल में लोहिया और समाजवादी सांसदों की भाषा में आम बोलचाल की भाषा के शब्दों की भरमार होती थी, जो अंग्रेजी शब्दों के सुनने के आदी लोगों को अजीब और असंस्कृत लगती थी। मजेदार बात यह थी कि पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस के हिसाव से गो टू हैल कहा जा सकता था, लेकिन ''जहन्नुम में जाओ नहीं। दिनांक 16 मई 66 को अध्यक्ष के नाम लिखे पत्र में लोहिया ने इस आशय के तथ्य का उल्लेख करते हुये- 'जहन्नुम में जाओ' शब्द को वृतांत में वापस लिखवाने की मांग की।[9] इसी तरह लोहिया के अनुसार औरत शब्द न गैर संसदीय है और न अशोभनीय। यह सही भी है क्योंकि स्त्री, नारी, महिला आदि के समानार्थी ही है शब्द औरत, इसमें क्या बुराई है?

इसीलिये लोहिया ने संसदीय भाषा और संसदीय नीयत का मुददा उठाया, उन्होंने कहा- ''संसदीय भाषा नहीं संसदीय नीयत होनी चाहिये। क्योंकि उनके अनुसार भाषा चातुरी के चलते गधा को गधा न कहकर ''वैशाख नंदन'' और ''धैर्यधन'' कहा जा सकता है- अतः संसदीय आचरण के ढोंग से बचने के खातिर सहज स्वाभाविक बोलचाल के शब्द प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिये- गलत नीयत से कहे शब्द फिर वो चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हो गैर संसदीय हो सकते हैं यहां यह बात गौरतलब है कि लोहिया पर गैर संसदीय भाषा का प्रयोग करने के आक्षेप

लगाने वालों ने लोकसभा में ही लोहिया के प्रति सूदखोर का लड़का, सुअर का बच्चा आदि शब्दों का गलत नियत से प्रयोग किया है।[10]

संसदीय आचरण :

संसदीय आचरण एक अपने आपमें उत्कृष्ठता की रूपरेखा का प्रस्तुतीकरण करते हैं। आचरण और गरिमा उसके साथ साथ व्यवहारपरकता के बिन्दुओं पर केन्द्रीभूत होना चाहिये जिससे राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छे और सामान्य आचरण कर सके और मानवीय जनादेशों को हर प्रकार से स्वच्छ और सुन्दर बना सके।

लोकसभा में प्रवेश के चौथे दिन ही जब लोहिया ने प्रधानमंत्री से प्रश्नोत्तर के बीच "प्रधानमंत्री नौकर है, सदन मालिक है" कहकर सनसनी फैला दी, उसके बाद निर्मित उत्तेजक माहौल में प्रधानमंत्री ने भी कहा- "डा0 लोहिया आपसे बाहर हो गये हैं जरा उनको थामने की कोशिश कीजिए। ऐसी बातें कह रहे हैं जो आमतौर पर इस सदन में नहीं कही जाती। उनको आदत नहीं है। नये आदमी आये हैं। आप उन्हें सिखा दीजिये कि यहां कैसे बरताव होता है। लोहिया : मेरी आदत आपको डालनी पड़ेगी।'[11] इसी प्रकार अपनी सरकार के खिलाफ प्रस्तुत प्रथम अविश्वास प्रस्ताव का जवाव देते हुये प्रधानमंत्री जवाहरलाल ने कहा- "मैं लोहिया से सत्रह वर्षों के बाद मिला हूं।" मैं उनसे बेहतर बातों की उम्मीद करता था लोहिया के भाषण का जिक्र करते हुये उन्होंने आगे कहा- उसने बहस को एक बाजार के निम्न स्तर पर ला दिया,[12] लेकिन जैसा कि हमने इस बहस को "तीन आना बनाम पंद्रह आना" को पर्याप्त रूप से पिछले अध्याय में समझा है, उससे यह प्रगट होता है कि अन्य कांग्रेसी सांसदों के साथ प्रधानमंत्री की प्रतिक्रिया भी जिस तरह से लोहिया ने सरकार की पिछली पन्द्रह सालों की- असफलता को उघाड़ दिया था, उसके खिलाफ खीझ से उपजी प्रतिक्रिया है। श्रीयुत श्रीकांत वर्मा ने लोकसभा में

लोहिया के इसी प्रथम भाषण का जिक्र करते हुये लिखा है- "चोनी हमले के बाद स्व0 नेहरू पर यह दूसरा जबर्दस्त हमला था। जिसने राजर्नाति को एक और मोड़ दे दिया।[13]

इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तेजना में आकर लोहिया कभी कभार अपने आपसे बाहर हो जाते थे, शालीनता की सीमा रेखा लेकिन फिर भी मर्यादा के भीतर ही रहते थे। श्री हरिशंकर परसाई के अनुसार- "डॉ0 रामनोहर लोहिया परम बुद्धिमान और चिंतक थे, पर उग्र थे। वे संसद में परपंरायें तोड़ते थे। वे कहते भी थे- इस भद्रता को तोड़ना भी चाहिए। यह हमें कायर बनाती है।[14] नियमों, कायदों की जकड़न जब लोकसभा में उन्हें बाहर जो घटित होता है, उसकी गूंज लोकसभा में न उठा पायें- यह स्थिति असहनीय लगती थी। उन्होंने अध्यक्ष को पत्र लिखकर पूछा- "क्या लोकसभा के नियम और उसका ढंग ऐसे रहेंगे कि समय बीते और बहस न हो। मेरे जैसे आदमी क्या करे? बम्बई हड़ताल पर बोलने का मेरा अधिकार और कर्तव्य है लेकिन क्या करूं।[15]

लोहिया का निलम्बन :

21 दिसम्बर, 64 को मेरे लिये नामुमकिन है कि जब तक आप यहां पर दिये बचनों का पालन नहीं करवाते, इसके अलावा कोई भी बहस यहां- फ़िजूल हो जायेगी" कहते हुये लोहिया ने सदन का कार्य आगे बढ़ाने से रोक दिया, जिसका परिणाम उन्हें सत्र के शेष दिनों के लिये निलंबन के रूप मे भुगतना पड़ा। वस्तुतः लोहिया अपने व्यवहार के लिये दोषी नहीं थे, यह उनके धैर्य की अजीब परीक्षा का प्रसंग था।

लोहिया के अलावा उनकी पार्टी के सभी सदस्य बस्तर गोलीकांड पर बहस की मांग के सिलसिले में 15 दिन के लिये निलंबित किये गये थे। इसी तरह

सूखा भुखमरी, गोलीकांड, आदि तत्कालिक लोक महत्व की बातों पर बहस की मांग किये जाने पर खासतौर पर श्री मनीराम बागडी एवं अन्य किशन पटनायक, मधुलिमये, रामसवेक यादव को निलंवन और सदन से वाहर चले जाने की सजायें भुगतनी पड़ी हैं। इन घटनाओं के पीछे अध्यक्ष का अड़ियल रवैया, मनमाना आचरण और समाजवादी पार्टी के सदस्यों के प्रति पूर्वग्रह ज्यादा जिम्मेदार हैं। जो इन निलंबनों और बाहर चले जाने के आदेशों से संबंधित कार्यवाही वृतांतों के अध्ययन से साफ प्रगट होता है। जिसमें से कुछ एक प्रसंगो का उल्लेख हम इसी प्रबंध में यत्र-तत्र कर चुके हैं। श्री मधुलिमये ने लिखा है- ''श्री हुकुम सिंह के जाने के बाद, न लोहिया और न मैं अनुशासनहीनता और गलत व्यवहार के आधार पर कभी भी निलंबित किये गये। जी हां, एक बार भी नहीं।[16] श्री लिमये का यह कथन हमारे निष्कर्ष का एक बड़ा प्रमाण माना जाना चाहिये। प्रसिद्ध पत्रकार श्री इंदर मल्होत्रा ने लोहिया और उनके साथियों पर आरोप लगाते हुये लिखा है कि उन्हों दिमाग की शक्ति की बजाय फेफड़ों की ताकत का प्रयोग सदन में प्रारम्भ कर दिया।[17] लेकिन श्री इंदर मल्होत्रा ने जिन्होंने यह लेख 1988 में लिखा है, यदि ध्यान से अपने साथी पत्रकारों के सामयिक लेखों को पढ़ा होता, जिन्होंने कि संसदीय प्रतिनिधि के रूप में लोहिया और उनके साथियों के लोकसभा में क्रियकलापों की रिपोर्टिंग की है, तो ऐसा कभी न लिखा होता। नई दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक स्टेटमैन के संसदीय संवाददाता श्री के0के0 शर्मा ने अपने अखबार में 3 अप्रैल, 66 को लिखा- संसद में संयुक्त समाजवादी दल ने जो प्रतिभा प्रदर्शित की है वह उनकी सदस्य संख्या के अनुपात से कहीं ज्यादा है। इस दल के लगभग सभी सदस्य योग्य और उच्चस्तर की बौद्धिक प्रतिभा के धनी हैं जो अपना प्रभाव छोड़ते हैं। डा0 लोहिया की योग्यता तो अच्छी तरह जानी पहचानी है लेकिन उनकी प्रहारक क्षमता में वृद्धि उनके साथियों, खासतौर पर मधुलिमये के सहयोग की बजह से हुई है।[18] सोशलिस्ट सदस्यों के प्रश्न करने

की कला से प्रभावित होकर, साप्ताहिक ब्लिटज के संवाददाता श्री राघवन ने 30 अप्रैल 66 के अंक में उन्हें कीनेस्ट क्वश्चन मास्टर के संबोधन से सम्मानित किया है।

लेकिन इसके बाद भी लोकसभा मे सत्ताधारी पार्टी ने नहीं बल्कि विरोधी दलों में से जनसंघ और कम्युनिस्ट और यहां तक कि प्रजा समाजवादी दल के सदस्यों ने लोकसभा में लोहिया और उनके साथियों पर सस्ती प्रसिद्धि और अखबारों में नाम छपाने के उद्देश्य से रोज कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा करने के आरोप लगाये हैं। इनमें श्री हुकुमचन्द कछवाय, हीरेन मुकर्जी, नाथपाई और हेमबरूआ आदि सदस्य गण शामिल हैं।[19] इस प्रकार के आरोपों का लोकसभा में ही जवाव देते हुये लोहिया ने कहा- जहां तक प्रसिद्धि का सवाल है, कहीं किसी अखबार में मैने नहीं देखा कि हम लोगों ने क्या बात उठायी। हममें और दूसरे उन दलों में, जो अपने आपको विरोधी कहते हैं, फर्क यही है कि वे अपने नाम छपवाने को आकुल रहते हैं जबकि हम अपनी बात छपवाने को आकुल रहते हैं।[20] लोहिया ने चुनौती स्वीकार करते हुये यहां तक कहा- मैं चाहता हूं कि सस्ती प्रसिद्धि के मामले में आप इस सदन की कमेटी बिठा दें। प्रसिद्धि उन्हें मिलती है जो सरकार के साथ मिली कुश्ती करते हैं।[21] असल में साथी विरोधी सदस्यों के आरोप, समाजवादी सदस्यों के जन समस्याओं पर सरकार से सीधे टकराने के हौसले, हिम्मत और क्षमता, उनके संसदीय कौशल, नियमों की जानकारी, घटनाओं की अप-टू-डेट जानकारी और मंत्रियों को, अध्यक्ष को अपने तर्कों द्वारा निरूत्तर कर देने के कौशल प्रदर्शन की वजह से ईर्ष्या और द्वेष के परिणाम है। संख्या में केवल सात होकर भी समाजवादी सदन की कार्यवाहियों में छाये रहते थे, ऐसा केवल रोज हुल्लड़ करने मात्र से नहीं हो सकता था, यदि ऐसा होता तो संख्या में उनसे ज्यादा ताकतवर विरोधी दलों को कौन रोक सकता था। जैसा कि मधुलिमये ने लिखा है- हमने संकल्प लिया था कि

हम उन जन समस्याओं को उठायेंगे जिन्होंने सदन के बाहर लाखों व्यक्तियों को प्रभावित किया है।[22] यही लोहिया का अपने साथियों को आदेश था। लोहिया चाहते थे कि संसद को जनता के दुख और दर्द को आइना बनना चाहिये। अपनी इस उक्ति को उन्होंने अपने आचरण से सार्थक कर दिखाया। व्यक्तिगत द्वेष से प्रेरित होकर, चरित्रहनन के प्रयास करने के आरोप भी लोहिया पर लगाये गये हैं। ऐसा लोकसभा में खासतौर पर लोहिया द्वारा अभी चंद प्यारेलाल कंपनी, धर्म तेजा कांड, रामगढ का सोना आदि मामलों में लिप्त मंत्रीगण और प्रधानमंत्रियों श्री नेहरू और श्रीमती इंदिरा गांधी के खिलाफ सरकारी खर्च पर छपी पुस्तकें की रायल्टी, विदेशी बैंक में खाता, हीरों का हार और मिंककोट जैसे मामलों को उठाये जाने के आधार पर लगाये जाते हैं। इस मसले पर लोहिया द्वारा दी गई सफाई को उद्घृत करने के पूर्व में अपने अध्ययन के आधार पर लिख सकता हूं कि लोहिया द्वारा मंत्रियों के खिलाफ लगाये तमाम आरोप आधारहीन नहीं है, उनकी तथ्यात्मक स्वीकारोक्ति स्वयं सरकार और मंत्रियों ने बहसों के दौरान प्रस्तुत की है। यहां मात्र उनमें से एक का उल्लेख पर्याप्त होगा, प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया कि उन्हें सउदीअरब के शाह ने हीरों का हार 1955 में भेंट किया था और उसे तीन वर्ष के बाद 1958 में सरकारी खजने में जमा कराया गया था, तभी लोहिया ने पूछा था, किसके गले में लटकता रह गया वह हार।[23] यहां यह भी उल्लेखनीय है कि आरोपों के बारे में न किसी भी मंत्री ने लोहिया को आरोप सिद्ध करने की चुनौती दी, न सरकार और अध्यक्ष ने संसदीय जांच की मांग स्वीकार की। इसके विपरीत राज्यसभा में कांग्रेस सांसद शीलभद्रयाजी ने जब लोहिया पर साहू जैने समूह से एक याचिका के सिलसिले में एक लाख रूपये लेने का आरोप लगाया तो राज्य सभा, लोकसभा दोनों सदनों में लोहिया की पार्टी के सदस्यों ने आरोप को सिद्ध करने की चुनौती प्रस्तुत की या फिर आरोप सदन के बाहर लगाने की चुनौती दी ताकि मुकदमा चलाया जा सके।

हारकर श्री याची को क्षमा याचना करनी पड़ी।[24] यहां यह गौरतलब है कि लोहिया ने बाहर आरोप लगाने की चुनौती अपने द्वारा लगाये आरोपों के बारे में सदैव स्वीकार की है, बल्कि अपनी पत्रिकायें 'जन' और 'मेनकाइंड' में उनका प्रकाशन भी किया है, लेकिन एक भी मुकदमा उनके खिलाफ इस मामले में दर्ज नहीं किया गया। तभी लोहिया ने लिखा है- "ठोस आरोप के ठोस जबाव और सफाई होनी चाहिये। जब ठोस आरोपों का जबाव चरित्रहत्या जैसे साधारण और निरर्थक आरोप से दिया जाता है, तब आरोपी स्वयं चरित्रहन्ता बन जाता है।"[25] जहां तक इन मामलों के लोकसभा में भंडाफोड किये जाने का प्रश्न है लोहिया ने लिखा है कि जब नीतियों और कार्यक्रमों पर सार्थक बहस चलाने की उनकी कोशिशों को संसद, मंत्रियों और समाचार पत्रों ने नाकाम कर दिया। जब अन्न, पोषण के न्यूनतम स्तर, उसे हासिल करने के उपाय, सिंचाई और ऐसे ही सामान्य प्रश्नों की ओर मंत्री लोग बुद्धिपूर्वक ध्यान नहीं देते, तो फिर चावल के आयात में हुये घोटाले का भंडाफोड़ ही एक रास्ता रह जाता है।[26] इसे व्यक्तिगत प्रश्न कहना ठीक नहीं।

दिनांक 7 जून, 67 को सामान्य बजट पर हुई बहस में लोहिया ने कहा- "मैं कोई निजी बात नहीं कहता। उसका संबंध जब सार्वजनिक रूपये से होता है तब मैं कहता हूं वरना कुछ नहीं कहता।"[27] वो भी क्यों कहते हैं, उसका उत्तर भी उन्होंने इसी बहस मे आगे दिया। उन्होंने कहा क्योंकि "यह पिछले वर्ष 20 वर्ष लूटो और खाओ के रहे हैं और यह अर्थ व्यवस्था को विकासोन्मुख न बनाकर बिल्कुल पतनान्मुख ले गये।[28] इस पतन की प्रक्रिया को रोकने के अथक प्रयासों के पीछे छुपा है, लोहिया के लोकसभा में पहरेदार चौकीदार की भूमिका का रहस्य और यही उनका सबसे बड़ा योगदान है।

डॉ0 राममनोहर लोहिया द्वारा प्रत्येक निर्वाचन के सत्य के आचरण पर टिका हुआ था। उसके प्रत्येक आचरण में सत्य आभाषित होता था उन्होंने कभी किसी

प्रकार का ऐसा कोई निर्णय नहीं लिया जिससे निर्वाचन प्रणाली या प्रक्रिया प्रभावित होती है। उन्होंने अपने विचारों में हमेशा संसदीय तौर तरीकों को अपनाया और संसद के प्रत्येक नियम का पालन किया जिससे आचरण और सभ्यता दोनों ही समाहित थे, क्योंकि उन्हांने आचरण और सभ्यता को एक राजनीति का प्रमुख केन्द्र माना लोहिया के आचरणों में निर्वाचन प्रणाली एक प्रकार की राजनीति एवं संविधान का बहुत बड़ा हिस्सा है। विना निर्वाचन में लोकतंत्रतात्मक संस्कृति एवं सभ्यता अपूर्ण मानी जाती है।

कुशल सांसद के रूप में योगदान :

डॉ0 लोहिया एक कुशल और उत्कृष्ट सांसद थे जिन्होंने अपने संसदीय गरिमा को रखा उसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की लोकतंत्रात्मक प्रणाली को भी विकसित किया जिससे निर्वाचन की समस्त प्रक्रियाओं को पारदर्शिता और आदर्श को तथा प्रत्येक संसद सदस्य अपनी कुशलता के आधार पर समाज और राष्ट्र की रक्षा कर सके, इस प्रकार की विचारधारा लोहिया की थी क्योंकि उन्होंने हमेशा ही लोगों के समकक्ष एक सुधारवादी पक्ष को रखा, जिससे सारा समाज एक आदर्शपरत्ता की श्रेणी में आ सके इस प्रकार से लोहिया कुशल संसद सदस्य थे।

एक संसद सदस्य के रूप में लोहिया में की भूमिका के बारे में लोगों को तरह-तरह की आशंकायें थी, लेकिन धीरे-धीरे जैसे समय बीतता गया लोहिया एक बहुत अच्छे, कुशल और गंभीर सांसद के रूप में प्रेस और जनता के बीच प्रतिष्ठित होते चले गये। उनके अवसान के बाद तो अब उनकी गिनती हिन्दुस्तान के महान सांसदों में की जाने लगी है। पहले लोग सोचते थे कि वे संसद में अव्यवस्था फैलायेंगे लेकिन उन्होंने अपने तर्कों तथा विवादों से शीघ्र ही सदन में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। लोकसभा में वे सदैव ही तथ्यों की नवीनतप और विश्वसनीय जानकारी

लेकर जाते थे। बोलने के पूर्व प्रमाणिक जानकारी इकटठा करना, उसकी जांच करना उनकी कार्यशैली का अभिन्न अंग था। इस कार्य में उनकी मदद करने वालों का वह कृतज्ञता के साथ लोकसभा में उनके नाम के साथ उल्लेख करते थे, जैसे कि श्री विनायक पुरोहित और कृष्णनाथ जिनका लोहिया से इतिहास और विदेश सहायता के बारे में हुई बहसों में उल्लेख किया था। लोहिया अपने द्वारा प्रारम्भ किये मामलों का कुछ न कुछ हल निकल आने तक लगातार विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से पीछा करते थे। अक्सर प्रश्न के माध्यम से प्रारम्भ किये मामले, आधे घंटे, अल्पकाल के जरिये विशेषाधिकार हनन तक पहुंच जाते थे, इनमें चावल आयात घोटाला, धर्म तेजा, स्वेतलाना और भारत के क्षेत्रफल के मामले उल्लेखनीय हैं। प्रश्नोत्तर के समय, लोहिया से सामना हो जाने पर, मंत्रियों की अच्छी परीक्षा हो जाया करती थी। अक्सर जो सूचनायें मंत्रियों को सदन को देनी चाहिये लोहिया मंत्रियों को सूचना देकर कृतार्थ करते थे। इत्तला पास न होने पर मंत्रियों को लोहिया की डांट भी सुननी पड़ती थी।[29] प्रस्तुत तालिका में लोहिया द्वारा उठाये कुछ महत्वपूर्ण मामले और उनके द्वारा विभिन्न किस्म के पूछे गये प्रश्नों का ब्यौरा दिया गया है, जो सांसद के रूप में उनके योगदान को एक दृष्टि में प्रगट करता है।

तालिका-1

लोहिया द्वारा लोकसभा में उठाये कुछ महत्वपूर्ण मुददे एक दृष्टि में

लोहिया द्वारा पूछें प्रश्नों का वर्गीकरण :

	तारांकित	अतारांकित	अल्प सूचना	कुल
तृतीय लोकसभा	446	529	21	996
चतुर्थ लोकसभा	138	18	2	171
योग	584	547	23	1167

स्रोत : लोकसभा सचिवालय द्वारा जारी तृतीय एवं चतुर्थ लोकसभा स्मारिकायें।

लोहिया वास्तव में एक कुशल संसद सदस्य के रूप में थे। उनका आचरण और व्यवहार एक उच्चकोटि के दर्शन पर केन्द्रित था जिन्होंने हमेशा एक आदर्श संविधान और संसद की पैरवी की। उन्होंने कभी कोई ऐसा निर्णय नही लिया जिससे संसदीय मूल्य गिरें और निवार्चन प्रणाली दूषित हो।

प्रभाव की व्यापकता :

डा0 लोहिया की व्यापकता राजनीति के क्षेत्र में अद्वितीय एवं अलोकिक है। उनके विचार और त्याग उत्कृष्ट और अनुपम था। वे राजनीति के क्षेत्र में परिपक्व ज्ञाता और उनका त्याग भारतीय राजनीति के लिये एक चुनौती थी।

लोकसभा में लोहिया के कार्यों का विचारों का, सुझावों का हिन्दुस्तान की सरकार, विरोध पक्ष और जनता पर इतना व्यापक, जबर्दस्त असर होगा, ऐसी उम्मीद किसी ने भी नहीं की थी। हिन्दुस्तान की राजनीति में लोहिया अपनी तेईस वर्ष की उम्र से सक्रिय रहे हैं, अपने कर्म और सिद्धांतों की वजह से प्रसिद्ध भी हमेशा से रहें हैं। लेकिन उनके विचारों को घर-घर तक पहुंचाने का कार्य लोकसभा में उनके आने के बाद संपन्न हुआ। लोकसभा में उनके प्रथम भाषण ने ही देशभर में खलबली मचा दी थी। उनके भाषण को पढ़कर आम जनता में नये उत्साह की स्पंदन हुआ, वही सरकारी खेमे में निराशा, घबराहट और परेशानी के बादल छाने लगे। आश्चर्य चकित स्वयं लोहिया भी थे; यह क्या बात है? अब तक हम यही सब बातें बोलते रहे तो ज्यादा असर नहीं पड़ा।''[30] लेकिन जो हुआ चमत्कार हुआ, क्योंकि किसी भी विधायिका की बहस गांव-गांव और घर-घर चली जाये, यह सिर्फ अपने ही देश के लिये नहीं, बल्कि दुनिया के लिये अद्‌भुत है। तभी श्रीयुत श्रीकांत वर्मा ने लोहिया के इस भाषण को स्व0

नेहरू पर चीनी हमले के बाद दूसरा जबर्दस्त हमला कहा था, जिसने देश की राजनीति को एक और मोड़ दे दिया। लोकसभा में अपने प्रवेश के पाँचवे महीने में ही, 28 से 30 दिसम्बर 1963 को कलकत्ता में समाजवादी पार्टी के सातवें सम्मेलन में आत्मविश्वास से भरपूर लोहिया ने बोला- ''मैं निश्चित रूप से कहना चाहता हूँ, कि अगर हम 50-55 होते समाजवादी दल के लोग लोकसभा में, तो अब यह तो नहीं जिम्मेदारी के साथ कह सकता कि कांग्रेसी सरकार अब तक खत्म हो गई होती, लेकिन करीब-करीब वैसी ही हालत पैदा हो गई होती।''[31]

उन्होंने आगे कहा कि ''प्रधानमंत्री को 380 का सहारा रहता है। हम लोगों को 6 का रहता है। जो विरोधी कहलाते हैं, लेकिन वास्तव में उनमें से शायद ही 80-90 से ज्यादा विरोधी होंगे। दरअसल विरोधी देखा जाये तो 20-25 से ज्यादा नहीं होगा।''[32] इस कुंठित और खंडित विरोध के कारण ही लोहिया विदेश मंत्री के खिलाफ कोशिश करने के बाद भी निंदा प्रस्ताव न ला सके; नहीं तो, लोहिया के ही शब्दों में- ''मैं चाहता था विदेश मंत्री के खिलाफ निन्दा का प्रस्ताव आ जाये। अगर वह आ गया तो- हिन्दुस्तान की विदेश नीति का खोखलापन भी जनता के सामने आ जाता। और यह जो नकली मुलम्मा चढ़ा हुआ है कि, दुनिया में बढ़ा नाम है कि विदेश नीति बढ़ी अच्छी है, वह भी इस सत्र में साफ हो गया होता।''[33] लेकिन फिर भी तीन साल के भीतर, इसके दुगनी संख्या में मात्र 6 सदस्यों के सहारे लोहिया ने लोकसभा और देश, दोनों को हिलाकर रख दिया। प्रारंभ में लोहिया स्वयं सशंकित थे- ''लोग आशा लगाये थे कि लोकसभा में जाकर क्या कर लेंगे, और मेरा मन धुक-धुक करता था कि वहाँ जाकर करेंगे क्या? पन्द्रह दिन में एकाध भाषण कर पायेंगे जिसका क्या असर पड़ पायेंगा? क्योंकि क्रान्ति का दर्शन, क्रान्ति का सिद्धान्त मुझे मालूम है और

उसको मैं बताता रहा हूँ लेकिन उसका अमल मेरे हाथ न हो पाता तो उस दर्शन के ऊपर आंच आ जाती।"[34] लेकिन बजाय आँच आने के, लोकसभा में लोहिया के कार्यों से उनके दर्शन में और भी निखार आ गया। अपनी और अपने छोटे गुट की लोकसभा में प्रभावी भूमिका और उपलब्धि से संतुष्ट, 13 फरवरी, 1967 को अपने एक भाषण में उन्होंने कहा- "हमने जो किया हम उसको अपने मुंह से क्या कहें। हमारी बात तो छोड़ दो। लेकिन हम आपकी बात लोकसभा में कह पाये। ऐसे मान लो लोकसभा में ने होते तो भी कहते ही हमको तो कोई रोक नही सकता था। लेकिन जो हम कहते हैं, उसका अबकी दफे तीन बरस में असर पड़ा। अगर लोकसभा में न होते दो दस-पाँच बरस और लग जाता। लेकिन इन तीन बरसों में जो कुछ हमने वहाँ कहा उससे देश में इतनी गरमी आयी है कि अब कांग्रेस सरकार के तख्ता पलटने की बात लोगों के सामने जंचने लगी है।"[35]

लोहिया का अनुमान गलत नहीं था। 1967 में हुये आम चुनावों में देश के नौ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का गठन हुआ। और लोकसभा में कांग्रेस की सदस्य संख्या 1962 में प्राप्त 361 की तुलना में घट कर 280 रह गई। जबकि विरोध पक्ष ने 51 प्रतिशत बोट पाकर 45 प्रतिशत सीटों पर जीत हासिल की। विरोधी पक्ष में भी लोहिया की संयुक्त समाजवादी पार्टी ने कमाल कर दिखाया जो निम्न तालिका से स्पष्ट है :

तालिका सं0 2

क्र.सं.	राजनैतिक दल	तीसरी लोकसभा	चौथी लोकसभा	सीटों का घटाव-बढ़ाव	घट-बढ़ का प्रतिशत
1.	राष्ट्रीय कांग्रेस	361	280	-81	-22.44
2.	भारतीय साम्यवादी	29	24	+14	+48.27
3.	मार्क्सवादी	-	19		
4.	जनसंघ	14	35	+21	+150.00
5.	स्वतंत्र	18	41	+23	+127.77
6.	प्रजा समाजवादी	12	13	+1	+8.33
7.	संयुक्त समाजवादी	06	23	+17	+283.33
8.	डी0एम0के0	87	25	+18	+257.14
9.	अन्य दल	19	13	-6	-31.58
10.	निर्दलीय	28	42	+14	+150.00
	योग	494	515		

स्त्रोतः 1.- रिपोर्ट आन द थर्ड जनरल इलेक्शन इन इंडिया, 1962 खण्ड (1) इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, 1962, नई दिल्ली, पृ0 84

2.- फोर्थ जनरल इलेक्शन-एन एनालिसिस, सूचना प्रसारण मंत्रालय, 1967, नई दिल्ली, पृ0 6.

लोकसभा की शक्ल में तब्दीली :

लोहिया के प्रभाव का चमत्कार चौथी लोकसभा में विरोधी दलों की सदस्य संख्या में वृद्धि के साथ, लोकसभा में पहुंचे संसद सदस्यों को व्यवसायिक पृष्ठभूमि में पिछली लोकसभाओं की तुलना में व्यापक परिवर्तन के रूप में भी परिलाक्षित होता है। मतलब यह है कि चौथी लोकसभा में साएंारण आर्थिक, सामाजिक और व्यवसायिक स्थिति के लोग ज्यादा संख्या में लोकसभा में चुनकर पहुंचे। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका - 3

क्र.सं.	व्यवसाय	तीसरी लोकसभा	चौथी लोकसभा
1.	वकील	24.5	17.5
2.	कृषक	27.4	30.6
3.	राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता	18.0	22.9
4.	शिक्षक एवं शिक्षा शास्.त्री	5.8	6.4

स्त्रोत : तीसरी एवं चौथी लोकसभा की, लोकसभा द्वारा प्रकाशित स्मारिकायें।

इस प्रकार हमने पाया कि वकीलों की तुलना में प्रथमवर्ग में चौथी लोकसभा में किसानों का स्थान आ गया, साथ ही समाज के साधारण तब के राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं और शिक्षकों-शिक्षा शास्त्रियों के वर्ग में भी, तीसरी लोकसभा की तुलना में चौथी लोकसभा में प्रतिनिधित्व में काफी सुधार हुआ।

दूसरी ओर यदि हम चौथी लोकसभा में सदस्यों में सदस्यों के पूर्व विधायी अनुभव के आधार पर विश्लेषण करें तो हमें पता चलता है कि जहाँ

कांग्रेस के मात्र 15.9 प्रतिशत को कोई विधायी अनुभव नहीं था, प्रजा समाजवादी और डी.एम.के. पार्टी के क्रमशः 30.8 प्रतिशत और 33.3 प्रतिशत सदस्य विधायी कार्य में नये थे, वहीं संयुक्त समाजवादी दल के सबसे अधिक 42.1 प्रतिशत सदस्य पहली बार सीधे लोकसभा में चुनकर आये थे।[36] यह निम्न तालिका से, और अधिक स्पष्ट है।

तालिका - 4

संयुक्त समाजवादी दलः चौथी लोकसभा में पूर्व विधायी अनुभव के आधार पर सदस्यां का वर्गीकरण

पूर्व विधायी अनुभव

1-	बिलकुल नहीं	:	42.1	स्त्रोत : रतन दत्ता
2-	राष्ट्रीय स्तर	:	5.3	द पार्टी रिप्रेजेन्टेशन
3-	राज्य स्तर	:	31.6	इन फोर्थ लोकसभा
4-	पंचायत	:	21.1	इकोनामिक एण्ड पोलीटिकल
5-	ट्रेड यूनियन, हां	:	52.6	वीकली, 5 नं. 1-2
	(हाँ) (न) न	:	47.4	जन. 1996.
6.	कोआपरेटिव			
	(हाँ)	:	15.8	
	(न)	:	84.2	

इस प्रकार यह प्रगट हुआ कि; अपने सिद्धांत और कार्यक्रमों के अनुरूप संयुक्त समाजवादी दल ने अपने उम्मीदवारों के चयन में, साधारण

पृष्ठभूमि के, राजनैतिक एवं ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को ज्यादा स्थान दिये तभी जीतकर आने वालों में भी उन्हीं का बाहुल्य है। यह निम्न तालिका से और स्पष्ट होता है।

तालिका - 5

संयुक्त समाजवादी दल : व्यवसाय के आधार पर लोकसभा सदस्यों का वर्गीकरण

कृषक	राजनैतिक एवं ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता	वकील	शिक्षकः पत्रकार	उद्योग प्रति	पूर्व महाराजा
42.1	42.1	5.3	10.5	00	00

स्त्रोत : रतनदत्ता, द पार्टी रिप्रिजेन्टेशन इन फोर्थ लोकसभा

इकानामिक एण्ड पोलीटिकल बीकली, 5.नं. 1.2 जन. 1969.

व्यवसाय के आधार पर वर्गीगत मतदाताओं द्वारा विभिन्न पार्टियों को दिये वोट से भी पता चलता है कि संयुक्त समाजवादी पार्टी को प्राप्त मतों का 44 प्रतिशत से अधिक मत खेतीहर मजदूर, अकुशल मजदूर और बेरोजगार वर्ग के मतदाताओं से प्राप्त हुये हैं।[37] यह विश्लेषण सिद्ध करता है कि पार्टी गरीब, कमजोर और पिछड़े- सुविधाहीन वर्ग के हितों के लिये लड़ाई लड़ने वाली पार्टी थी। अतः हिन्दुस्तान की राजनीति में परिवर्तन और पिछड़ों की बीच राजनैतिक चेतना जागृत करना और उसे फैलाना और उन्हें राजनीति में आगे लाकर, लोकसभा में पहुंचाना- कुल मिलाकर देश की राजनैतिक सूरत में बदलाव, लोहिया के प्रभाव का महान नतीजा है। जो 1967 में ही नहीं बाद के हर एक आमचुनाव के बाद लोकसभा की बदलती सूरत के रूप में प्रगट होता रहा है।

लोकसभा के कार्य विन्यास पर असर :

डा0 लोहिया का कार्य पद्धति अपने आप में एक परिपूर्ण और भारतीय राजनीति की पराकाष्ठा पर केन्द्रीभूत थी। उनके विचारों में लोकसभा और राज्य सभा भारतीय राजनीति की आत्मा थे कहीं किसी प्रकार का लेसमात्र भी व्यापारीकरण नहीं था। जन समस्याओं को सुनना और उन पर गौर करना तथा संविधान उनके और संदनों के नियमों को मानना उनकी प्रमुख व्यापकता और चरित्रक पराकाष्ठा थी कहीं भी किसी प्रकार का उनके आचरण में अक्षमता और असमर्थता नजर नहीं आती थी।

जब लोकसभा के गठन में, सदस्यों की व्यवसायिक एंव अन्य पृष्ठभूमि में परिवर्तन के आधार पर परिवर्तन हो गया तो स्वाभाविक है कि उसके कार्य विन्यास पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। अब लोकसभा में गरीबों, मजदूरों, पिछड़ों की बाते, उनकी समस्याओं पर विचार-बहस के अवसर ज्यादा उपलब्ध होने लगे। यह निम्न तालिका के दो महत्वपूर्ण कार्य विन्यासों के समय को देखने से प्रगट होता हैं।

तालिका - 6

(लोकसभा समय प्रतिशत)

क्र.सं.	कार्य विन्यास	तीसरी लोकसभा	चौथी लोकसभा
1.	स्थगन प्रस्ताव	1.1	8.5
2.	ध्यानाकर्षण	3.0	5.84

इस प्रकार जहाँ चौथी लोकसभा के लगभग प्रत्येक सत्र में एक स्थगन प्रस्ताव पर बहस हुई, वहीं तीसरी लोकसभा में 776 प्राप्त सूचनाओं में से मात्र 7 सूचनाओं पर चर्चा हो सकी थी।[38]

संयुक्त समाजवादी दल के संसदीय दल की कार्यकुशलता पर प्रभाव :

यह स्वाभाविक ही है कि लोहिया ने लोकसभा में अपने कार्य व्यवहार द्वारा सर्वाधिक प्रभावित अपने ही दल के संसदीय दल को किया जिसकी सदस्य संख्या तीसरी लोकसभा की तुलना में चौथी लोकसभा में 6 से बढ़कर 23 हो चुकी थी। जैसा कि अपेक्षित था, आशायें थी जनता की और मतदाताओं की कि समाजवादी सांसद उनके हकों की लड़ाई लोकसभा में लड़ेगें उसको उन्होंने पूरा किया। जन समस्याओं को प्रस्तुत करना लोकसभा में, और उन समस्याओं पर बहस करा पाने में सफल हो जाना कोई सहज और सरल कार्य नहीं है। इसमें कई किस्म की, नियम-कायदे कानून, अध्यक्ष का रवैया आदि की बाधायें हैं। इसका प्रत्यक्ष अनुभव, या कहिये कि कटु अनुभव लोहिया को स्वयं हुआ था। तभी उन्होंने कहा है- ''अकेले हम लोगों को, कभी यह कानून देखो, कभी वह किताब देखो, कभी इनसे मिलो कभी उससे, कभी अध्यक्ष को चिट्ठी लिखो। एक वाक्य कह लेने में बीस-बीस दिन तक लगातार माथा पच्ची करनी पड़ती है।''[39] अतः साफ है, लोकसभा में वही बोल पाता है, जो पूरी तरह हर प्रकार से, तैयार होकर आता है। यहाँ एक और फर्क यह है कि स्वीकृत बहस में, अपनी पार्टी अथवा कि गुट की ओर से हिस्सा लेना सरल है, लेकिन बहस, बहस के लिये स्वीकार करा लेना ज्यादा कठिन है। बहस में हस्तक्षेप, बहस को मोड़ देना, व्यवस्था के प्रश्नों के माध्यम से चल रही बहस को स्थगित कराना या कि अपेक्षित दिशा में आगे बढ़ाना यह सारे कार्य एक कुशल सांसद ही अंजाम दे

सकता है। और यह कार्य विधायी कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की है।

1977 में उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद से पी.एच.डी. के लिये स्वीकृत शोध प्रबंध, ए स्टडी आफ द रोल आफ द अपोजीशन इन द फोर्थ लोकसभा, के शोधार्थी श्री दामोदर जटकार ने लिखा है- ''पार्टी ने अपने कार्य के बारे में लिखा है कि वह जन समस्याओं को मुखरित करेगी और लोकतंत्र की रक्षा करेगी। इसी उद्देश्य की पूर्ति में, सदन की कार्यविधि द्वारा उपलब्ध अक्सरों का सर्वाधिक उपयोग उन्होंने किया है।''[40] इसके आगे समाजवादी सांसदों के संसदीय ज्ञान और कौशल की प्रशंसा करते हुये, उन्होंने लिखा- ''व्यवस्था के प्रश्न उठाने में संविधान और सदन के नियमों में उल्लेख करने में ये सबसे आगे रहते थे।''[41]

समाजवादी सांसदों ने प्रश्नोत्तर, ध्यानाकर्षण और स्थगन प्रस्तावों का अधिकतक उपयोग करते हुये, इनके माध्यम से लोक महत्व के सवालों पर विचार करने के लिये लोकसभा को मज़बूर और लोकतन्त्र को मजबूत किया है। लोकसभा में संसोपा की सदस्य संख्या, सदन की संख्या का कुल 3.89 थी, लेकिन चौथी लोकसभा में पूछे प्रश्नों का 12 प्रश्न उन्होंने पूछे। इस प्रकार अपनी दलीय शक्ति के अनुपात से 8.11 प्रश्न अधिक पूछे।[42] ध्यानाकर्षण और स्थगन प्रस्ताव के मामले में तो उन्होंने कमाल ही कर दिखाया। आगरा विश्वविद्यालय से, भारतीय संसद में विपक्ष की भूमिका (62-70), के शोधार्थी श्री सी0पी0 शर्मा के अनुसार ''संसोपा प्रसोपा ने केवल अविलम्बनीय महत्व के प्रस्तावों व स्थगन प्रस्तावों में आधा समय लिया। इस प्रकार चौथी लोकसभा में इन दलों ने ही सबसे अधिक स्थगन प्रस्ताव रखे।''[43]

आगरा विश्वविद्यालय के एक अन्य शोधार्थी श्री रामसिंह राजपूत ने

अपने शोध प्रबंध 'चतुर्थ लोकसभा-अलोचनात्कमक अध्ययन' में अपने निष्कार्षों के आधार पर, संसोपा के संसदीय दल की कार्य उपलब्धियों की प्रशंसा करते हुये, लिखा है- ''संसोपा के 21 सदस्यों, 3.89 प्रतिशत द्वारा लोकसभा कार्य विन्यास में 11.40 प्रतिशत का योगदान किया गया था, जो समस्त विरोधी एवं शासकीय दलों की सदस्य संख्या एवं योगदान परिमाण में सर्वाधिक है। इस दल ने जहाँ कार्य विन्यास में सदस्यानुपात मं सर्वाधिक योगदान किया वहीं समस्त विरोधी दलों में सर्वाधिक विधेयक भी इस दल ने प्रस्तावित किये थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि संसोपा के सदस्य यद्यपि संख्या में कम थे किन्तु वे सदन की कार्यवाही में अधिक जागरूक रहे।''[44] इस प्रकार यह प्रगट हुआ कि लोकसभा की कुल सदस्य संख्या का एक छोटा सा हिस्सा, 3.89 प्रतिशत ने लोकसभा की संपूर्ण कार्यवाही का 11.40 प्रतिशत कार्य प्रस्तावित किया था। संसोपा की सदस्य संख्या और कार्य की मात्रा को दृष्टि में रखते हुये यह कहना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के संसदीय इतिहास की यह उपलब्धि, एक रिकार्ड के रूप में, लोकसभा के अन्य दलों के लिये चुनौती के रूप में मौजूद रहेगी। यह उपलब्धि तब हासिल की गइ है, जब कि डा0 लोहिया का देहावसान 12 अक्टूबर,1967 को चुका था। उनकी याद ने जब उनके दल के सदस्यों को इतना प्रभावित किया तो उनकी लोकसभा में उपस्थिति ने कितना किया होता, हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। लोहिया ने ऐसा नहीं कि अपने दल को ही प्रभावित किया हो, बल्कि संपूर्ण विरोध पक्ष और शासकीय दल के सदस्यों को भी प्रभावित किया है। इसे स्वीकार करते हुये, राज्यसभा के कांग्रेसी संसद श्री रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है- ''संसद में आते ही विरोधी नेता के रूप में लोहिया साहब ने जो अप्रतिम निर्भीकता दिखायी थी, उसकी बड़ाई खानगी तौर पर कांग्रेसी सदस्य भी करते थे और उस

निर्भीकता के कारण लोहिया साहब पर मेरी बड़ी भक्ति थी।"[45] लोकसभा में भी बहसें के दौरान सरकारी मंत्रियों सर्वश्री जयसुखलाल हाथी, राजबहादुर, मोरारजी भाई देशाई, प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री, कांग्रेसी सांसदों सर्वश्री शिवनारायण, भागवत झाँ आजाद, दीपचन्द शर्मा, महावीर त्यागी एवं श्रीमती लक्ष्मीकांतमा और श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा जैसे लोगों ने लोहिया के विभिन्न रूपों की; मानवीय दृष्टि की, कभी सुधारक की कभी क्रान्तिकारी की, कभी भाषा की प्रशंसा करते हुये उनसे प्रभाव ग्रहण करने की बात स्वीकार की है।[46] श्री मधुलिमये ने भी लिखा है- "लोहिया से प्रेरणा लेकर उनके पक्ष के ही हम (मैं और बसु) अनुगामी बने।"47 यहाँ श्री लिमये मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के विख्यात सांसद श्री ज्योतिर्मय बसु का उल्लेख कर रहे हैं। कुल मिलाकर लोहिया के प्रभाव ने इस देश में संसदीय लोकतन्त्र को आमजनता के हित में मोड़ देने का कार्य किया है।

शासन के निर्णयों पर प्रभाव :

भारतीय राजनीति में समस्त शासकीय निर्णयों का लोहिया सम्मान करते थे। उनका प्रत्येक निर्णय आम जनमानस के विन्दुओं पर रेखांकित होता था। कहीं किसी प्रकार का विवाद नहीं था लोहिया ने हमेशा देश व जनता दोनों का कल्याण सोचा जिससे भारत का सभी प्रकार से कल्याण हो सके।

लोकसभा में बहसों के दौरान लोहिया द्वारा विभिन्न समस्याओं के हल के दिये सुझावों पर सरकार ने तत्काल भले ही ध्यान न दिया हो, लेकिन बाद में उनमें से अधिकतर सुझावों को क्रियान्वित किया है, जिनसे देश और जनता दोनों का कल्याण हुआ है। लोहिया ने लोकसभा के अपने पहले भाषण में ही कहा था- "किसी भी देश के प्रधानमंत्री को अपने देश की भूमि के अंग के बारे में खासतौर पर लड़ाई के दिनों में यह नहीं कहना चाहिए कि यह विवादग्रस्त

इलाका है।''[48] इस सुझाव को स्वीकार करते हुये प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने 4 मई, 1965 को वित्त विधेयक पर लोहिया के भाषण के बीच कहा- ''मैं आपसे सहमत हूँ कि विवादग्रस्त शब्द का प्रयोग करने से हमें सावधान होना चाहिए। यह ठीक है कि हमने भूतकाल में कुछ सरकारी कागजों में विवादग्रस्त शब्द का प्रयोग किया है।''[49]

''कच्छ का रण दलदल है, लेकिन लाहौर का मार्ग तो साफ है'' यह कहकर लोहिया ने भारतीय सेनाओं को स्यालकोट और लाहौर की ओर बढ़ने के लिये प्रेरित और प्रभावित किया। इसके साथ, युद्ध के दौरान, 16 सितम्बर, 1965 को लोकसभा में लोहिया ने हवलदार अब्दुल हमीद के वीरता पूर्ण कार्यों का उल्लेख करते उसे प्रमाण किया।[50] इसके पश्चात ही, शहीद को भारत का सबसे महार सैनिक सम्मान ''परमवीर चक्र'' प्रदान किया गया।[51]

लेकिन लोहिया के लोकसभा में दिये भाषाणें ने सर्वाधिक प्रभावित किया है प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को। उनके द्वारा लिये गये निम्नांकित निर्णय इसकी पुष्टि करते हैं।

1. पोखरण में अणु विस्फोट का परीक्षणः 2 अगस्त, 1966, को अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुये लोहिया ने कांगेस सरकार द्वारा अणु विस्फोट कराये जाने की चेतावनी दी थी।

2. बांग्लादेश की मुक्ति : 28 अप्रेल, 1965 को लोकसभा में शास्त्री जी के प्रस्ताव पर कि 'कच्छ सीमा पर पाकिस्तान के सशस्त्र बलों द्वारा बार-बार और लगातार किये जा रहे हमलों से उत्पन्न स्थिति पर विचार किया जाये' बोलते हुये लोहिया ने व्यक्त किया था;

"जैसे जरा ने दो टुकड़ों को जोड़कर उसे जरासंध बना दिया था, वैसे ही दो अप्रकृतिक नकली टुकड़ो को जोड़कर पाकिस्तान बना है। मैं कहना चाहता हूँ कि मामला आखिर तक अगर जाता है तो पूर्वी बंगाल सिर्फ चार पांच दिन की चीज है- और पूर्वी बंगाल चौथे या पांचवे दिन हिन्दुस्तान के कब्जे में आ जाता है। जरासंध को भी फाड़ने के लिये कृष्णा ने सिखाया था। लेकिन कौन है यहाँ सिखाने वाला आप लोगों को।"

कुछ मान0 सदस्य : आप हैं।

लोहिया : मैं हूँ,? मेरा कहना इनके काम आयेगा। थोड़ा अकलमंद बनो तो काम आ जायेगा।[52]

आखिर में श्रीमती गांधी की अक्लमंदी से, लोहिया की प्रेरणा से वही हुआ जिसका लोहिया ने वर्णन किया था।

बैंकों का और विदेशी कंपनियों का राष्ट्रीयकरणः

इस मामले में 23 अगस्त, 1963 को सार्वजनिक उद्योगों के बारे में हुई बहस में लोहिया ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण किये जाने की मांग का भरपूर समर्थन किया, वहीं 10 दिसम्बर, 1965 को तेल कंपनियों के राष्ट्रीयकरण करना इतना जरूरी है कि उसमें एक क्षण की देरी हमारे देश के लिये घातक होती जा रही है।"[53]

भूतपूर्व राजाओं के प्रबीपर्स की समाप्ति :

राजाओं के प्रबीपर्स समाप्त किये जाने की सोशलिस्ट पार्टी की मांग तभी की है, जब से भारत शासन ने प्रबीपर्स देना मंजूर किया था। लोकसभा में आने के बाद लोहिया ने इस ओर काफी जोर लगाया। प्रश्नों के माध्यम के

अलावा आम बहसों में उन्होंने प्रवीपर्स को यथाशीघ्र समाप्त किये जाने की मांग की है।[54] चौथी लोकसभा में 13 जुलाई, 1967 को लोहिया के दल के मधुलिमये द्वारा प्रवीपर्स को समाप्ति पर एक अल्पकालीन (ढ़ाई घंटे की) की चर्चा भी प्रस्तावित की गई थी।[55]

सार्वजनिक स्थानों से विदेशी शासकों के पुतले हटाना, हरित क्रान्ति और इसके अलावा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा लोहिया के विचारानुसार छोटी जोत के किसानों की लगान माफी, शिक्षा के माध्यम में भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा, प्रशासन से अंग्रेजी की विदाई, राज्य लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता की समाप्ति और केन्द्रीय लोकसभा आयोग द्वारा परीक्षा का मध्यम भारतीय भाषाओं को स्वीकार किया जाना- ये कुछ ऐसे निर्णय हैं-जिनके पीछे लोहिया और उनके साथियों ने संस्द में और संसद के बाहर सड़क पर वर्षो संघर्ष किया है।

विरासत और नसीहत :

संसदीय लोकतन्त्र के विकास में डा0 राममनोहर लोहिया का अपूर्ण योगदान रहा उनकी कार्यशैली अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं से अलग थी उन्होंने हमेशा संसदीय लोकतन्त्र को मजबूती एवं सुचारू रूप से चलाने का प्रयास किया। उन्होंने हमेशा भारतीय राजनीति को व्यवहारिक एवं सांसारिक पक्ष देखा कभी किसी प्रकार का उन्होंने राजनैतिक अवधारण पहलुओं का अलग धन नहीं किया वे भारतीय राजनीति को अपने जीवन का आदर्श मानते थे उसके साथ-साथ संसदीय लोकतन्त्र को सुचारू रूप में चलाने का पयास किया। उन्होंने हिन्दुस्तान की विरासत को अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया क्योंकि उन्होंने इसकों भारतीय संस्कृति

का अंग माना जिसमें हिन्दुस्तानी सभ्यता व संस्कृति भी समाहित थी।

एक सांसद के रूप में, लगभग चार वर्ष के अल्पकाल में लोहिया, अपने व्यवहार, कार्यशैली द्वारा ऐसे आदर्श विरासत के रूप में छोड़ गये हैं, जिसे अपनाकर, उनका अनुसरण कर कोई भी सजग सांसद अपनी उपलब्धियों में चार चांद लगा सकता है और राष्ट्र एवं जनता की सेवा कर सकता है। जहाँ तक विचारों का सवाल है लगता है, लोहिया बहुत जल्दी में थे तभी उन्होंने ढ़ेर सारे विचार, सौगात के रूप में लोकसभा की अमर विरासत है, जो नसीहत के रूप में सरकार, संसद और जनता के लिये एक प्रकाश स्तंभ की भांति, अंधेरे में राह दिखाने का कार्य आगे आने वाले समय में, करते रहेंगे। मैंने लोहिया द्वारा व्यक्त ऐसे विचारों के सूत्रों को एकत्र किया है, जो नसीहत के रूप में हिन्दुस्तान में संसदीय लोकतंत्र की मजबूती एवं सुचारू रूप से संचालन में मद्‌दगार हो सकते हैं, यदि हम उन्हें अपना लेने का संकल्प कर लें।

अध्यक्ष :

संसद समेत हिन्दुस्तानी विधायिकाओं के अध्यक्षों की भूमिका को लेकर लोहिया के घोर असंतोष का एक कारण 8 सितम्बर, 1958 को उत्तर प्रदेश की विधानसभा में घटित उस घटना से है जिसमें समाजवादी विधायकों को, अध्यक्ष के आदेश पर, सशस्त्र पुलिस ने सदन में घुस कर लातों और मुक्कों से मारते हुये सभा के बाहर निकाल दिया था। उनके नेता श्री राजनारायण को तो नग्नवत हालत में मुर्दे की तरह हाथ पैर पकड़कर सदन के बाहर, सामने लाकर पटक दिया। एक अन्य सदस्य चौहान को स्ट्रेचर पर लाद कर ले जाना पड़ा, क्योंकि वह पिटाई की वजह से बेहोश हो गये थे।[57] इस घटना से विचलित लोहिया ने तभी व्यक्त किया था कि अध्यक्ष को संस्थिति लौटाने में पुलिस की

मदद नहीं लेनी चाहिए थी, उसे सदन का कार्य स्थगित कर देना चाहिए था, जैसा के उसने किया भी। संसदे मैदाने जंग नहीं है। जंगे मैदान में भी कभी-कभी लड़ाई रोक दी जाती है, लेकिन भारतीय संसदों के अध्यक्ष सदस्यों को पिस्तौल बंद पुलिस वालों के घूंसों बूटों से धमकाने से मतलब रखते हैं।[58] इसी तरह महाराष्ट्र विधानसभा अध्यक्ष ने एक सदस्य श्री जामवन्त राव घोटे को कागज फेंकने पर, अगले चुनाव तक के लिये निष्कासित कर, जनतांत्रिक संसार का एक अन्य कीर्तिमान स्थापित किया। तभी विचलित होकर लोहिया ने लिखा- ''अगर सदस्यों ने अध्यक्षों को सिद्धान्तों और नियमों की मर्यादा में रखने का कोई उपाय न निकाला तो संसद कभी प्रोढ़ा न हो सकेगी।''[59] प्रांतीय विधायिकाओं के इन अनुभवों के बाद, लोकसभा में स्वयं लोहिया के अनुभव अध्यक्ष के आचरण के बारे में अच्छे नहीं रहे। अध्यक्ष के अड़ियल, मनमाने और पक्षपातपूर्ण रवैये और व्यर्थ की टोका-टोकी से परेशान होकर लोहिया ने लिखा- ''अध्यक्ष को जितना संभव हो कम बोलना चाहिए। उसका काम है कानूनी और गैर कानूनी, संसदीय और गैर संसदीय के बीच फैसला करना और अगर वह हर समय गरिमा, शालीनता और शिष्टाचार की बात कहता चला जाये तो वह अपने कर्तव्य में बखेड़ा खड़ा करता है। ऐसी बात से संसदीय मिजाज वीभत्स हो जाता है, बहस अवरूद्ध हो जाती है। और अमर्यादित असभ्यता पनपने लगती है।''[60] लोहिया मानते थे कि अध्यक्ष को सदस्यों की आज्ञाकारिता प्राप्त होनी चाहिए लेकिन यह आज्ञाकारिता सैद्धांतिक होना चाहिए निर्विवाद नहीं। तभी उन्होंने अध्यक्ष के कर्तव्यों, नियमों और आम कार्य संचालन पर एक खुली और निड़र बहस की मांग की। उन्होंने कहा- ''अभी हम लोकतन्त्र की एक प्रारंभिक और कच्ची अवस्था में हैं, अखबार खामोश रहें कहीं वे संसदीय विशेषाधिकार के मामले में

घर न लिये जायें। इस तरह का डर हमें परिपक्व अवस्था में पहुंचने नहीं देगा।''[61] इन्हीं सब बातों को मद्देनजर रखते हुये, लोहिया ने सदन में 9 अप्रैल, 1965 को संसद कार्य पर बहस कराने की मांग करते हुये अध्यक्ष महोदय से कहा- ''उन सभी कार्यों के ऊपर जिनके लिये यह सदन पैसा देता है, बहस का मौका मिलना चाहिए। उनमें से एक काम है संसद कार्य। संसद कार्य कितना बिगड़ा हुआ है। यह मुझे आपको बताने की जरूरत नहीं है।''[62]

लेकिन लोहिया की यह मांग, बार-बार उठाये जाने के बावजूद मंजूर नहीं की गई। इसी बात को लेकर मधुलिमये पंजाब हाईकार्ट तक में गये लेकिन उनकी याचिका कोर्ट द्वारा खारिज कर दी गई, इसको लेकर उल्टा उन्हीं पर विशेषाधिकार का मामला लाया गया।[63] लेकिन लोहिया की मांग का औचित्य आज भी जिंदा है, संसद कार्य पर बहस, अध्यक्ष के मनमाने आचरण पर अंकुश रखने और संसदीय कार्यों को नियमानुकूल सुचारू रूप से चलाने में मद्दगार साबित होगी। 24 नवम्बर, 1966 को मधुलिमये ने अध्यक्ष के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव के संकल्प को प्रस्तुत किये जाने की अनुनति प्राप्त करने की कोशिश की। सरदार कपूर सिंह ने नियमों में संशोधन का प्रस्ताव रखते हुये, अनुमति दिये जाने के लिये 50 सदस्यों के समर्थन की बाएंयता हटा लेने की मांग की लेकिन अंततः प्रस्ताव को सदन की अनुमति प्राप्त न हो सकी।[64] इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये, अध्यक्ष की निष्पक्षता सुनिश्चित करने लोहिया और मधुलिमये ने चौथी लोकसभा में अएंयक्ष के चुनाव में सदस्यों द्वारा गुप्तमत दान कराये जाने की मांग की और अपनी मांग के समर्थन में अनेक तर्क प्रस्तुत किये, लेकिन यह मांग भी अस्वीकार कर दी गई।[65] लेकिन उपरोक्त तीनों मांगों की उपादेयता और औचित्य आज भी पहले से कहीं ज्यादा प्रासंगिक नजर आती हैं।

लोकसभा :

भारतीय राजनीति के लोकसभा और राज्यसभा दो भाग है। जिसमें लोकसभा के प्रति अधिकाशतः लोगों का सम्मान है। समस्त भारत की राजनीति का केन्द्र बिन्दु लोकसभा है जो वास्तव में समस्त भारत की कार्यप्रणाली को रेखांकित करता है। और सरकारी काम काज में आचरण लोगों को प्रभावित भी करता है।

लोहिया के मन में संसद के प्रति बड़ा सम्मान का भाव था, लेकिन उनके अनुसार संसद केवल सरकारी कामकाज निपटाने की मशीन नहीं है; उन्होंने लिखा हैं- "आखिर संसद है क्या? यह लोगों पर किये गये अन्याय और उनकी तकलीफ और उनकी तकलीफ का सबसे सचेतन आइना है, जिसकी ईजाद आदमी अब तक कर पाया है। जब चेचक और भूख से लाखों की तादाद में लोग मरे, जब करोड़ों आधा पेट खाये. और जब सैकड़ों की तादाद में इसके विरोध में गिरफ्तार हों, तब उस आइने में खतरे की लाल रोशनी चमक उठनी चाहिए और यह चमक तब तक कायम रहनी चाहिए जब तक रह सके। अगर इस आइने को साल के ज्यादा महीनें उल्टा रखा तो जनतंत्र कुंठित हो जायेगा और शायद बुरी तरह कुंछित।"[66] इसीलिये लोहिया चाहते थे कि संसद की बैठकें साल में दस महीने चलनी चाहिए। और उसकी कार्य प्रणाली में ऐसा परिवर्तन होने चाहिए जिसके बाद सरकारी कामकाज के अलवा लोगों को प्रभावित करने वाली देश में घटित हो रही घटनायें और चल रहे हालात पर लोकसभा में बहस और चर्चा हो सके।

7 सितम्बर, 1964 को लोकसभा में उन्होंने अध्यक्ष से पूछा- "यह लोकसभा किसलिये है? खाली सरकार के काम धंधों के लिये है या जनता और हम लोगों के काम के लिये भी है।"[67]

कार्य पद्धति में सुधार की मांग :

साप्ताहिक पत्रिका दिनमान के प्रतिनिधि से लोकसभा की कार्यपद्धति पर चर्चा करते हुये लोहिया ने अंग्रेजों की लोकसभा की तरह हिन्दुस्तान की लोकसभा में भी रोज आधा घंटे के स्थगन प्रस्ताव की परंपरा प्रारंभ करने के समर्थन में अपने विचार प्रगट किये। इसी आशय की मांग उन्होंने लोकसभा में अध्यक्ष से भी कई अवसरों पर की है। इस मांग का कारण, लोहिया का एक यह अनुभव रहा कि कई बार लोकसभा के नियमों के चक्कर में अत्यन्त लोकमहत्व के महत्वपूर्ण मसलों को अध्यक्ष के साथ लिखा-पढ़ी करने के बाद भी उन्हें कैसे उठाया जाये- ऐसी कोई सूरत नजर नहीं आती थी। सितम्बर, 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया, लेकिन लोहिया की लाख कोशिशों के बाद भी लोकसभा में युद्ध पर कोई सार्थक बहस न हो सकी। 8 सितम्बर को उन्होंने कहा- "मैं समझता हूँ कि यह लोकसभा उतना ही बड़ा हथियार है, बल्कि ज्यादा बड़ा हथियार है, जितने हवाई-जहाज या टैंक या कोई और चीज, क्योंकि यह हमारा एक हथियार है, जो पाकिस्तान के पास नहीं है।"[68] 10 सितम्बर को उन्होंने फिर कहा- "अभी तक सिर्फ हिन्दुस्तान की तोपें बोल रही हैं, लोकसभा नहीं बोली है।"[69] लेकिन न अध्यक्ष, न सरकार और न अन्य सांसद लोहिया के काल्पनाशील मनोभावों को समझ सकें। कभी-कभी लोहिया इस व्यवस्था की जकड़न में इतने तड़प उठते थे, जैसे कि पिंजरे में बंद तोता; मैं यह गवारा नहीं कर सकता कि इस देश के बारे में गलत बयानी की जाती रहे, छम्ब और जोरिया

के बारे में गलत बयानी करते रहें औ: मैं बैठा सुनता रहूँ और लोकसभा को कीर्मन मंडली बनने दूँ। मैं यह गवारा नहीं कर सकता।

अध्यक्ष : गवारा नहीं कर सकते तो बैठ जाइये।

लोहिया : मैं क्या करूँ।

अध्यक्ष : मैं क्या जबाब दूँ।[70]

इसी तरह के अनुभव काशी विश्वविद्यालय के नामकरण के मामले को लेकर, बम्बई के मजदूरों की हड़ताल के मामले को लेकर लोहिया को हुये थे, तभी उन्होंने रोज आधा घंटे के स्थगन की मांग की, जिस समय में ऐसे मसले उठाये जा सकें।

ध्यानाकर्षण की अपूर्णता :

स्थगन प्रस्तावों को अधिकतर अध्यक्ष द्वारा नामंजूर कर दिये जाने के कारण अविलंबनीय लोकमहत्व के मामले उठाने का एक मात्र तरीका ध्यानाकर्षण प्रस्ताव बचता है। लोहिया के अनुसार- "लेकिन यहाँ हमारी लोकसभा के लोग कहते हैं कि ध्यानाकर्षण में आप मंत्री से खाली सवाल पूछ सकते हैं; उस पर बहस नहीं कर सकते। नतीजा हो रहा हैं- अब या तो तुम अपने सिर को काटों या कोट बढ़ाओं। आखिर यह बच्चों की लोकसभा तो है नहीं, पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है।"[71] लोहिया द्वारा व्यक्त विचारों के प्रकाश में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के स्वरूप में वांछित परिवर्तन कर उसे और अधिक असरदार बनाया जा सकता है।

प्रश्नोत्तर काल : मंत्रियों की झूठ :

लोहिया प्रश्नोत्तर काल में सरकारी मंत्री जिस तरह से पेश आते थे

उसके प्रति बुरी तरह असंतुष्ट थे। उनके अनुसार मंत्री ऐसे जबाब इसलिये दे पाते हैं क्योंकि हिन्दुस्तान की जनता में हंसने की ताकत नहीं रह गई है, अन्यथा यह सरकार जनता की हंसी में खत्म हो जानी चाहिए। मंत्री लोग इत्तला भूले भटके दे दें, नहीं तो संसद का ज्यादा नुकसान नहीं होगा। उन्होंने कहा- "सवाल और जवाब से अनेक बार तो ऐसा लगता है जैसे कोई कुश्ती या पेंच होता है। न दांव पेंच होते हैं या कई तरह के खेलकूद होते हैं वैसे ही सवाल जवाब होते हैं।"[72]

इसके अलावा लोहिया सदन में मंत्रियों द्वारा प्रश्नोत्तर, बयान अथवा कि वहसों में असत्य वादन से काफी परेशान होते थे, लेकिन बड़े धैर्य के साथ सदन में सत्य को प्रगट करने के लिये व्यवस्था के प्रश्नों, अल्प सूचना प्रश्नों, स्थगन या विशेषाधिकारों प्रस्तावों के द्वारा भारी प्रयत्न करते थे। मंत्रियों द्वारा गलत बयानी को सुधारने के लिये लोहिया अक्सर नियम 115 का सहारा भी लेते थे। इन भारी प्रयत्नों के बाद जब मंत्रियों की झूठ पकड़ में आ जाती थी तो वो अक्सर गलती स्वीकार कर बच निकल जाते थे। तभी लोहिया ने गलती और झूठ के बीच फर्क करने के लिये कसौटी बनाने की मांग की। ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स की परंपराओं की याद दिलाते हुये लोहिया ने व्यक्त किया कि इंग्लैण्ड में सदन की गरिमा और शिष्टाचार तब चकनाचूर हो जाते है जब सच को छिपाया या भंग किया जाता है। लेकिन लोहिया ने दुखी होकर प्रगट किया कि "शायद भारत ही एक ऐसा देश है, जिसकी संसद में इतने बड़े पैमाने पर झूठ का बोलबाला है।"[73] ब्रिटेन में प्रोफुमों को इस्तीफा देना पड़ा, इसलिये नहीं कि किसी औरत से उसका अवैध संबंध था बल्कि इसलिये कि वो संसद में झूठ बोला कि ऐसा कोई संबंध नहीं था। 3 जुलाई, 1967 को नवभारत टाइम्स के संपादक

के नाम लोहिया के निजी सचिव द्वारा लिखे पत्र में लोहिया ने लिखवायाः ''जब तब लोकसभा तथा मंत्रीगण यह न समझ लें कि देश में, विशेष रूप से संसदीय लोकतंत्रीय व्यवस्था में, यह आवश्यक है कि हम सत्याचरण को अपने व्यवहार का एक अंग बनायें, और न झूठ बोलें, न झूठ को सहन करें।[74]

लोकसभा में लोहिया ने मंत्रियों की झूठ की पूंछ का पीछा लगातार किया लेकिन सदन में ही विरोधी साथियों के असहयोग और कार्यवाई न हो सकी। तभी लोहिया ने लिखा- ''यहाँ भारत में भी जनता को इस बात से सचेत हो जाना चाहिए कि सच के बिना संसद या संसदीय जनतंत्र में गरिमा और शिष्टाचार आ ही नहीं सकते। आखिर को ''स्वाधीनता का मूल्य शाश्वत सतर्कता ही तो है ''और अपनी संसद के बारे में जनता को शाश्वत सतर्क रहना चाहिए और संसद के अंदर सदस्यों को भी।''[75]

लोकसभा में राज्यों के मामले :

यह देखा गया है कि सरकार राज्यों में व्याप्त अव्यवस्था, भुखमरी और अकाल, दंगे, उपद्रव और गोली बारी जैसे गंभीर मामलों पर लोकसभा में बहस करने में कतराती रहती है, यह कह कर कि ये राज्यों के मामले हैं, इन पर लोकसभा में चर्चा नहीं की जा सकती। लोहिया ने सदैव ही सरकार के इन प्रयासों का लोकसभा में जोरदार विरोध ही नहीं किया बल्कि बहस मंजूर कराने में अध्यक्ष और सरकार का मजबूर भी किया है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण बस्तर हत्याकांड पर लोकसभा में महुये विवाद हैं। लोहिया ने व्यवस्था के सवाल उठाते हुये संविधान की धारायें 244, 47, 256 और 353 का उल्लेख कराते हुये अध्यक्ष महोदय को संतुष्ट करने की कोशिश की, कि इनके अनुसार लोकसभा राज्यों के मामलों पर चर्चा कर सकती है।[76] बाद में इस प्रकार के मामले जब

भी सदन के सामने आये लोहिया ने उन पर चर्चा कराये जाने का भरपूर समर्थन किया है।

अदालत के सम्मुख विचाराधीन मामलों पर चर्चा :

राज्यों के मामलों के अलावा, लोहिया ने मेहसूस किया कि ऐसे मामले जो किसी भी रूप में अदालत के सामने चल रहे हों। कितने ही लोकमहत्व के क्यों न हो, सरकार अदालत के विचाराधीन मामले के बहाने बहस से बचना चाहती है। लोहिया ने सरकार की इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुये, लोकसभा की सर्वोच्चता की रक्षा में, हमेशा अपने तर्कों द्वारा, व्यवस्था के प्रश्नों के जरिये बार-बार कोशिश की है कि अदालत के सम्मुख मामले का जो अंग विचाराधीन है, उसे छोड़कर उससे जुड़े अन्य व्यापक सवालों पर बहस होनी चाहिए। उनके यह प्रयास बस्तर कांड, धर्मतेजा प्रत्यावर्तन आदि के मामले में प्रगट होते हैं।[77] लेकिन इस मुद्दे पर सबसे अच्छे रूप में उन्होंने व्यक्त किया है। 12 जुलाई, 1967 को छोटी सादड़ी स्वर्ण घोटला कांड को लेकर हुये सवाल जवाब के बीच। लोहिया ने कहा- "मैं जो बात कह रहा हूँ वह अभी तक किसी ने नहीं की है कि व्यापक विचाराधीन अथवा सीमित विचाराधीनता है। यह जानना चाहिए सदन को क्या मामला सदन के सामने है? अगर मंत्रीजी खाली यह कह देंगे कि मामला आदलत के विचाराधीन है तो फिर हर मामले में सदन का सारा अधिकार खत्म होता चला जायेगा।"[78]

राज्य विधानसभाओं में बहुमत प्राप्त दल का निर्णय :

संसदीय जनतंत्र में ऐसे मौके कई बार आ सकते हैं कि और आ चुके हैं जब कि लोकसभा एवं राज्यों की विधान सभाओं में सरकार के इस्तीफा

देने के कारण अथवा की सरकार को हटा देने के कारण, अगली सरकार के गठन के बारे में दुविधा की, अनिर्णय की हालत बन जाती है। लोहिया ने ऐसे ही एक अवसर पर, केरल के संबंध में उद्घोषणा लागू रखने के बारे में संकल्प पर 5 नवम्बर,1965 को बोलते हुये कहा- "जनतंत्र में फैसला करने का एक मात्र हक वहीं कि विधानसभा को है। बुलाओं उस विधानसभा को। मौका दो। एक को दो, वह न मंत्रीमण्डल बना सके तो दूसरे को दो। वह भी न बना पाये तो तीसरे को दो।"[79]

ठीक इसी तरह के विचार व्यक्त करते हुये, उन्होंने 30 मार्च, 1967 को पांडीचेरी के मंत्रीमण्डल द्वारा त्यागपत्र देने से उत्पन्न स्थिति पर ध्यानाकर्षण पर बोलते हुये; व्यवस्था के प्रश्न पर कहा- "आप राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति को कब तक अधिकार देते रहेंगे कि वे पता लगाते रहें कि किसकी बहुसंख्या है। यह काम विधानसभा का है। आज अपने देश की स्थिति ऐसी है कि उसका भी अवलोकन करना चाहिए, बहुत लोग हैं जो खरीदे बेचे जाते हैं इस स्थिति को भूल नहीं जाना चाहिए ---।"[80]

संसदीय लोकतन्त्र के विकास में विभिन्न राज्यों के राज्यपाल मंत्रियों एवं राजनायकों का विशेष योगदान रहता है। जो भारतीय राजनीति की छवि को सुधारते व मजबूत करते है। यह प्रसन्नता का विषय है कि डा0 लोहिया के क्रिया-कलाप और उनकी अभिव्यक्ति अन्य नेताओं से अलग थी।

यह प्रसन्नता का विषय है कि अब विभिन्न राज्यों में बहुमत का विवाद उत्पन्न हो जाने पर, राज्यपाल मुख्य मंत्रियों को विधानसभा की बैठक बुलाकर विश्वास का मत प्राप्त करने का निर्देश देकर देश में लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत कर रहे हैं। इसका सबूत नवम्बर, 1990 में केन्द्र में जनता दल के

विभाजन के बाद, विहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों को राज्यपालों द्वारा दिये इस आशय के निर्देशों से मिलता है। इसका एक कारण क्या राज्यपाल और मुख्यमंत्रियों का लोहियावादी होना नहीं है? उदाहरण के लिये उ0प्र0 के राज्यपाल बी0 सत्यनारायण रेड्डी, और मुख्यमंत्री मुलायम सिंह एवं लालू प्रसाद यादव और केन्द्र में नयी सरकार के गठन के बारे में राष्ट्रपति से विचार विमर्श करने वाले लोकसभा अध्यक्ष श्री रविराय।[81] लोहिया अब विचारों के रूप में ही नहीं, अपने अनुयायियों के द्वारा उनका अनुसरण किये जाने के रूप में भी अभिव्यक्त हो रहे हैं। यह देश में लोकतन्त्र के लिये शुभ लक्षण हैं।

डा0 राममनोहर लोहिया के संस्मणों आख्यानों और दृष्टिव्यता अन्य नेताओं से अलग थी। उनका प्रत्येक दृष्टव्य और जीवन की गति सभी नेताओं से अलग थी वो एक अच्छे चिंतक और व्यवहारिक थे क्योंकि उनके विचारों में भारत की राजनीति सर्वोपरि थी। उन्होने ने कभी किसी राजनीति पराकाष्ठा का उल्लंघन नहीं किया वे हमेशा से भारतीय राजनीति को अपना कर्तव्य समझते थे। ये उनके जीवन का मूल मन्त्र था।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. रामसिंह राजपूत, चतुर्थ लोकसभा - आलोचनात्मक अध्ययन, 1974 आगरा विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. उपाधि के लिये शोध प्रबंध, अप्रकाशित। पृ0 318.

2. वही

3. मधुलिमये, समस्याओं और विकल्प, 1982, पृ0 30.

4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्मरण और श्रद्धांजलियां, 1969, पृ0 173.

5. लोकसभा वाद विवाद दिनांक 30 मार्च, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 106 से 119.

6. वही, उपाध्यक्ष की व्यवस्था, पृ0 111.

7. लोकसभा वाद-विवाद, दिनांक 21 अगस्त, 1963, कालम 1873.

8. लोकसभा वाद-विवाद, दिनांक 8 मार्च, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 8, पृ0 60.

9.(अ.) लोकसभा में लोहिया, भाग 9, पृ0 350 पर उद्धत।

9.(ब.) साप्ताहिक दिनमान, नई दिल्ली, दिनांक 7 जनवरी, 1966.

10. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 18 मार्च, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 29.

11. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 17 अगस्त, 1963, लोकसभा में लोहिया, भाग 1, पृ0 9.

12. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 21 अगस्त, 1963, कालम 2194.

13. श्रीकांत वर्मा, महान इतिहास परिवर्तक, सामान्यजन, नागपुर, मार्च 90, पृ0 21.

14. हरिशंकर परसाई, संसदीय लोकतन्त्र पर बढ़ता खतरा, दैनिकभास्कर, जबलपुर, दिनांक 7 अप्रैल, 1991.

15. लोकसभा में लोहिया, भाग 1, पृ0 124 पर उद्धृत.

16. मधुलियमे मुशिंगज आन करेन्ट प्रावलम्स एण्ड पास्ट इवेंटस, 1988, पृ0 181/श्री हुकुमसिंह, तीसरी लोकसभा के अध्यक्ष थे।

17. इन्दर मल्होत्रा, द टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, दिनांक 20 अगस्त, 1988.

18. के0के0शर्मा, स्टेट मेन, नई दिल्ली, दिनांक 3 अप्रैल, 1966.

19 लोकसभा वाद विवाद दिनांक 5 मार्च, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 49, 53 एवं 62, एवं लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 24 दिसम्बर, 64, कालम 6705.

20. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 9 दिसम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 285.

21. वहीं.

22. मधुलिमये, मुशिंगज आन करेण्ट प्रावलम्स एण्ड पास्ट इवेन्ट, 1980 पृ0 179.

23. लोकसभा वाद-विवाद 8 अप्रैल, 1967 लोकसभा में लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 238 एवं पृ0 246.

24. राज्य सभा वाद-विवाद, दिनांक 30 मई, 1967 एवं दिनांक 5 जून, 1967. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 6 जून, 1967 लोकसभा में लोहिया, भाग 14 के क्रमशः पृ0 256, 257 एवं पृ0 131 में उद्धृत। एवं लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 27 जून, 1967, लोकसभा में लोहिया भाग 15, पृ0 43.

25. मासिक जन,संपादक, लोहिया, अक्टूबर, 1966, 'प्रधानमंत्री का मिंककोट' लेख से।

26. वहीं, 'नीति और भ्रष्टाचार' लेख से।

27. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 7 जून, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 14 पृ0 153.

28. वहीं.

29. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 20 जून, 1967, लोहिया ने नागा विद्रोहियों द्वारा सरकारी अफसरों की हत्या पर ध्यानाकर्षण के दौरान कहा- "इन सब चीजों की इत्तला रखना इनका कार्य है" श्री यश्वन्तराव चव्हाण द्वारा लोहिस की माँग पर लोहिया ने कहा- "यह अच्छी तरह से आफ हो जाना चाहिए कि हम लोग- इनके कोई दरबार घर में नहीं रहते हैं बल्कि यह हमारे दरबार घर में है। लोकसभा में लोहिया, भाग 15, पृ0 41.

30. बदरी विशालपित्ती, लोकसभा में लोहिया, भाग 13 की भूमिका से।

31. लोहिया, समदृष्टि, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, पृ0 5.

32. वही।

33. वहीं, पृ0 32.

34. वहीं, पृ0 42.

35. बदरी विशाल पित्ती, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, भूमिका से।

36. रजनी कोठारी, पोलीटिक्स इन इंडिया, ओरियन्ट लोंगमेन, 1986, पृ0 208.

37. वहीं, पृ0 211 एवं 212.

38. लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तीसरी एवं चौथी लोकसभा की स्मारिकायें।

39. लोहिया, समदृष्टि, पृ0 31.

40. दामोदर जटकार, 'ए स्टडी आफ द अपोजीशन इन द फोर्थ लोकसभा' 1977, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, पी0एच0डी0 उपाधि के लिये प्रकाशित शोध प्रबंध। पृ0 205.

41. वहीं, पृ0 210.

42. रामसिंह राजपूत, चतुर्थ लोकसभा-- आलोचनात्मक अध्ययन, पृ0 208.

43. सी0पी0 शर्मा, भारतीय संसद में विपक्ष की भूमिका, (62-67), आगरा विश्वविद्यालय, पी0एच0डी0 उपाधि के लिये स्वीकृति शोध प्रबंध, अप्रकाशित, पृ0 227.

44. रामसिंह राजपूत, चतुर्थ लोकसभा-आलोचनात्मक अध्ययन, पृ0 244-45.

45. रामधारी सिंह दिनकर, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, पृ0 173.

46. देखिये लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 8 नवम्बर, 1965, 1 दिसम्बर, 1965, 10 दिसम्बर, 1965 क्रमशः श्री हाथी, एस. बहादुर एवं श्री शास्त्री के

उद्‌गार। एवं श्री देखिये लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 7 जून, 1967 सामान्य बजट पर बहस में श्री हानुमथैध्या और श्रीमती तारकेशवरी सिन्हा द्वारा लोहिया की प्रशंसा/26 जुलाई, 1967 वित्त विधेयक पर बहस के दौरान मोरारजी भाई देसाई।

47. मधुलिमये, संक्रमण कालीन राजनीति, पृ0 78.

48. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 21 अगस्त, 1963, लोकसभा में लोहिया, भाग 1, पृ0 31.

49. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 4 मई, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 299.

50. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 16 सितम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 30.

51. लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 381.

52. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 28 अप्रैल, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 5, पृ0 254.

53. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 10 दिसम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 308.

54. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 16 मार्च, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 24-25.

55. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 13 जुलाई, 1967.

56. रामधारी सिंह दिनकर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि उनसे बातचीत के

दौरान एक दिन लोहिया ने कहा था ''तुम क्या समझते हो उतने दिनों तक मैं जीने वाला हूँ? मेरी आयु बहुत कम है, इसलिये जो बोलता हूँ, उसे बोल लेने दो।''

संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, पृ0 175.

57. द टाइम्स ऑफ इंडिय, नई दिल्ली, दिनांक 9 सितम्बर, 1958.

58. लोहिया, संसदीय आचरण, मासिक मेनकांइड, अक्टूबर, 1958.

59. वहीं.

60. लोकसभा में लोहिया भाग 4, पृ0 246.

61. वहीं, पृ0 260.

62. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 9 अप्रैल, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग, 5, पृ0 172.

63. मधुलिमये, पोलीटिक्स आफ्टर फ्रीड्य, 1982, पृ0 304 से 315.

64. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 24 नवम्बर, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 12, पृ0 196.

65. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 17 मार्च, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 10.

66. लोहिया, संसदीय आचरण, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1958, पृ0 6.

67. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 7 सितम्बर, 1964, लोकसभा में लोहिया, भाग 4, पृ0 21. साथ ही लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 8 नवम्बर, 1966 एवं 9 नवम्बर, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 12, पृ0 80 एवं 93

पर लोहिया के लोकसभा के बारे में व्यक्त विचार दृष्टव्य हैं।

68. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 8 सितम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 12.

69. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 10 सितम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 14.

70. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 14 सितम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 18-19.

71. साप्ताहिक दिनमान, नई दिल्ली, दिनांक 12 अगस्त, 1966.

72. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 17 अगस्त, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 11, पृ0 94.

73. लोहिया, अंग्रेजी मासिक, मैनकांइड, अगस्त, 1967.

74. पत्र लोकसभा में लोहिया, भाग 15 के पृ0 305 पर उद्धृत।

75. लोहिया, मासिक मैनकांइड, अगस्त, 1967.

76. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 28 मार्च, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 8, पृ0 181-182.

77. लोकसभा में वाद-विवाद दिनांक 30 मार्च, 1966, लोकसभा में लोहिया, भाग 8, पृ0 218 एवं लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 25 जुलाई, 1967 लोकसभा में लोहिया, भाग 15, पृ0 180.

78. लोकसभा वाद-विवाद दिनांक 12 जुलाई, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 15, पृ0 102.

79. लोकसभा वाद-विवाद, दिनांक 5 नवम्बर, 1965, लोकसभा में लोहिया, भाग 6, पृ0 92.

80. लोकसभा वाद-विवाद, दिनांक 30 मार्च, 1967, लोकसभा में लोहिया, भाग 13, पृ0 99.

81. राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर की सलाह पर नौवीं लोकसभा भंग कर दी है। और दसवीं लोकसभा के लिये मध्यावधि आम चुनाव मई, 1991 में संपन्न हो रहे हैं, 5 जून, 1991 तक दसवीं लोकसभा का गठन पूर्ण जो जायेगा।

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दुस्तान में अंगेजी साम्राज्य के खिलाफ चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन को अंग्रेजी पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के संभ्रात लोगों के नेतृत्व से मुक्त करा कर महात्मा गांधी ने उन लोगों को सौंप दिया था जिनके ऊपर हिन्दुस्तान की साधारण जनता भरोसा कर सकती थी और जिसके समर्थन के कारण ही अंग्रेज आखिर में भारत छोड़कर चले गये। महात्मा गांधी के द्वारा इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन में बदल देने की मुहिम को सर्वाधिक मुखर और सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था। 1934 में गठित कांग्रेस समाजवादी पक्ष के नेताओं और कार्यकर्ताओं द्वारा। असल में राष्ट्रीय आंदोलन के आधार को विस्तार देने के काम में सफलता का क्षेत्र समाजवादियों को ही जाता है। इसके लिये उन्होंने आजादी के साथ आर्थिक आजादी नजरिये समाजवाद का लक्ष्य घोषित कर राष्ट्रीय आंदोलन की धारा से अभी तक छूटे हुये तबकों; किसान, मजदूर, और छात्रों को उसमें शामिल किया। उन्होंने किसान, मजदूर, और छात्रों को अपने कार्य और विचारों के द्वारा संगठित किया और उनके संगठन को जरूरत पड़ने पर स्वतन्त्रता आंदोलन में हरावल दस्ते के रूप में झोंक दिया। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन आखिरकार समाजवादियों द्वारा 1934 के बाद से किये कार्यों का सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

डा0 राममनोहर लोहिया का विशिष्ट योगदान इन नौजवान समाजवादियों को विचार दृष्टि और संकल्प प्रदान करने और उन्हें प्रशिक्षित करने के रूप में प्रगट होता है। इसके अलावा समाजवादियों के बीच डा0 लोहिया अपने

गैर मार्क्सवादी समाजवादी की प्रसिद्धि के कारण कुछ अपने स्वभाव की सरलता और निर्भीकता के कारण और सबसे अधिक अपने सिद्धांतों के खातिर कितनी भी तकलीफ सहन करने की तत्परता और निड़रता के कारण, गांधीजी के अत्यन्त प्रिय थे। इन दोनों के बीच के आत्मीय और मधुर संबंध, राष्ट्रीय आंदोलन में राममनोहर लोहिया अध्यक्ष में भली भांति प्रगट होते हैं। तभी डा0 लोहिया स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के संवेदनशील महत्वपूर्ण दिनों में गांधी के साथ हर मोर्चे पर मुस्तैवी के साथ खड़े दिखाई देते हैं। चाहे वो देश के विभाजन के विरोध का सवाल हो चाहे विभाजन के आसपास कूट पड़ें हिन्दु मुस्लिम दंगों को कलकत्ता और दिल्ली में शांत कराने का कार्य हो। आजादी के बाद गांधी की वाणी को लोहिया ने अपनी जुबान से बोला-यह गांधी का सबसे बड़ा प्रभाव था लोहिया पर। और लोहिया की विशिष्ठिता यह रही कि उन्होंने गांधी के अमूर्त सिद्धान्तों को मूर्त स्वरूप प्रदान किया, यह लोहिया के विचार के अन्तर्गत प्रगट हो जाता है।

गांधी ने जिस तरह राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन बनाया, लोहिया ने आजादी के बाद संसदीय लोकतन्त्र को वास्तविक अर्थों में उसे जनता तक पहुंचाने का कार्य किया है। चाहे वो आजादी की लड़ाई को या फिर आजादी के बाद प्राप्त राजसत्ता और लोकतन्त्र, उसे बिखेर कर उन लोगों के पास पहुंचा देना जिनकी वजह से ही आजादी प्राप्त हुई थी और जिनके लिये ही आजादी प्राप्त हुई थी। तुम्हारे प्रयासों से आई आजादी को तुम्हीं संभालों यह लोहिया का इस देश में लोकतन्त्र के लिये सबसे बड़ा योगदान है।

उनके इस एक महान कार्य ने देश में आजादी और लोकतन्त्र को सुरक्षित कर दिया है। क्योंकि विदेशी शासन के दौरान देश में बहुत गरीबी और

गैर बराबरी पैदा हो गई थी। इस गरीबी और गैर बराबरी ने समाज के बहुसंख्यक तक को कुंद, कमजोर और निष्क्रिय बना दिया है। इसी कारण आजादी के बाद भी ताकतवर और चालाक वर्गों ने देश में शोषण और लूट का तंत्र खड़ा कर लिया। इस तंत्र की समाप्ति और देश में लोकतन्त्र की मजबूती तभी संभव है जब ये कुंठित और कमजोर लोग उत्साहित, संगठित और सक्रिय हों। सत्ता में इनकी हिस्सेदारी हो तभी देश की सुरक्षा और अखंड़ता की रक्षा से इनका लगाव पैदा हो। इस प्रकार इनके आगे बढ़ने से देश आगे बढ़ेगा। लोहिया ने अपने विचार और कार्यों द्वारा-ये असंभव सा लगने वाला कार्य संभव कर दिखाया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दसवीं लोकसभा के मध्यावधि चुनावों (मई-1991) के लिये जारी विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा घोषणा पत्र और उम्मीदवारों की सूचियां हैं। जिनमें दलित और पिछड़े वर्गों को आगे बढ़ाने के लिये विशेष अवसर प्रदान करने की घोषणा की गई है। साथ ही सभी राजनैतिक दलों ने अपने अधिकतर उम्मीदवार भी इन्हीं वर्गों से खड़े किये हैं। ये लोहिया के विचारों के अनुरूप हैं। अपने इन्हीं विचारों के अनुरूप लोहिया ने सदैव ही चाहा कि देश की संसदीय संस्थायें; संसद और विधायिकायें जनता के सुख-दुख का आईना बनें। देश में अकाल हो, मजदूरों या कि विद्यार्थियों पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज और गोलीबारी हो, सड़कों पर असुरक्षा, असंतोष हो, देश में अव्यवस्था हो, घरों में अभाव हो तो लोकसभा का काम जनता के घावों पर मलहम लगाने का होना चाहिए। उसे इतना निष्ठुर नहीं होना चाहिए कि देश जले और उसकी आंच लोकसभा में न महसूस हो। क्योंकि लोकसभा की शोभा और गरिमा तभी सुरक्षित हो सकती है जब देश में शांति और सुरक्षा हो। लोहिया की यह इच्छा न तो नयी थी और न ही अजीब। संसदीय लोकतन्त्र के लिये आदर्श संसद मानी जाने वाली इंग्लैण्ड की

संसद में वहां के विख्यात प्रधानमंत्री श्री चर्विल ने भी इसी तरह के विचार प्रगट करते हुये 24 अगस्त, 1945 को हाउस आफ कामन्स में कहा- "यह सदन मात्र विधान बनाने की मशीन नहीं है। यह वाद-विवाद का मंच है- यदि यह सदन उन सभी बातों पर विचार विमर्श नहीं कर पाता जो सारे देश में चर्चित हैं, अखबार जिनसे भरे पड़े हैं, हर एक जिसके बारे में चिंतित हैं तो फिर यह सदन देश में चल रहे विचारों के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकता।" एक अन्य जगह उन्होंने कहा है- "हमारी संसद जीवित रह सकी क्योंकि उसने अपने आप को सरकार का नहीं बल्कि जनता का प्रवक्ता बना लिया था।"(चर्चिल के भाषण, भाग 8, न्यूयार्क, 1983, पृ0 314)

लोहिया की इच्छा और प्रयास भी यही थे कि हिन्दुस्तान की संसद यहाँ की जनता की प्रवक्ता बने, सरकार की नहीं। असल मं लोकसभा में लोहिया और उनके समाजवादी साथियों द्वारा उठाये गये जनान्मुखी मुद्दे, और उन्हें उठाये जाने के लिये किये गये अथक प्रयास और इस प्रक्रिया में झेली अध्यक्ष की प्रताड़नायें और संभ्रात लोगों के लांछन; उनकी इस दशा में की गई कोशिशों के प्रत्यक्ष गवाह हैं।

लोकसभा में लोहिया द्वारा सरकार पर और भ्रष्टाचार पर किये गये प्रहारों को उनके द्वारा देश में सादगी और मितव्ययता के गांधी के आदर्शों की पुनरस्थापना और देश में मजबूत विरोध पक्ष की स्थापना के प्रयासों के रूप में देखा जाना चाहिए। हमने लोकतन्त्र अंगीकार किया है, इसलिये वैकल्पिक दल होना ही चाहिए। एक दलीय लोकतन्त्र हो ही नहीं सकता इसलिये वैकल्पिक दल खड़ा करने और सत्ता पर कांग्रेस के एकाधिकार को समाप्त करने की लोहिया की कोशिशों लोकतन्त्रीय समाजवाद रूपी लक्ष्य को प्राप्ति की दिशा में बढ़ाये आवश्यक

कदम थे। लोकसभा में लोहिया के रचनात्मक कार्यों में हिन्दुस्तान की खेती की दशा सुधारने में उनके द्वारा पानी, सिंचाई, बिजली, उर्वरक आदि साधनों के उचित विकास के मामले उठाये जाने के रूप में प्रगट होते हैं। राष्ट्र की आय का और बिजली के उत्पादन का आधा भाग ग्रामीण क्षेत्र को दिया जाये, यह आग्रह भी लोहिया ने सर्वप्रथम लोकसभा में किया था। खर्च पर सीमा, चौखंबा राज्य, दाम नीति और भूमि सेना जैसे निर्माणकारी रचनात्मक विचार लोहिया ने लोकसभा के माध्यम से दिये हैं।

विश्व संसद, विश्व सरकार और विदेश नीति के लक्ष्यों में निशस्त्रीकरण के साथ निदरिद्रीकरण को जोड़ देने का अभिनव सुझाव भी उन्हीं का दिया हुआ है।

लोकसभा के भीतर हो या बाहर, लोहिया के प्रखर रूप के पीछे मनुष्य की प्रतिष्ठा की मांगें बोलती थी। स्वेतलाना के सवाल को उन्होंने जिस तरह राजनीति बनाम मनुष्यता के प्रश्न में परिणत कर दिया, उसने कम से कम एक दिन के लिये तो राजनीति के सारे संसार के मन में घृणा पैदा कर ही दी। लोहिया सभा चतुर या कि संसद निपुण नहीं थे। यदि होते तो सरकार को घेरने के लिये चक्रव्यूह रचते। लेकिन लोहिया सत्ता धारी दल को घेरते नहीं थे, उस पर सीधे-सीधे बार करते थे। सरकार को गिराने का सबसे अधिक होसला और शक्ति लोहिया के पास थी, और चौथी लोकसभा में मात्र तीस सदस्यों के विरोध पक्ष में आने का सवाल था, मगर लोहिया कोई चक्रव्यूह न रच सके। इसका कारण यह था कि लोक जीवन के किसी प्रश्न पर बोलते समय वे केवल एक राजनेता नहीं रह जाते थे, बल्कि एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रश्न के

मानवीय पहलुओं का उजागर कर सरकार से उन्हें हल करने के लिये कई बार तो मनुहार तक करते थे।

भ्रष्टाचार के मुद्दों पर आग उगलने वाला व्यक्तित्व, मानवीय और देश के निर्माण के सवाल पर सरकार से प्रार्थना करते दिखाई देता था।

लोहिया ने कला का रूप दे दिया था, तभी लोकसभा में उनके भाषण के समय दर्शक दीर्घायें और प्रेस गैलरी भरी रहती थीं। मंत्रियों के साथ कांग्रेसी सदस्य खासतौर पर उनके भाषण सुनने सदन में मौजूद रहते थे। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उनके भाषणों की सीख के आधार पर ही 1971 के चुनाव में गरीबी हटाओं का नारा देकर और समाजवादी कार्यक्रमों को लागू किये जाने की घोषणा कर, समाजवादी और साम्यवादी दलों के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। और आज की हिन्दुस्तान की राजनीति में, विचारों की दृष्टि से 'सामाजिक न्याय' और 'धर्म निरपेक्षता' के नारों के रूप मं हिन्दुस्तान के अन्य राजनेताओं की तुलना में लोहिया, डा0 अंबेडकर के साथ सर्वाधिक चर्चा का विषय बन चुके हैं। जनता दल के नेता और भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने खुले आम लोहिया की नीतियों पर चलने की घोषणा की है तो वर्तमान प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर ने भी लोहिया के बताये मार्ग पर चल कर देश के शोषण की व्यवस्था और गरीबी हटाने का जनता से वायदा किया है।

यह हिन्दुस्तान का सौभाग्य है कि उसे लोहिया जैसा प्रतिभाशाली मौलिक विचारक, सिद्धांत और कर्म में एक रूपता का धनी, विलक्षण स्वतंत्रता सेनानी और महान सांसद प्राप्त हुआ। जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति में और स्वतंत्र भारत में लोकतन्त्र की सही रूप में प्रतिष्ठा में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। श्री मधुलिमये ने उनके योगदान का आकलन करते हुये, सही ही कहा है-

''इतिहास के परिप्रेक्ष्य में, मुझे कोई शंका नहीं है कि आधुनिक भारत के लिये योगदान में लोहिया का योगदान, केवल गांधी के बाद दूसरे नंबर पर माना जायेगा।''

डा0 राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं विचारधारा सवसे अगल थी। उनके विचारों में संसद और संसदीय गरिमा की बनायें रखना उनके व्यक्तित्व का प्रमुख आचरण था। आज की पीढ़ी भी लोहिया के विचारों और उनकी भावनाओं को अपने जीवन में उतारती है। उन्होंने हमेशा ही भारत के जनकल्याण के लिये सोचा जिससे भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वच्छ व सुन्दर जीवन जी सके और संसदीय आचरण को अपने जीवन में उतार कर एक आदर्श नागरिक़ बन कर देश की रक्षा कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डा0 राम मनोहर लोहिया द्वारा स्वरचित

1. मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिस्म, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963.

2. व्हील आफ हिस्ट्र, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963.

3. समाजवादी आंलोदन का इतिहास, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969.

4. भारत विभाजन के दोषी, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970.

5. दि मिस्ट्री आफ सर स्टीफर्ट क्रिप्स, पद्मा पब्लिकेशन, बम्बई, 1942.

6. एन इन्टरवल ड्यूरिंग पोलीटिक्स, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1965.

7. द स्ट्रगल आफ सिविल लिबर्टीज, द फोरेन डिपार्टमेंट, ए.आई.सी.सी., इलाहाबाद, 1936.

8. नागरिक स्वाधीनता, साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, कलकत्ता, 1936.

9. देश विदेश नीति कुछ पहलू, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970.

10. देश गरमाओं, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970.

11. भारत में समाजवाद, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973.

12. समाजवाद की अर्थनीति, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973.

13. समाजवाद की राजनीति, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969.

14. समलक्ष्यः समबोध, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973.

15. समदृष्टि, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970.

16. सात क्रांतियाँ, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973.

17. जातिप्रथा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1964.

18. लैंगवेज, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1986.

19. सिविल नाफरमानी, सिद्धांत और अमल, सोशलिस्ट पार्टी हैदराबाद, 1957.

20. विल टू पावर, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956.

21. (अ.) फ्रेगमेंटस आफ वर्ल्ड माइंड, मैत्रयानी कलकत्ता,

(ब.) भारत, चीन और उत्तरी सीमायें, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1965.

22. किसान समस्या और चौखम्बा राज, रंजन प्रकाशन, इलाहाबाद,

23. प्रधानमंत्री पर प्रतिदिन 25000 रूपये व्यय, कौटिल्य प्रकाशन, दरभंगा, 1963.

24. अन्न समस्या, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963.

25. सुधरों या टूटो, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971.

26. इलेक्शन लाज एण्ड प्रेक्टिसेज इन इंडिया, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1957.

27. संसदीय आचरण, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1958.

28. अध्यक्ष का भाषण, सोशलिस्ट पार्टी पचमढ़ी सम्मेलन, 1952.

29. अध्यक्षीय भाषण, सोशलिस्ट पार्टी, हैदराबाद, स्थापना सम्मेलन, 1955.

30. लेटर्स टू पार्टी एक्टी विस्टस्, 1954.

जीवन चरित्र :

31. रजनीकांत वर्मा, लोहिया, रश्मि प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969.

32. इन्दुमति केलकर, लोहिया (कर्म और सिद्धांत), शक्ति प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, 1983.

33. ओंकार शरद, डा0 राममनोहर लोहिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969.

34. ओमप्रकाश दीपक, असमाप्त जीवनी, समता विद्यालय न्यास, बम्बई, 1978.

संपादित :

35. ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969.

36. लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, राममनोहर लोहिया स्मारक समिति, लखनऊ, 1984.

37. विनोद सुनीलम, समाजवादी आंदोलनः तनाव का दौर, प्रतिपक्ष प्रकाशन, दिल्ली, 1986.

38. विनोद प्रसाद सिंहः सुनील मिश्र, समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज (1934-54), प्रतिपक्ष प्रकाशन, दिल्ली, 1986.

39. नारायण देसाई, कांतिशाह, जयप्रकाश अमृतकोष, नई दिल्ली, 1982.

40. सिलेक्टेड़ वर्क्स आफ जवाहर लाल नेहरू,

41. वन्य आफ लेटर्स

42. रमामित्र, लोहिया थ्रू लेटर्स, नई दिल्ली, 1983.

43. लोकसभा में लोहिया, -1, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971.

44. लोकसभा में लोहिया, -2, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1972.

45. लोकसभा में लोहिया, -3, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1972.

46. लोकसभा में लोहिया, -4, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973.

47. लोकसभा में लोहिया, -15, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1986.

48. लोकसभा वाद-विवाद, कार्यवाही वृतांत, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 13 अगस्त, 1963 से लेकर 12 अगस्त, 1967 तक के सत्र।

49. सेन्ट्रल लेजिंस्लेटिव असेंबली डिवेट,

50. लोकसभा सचिवालय नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तीसरी एवं चौथी लोकसभा की स्मारिकायें।

शोध प्रबंध :

51. डा0 एन0सी0 मेहरोत्रा, पोलीटिक्ल एण्ड सोशल आडियालाजी आफ डा0 लोहिया, आगरा विश्वविद्यालय, (अप्रकाशित)

52. डा0 यतीन्द्र नाथ शर्मा, डा0 लोहियाः अर्थदर्शन, प्रकाशित चित्रा प्रकाशन, कानपुर, 1879.

53. डा0 सी0पी0 शर्मा, भारतीय संसद में विपक्ष की भूमिका (62-70) आगरा विश्वविद्यालय, अप्रकाशित, 1979.

54. डा0 दामोदर जटकार, ए स्टडी ऑफ द अधोजीशन इन फोर्थ लोकसभा, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1977. अप्रकाशित।

श्री मधुलिमये द्वारा रचित ग्रन्थ :

55. चौखम्बा राज एक रूपरेखा, समता प्रकाशन, कलकत्ता, 1973.

56. पोलीटिक्स ऑफटर फ्रीडम, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1982

सोशलिस्ट पार्टी के प्रकाशन

57. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी चुनाव घोषणा पत्र, 1967, रामसेवक यादव, 179, साऊथ ऐवेन्यू, नई दिल्ली

58. रिपोर्ट आफ कनवेंशन, पंचमढ़ी, 1952

59. राज्यपाल बनाम संसदीय आचरण, संसोया व कम्यूनिस्ट विधायक दल द्वारा प्रकाशित, जयपुर, 1966

अन्य ग्रन्थ :

60. रामानंद मिश्र, समाजवाद के आर्थिक आधार, लहरिया सराय, 1969.

61. रामधारी सिंह दिनकर, संस्मरण एवं श्रद्धांजलियां, पटना, 1969.

62. प्रो0पी0सी0 शर्मा, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन और संवैधानिक विकास, ग्वालियर

63. जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी

64. पटटाभिसीता रमैया, हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस भाग-1

CHINA, MONGOLIA AND TAIWAN

और उसकी व्याख्या में भी। फिर भी, इन तीनों के पत्रों में विशेषतया व्यक्तिगत पत्रों में अद्भुत सम्मोहकता है, उर्वर कल्पना है और एक तरह की कविता है।

डॉ. लोहिया सिद्धांत वाली तथा आधार वाली पार्टी के लिए बराबर बेचैन रहे थे। हिंदी के प्रति उनमें गहरी आस्था थी। यहाँ वे पूरे बुजुर्ग होने का एहसास कराते हैं। वे दूसरों को अपना जैसा मानकर चिंतित हैं। कर्तव्यबोध उनमें गहराया हुआ है। वे पत्रों में यह सिद्ध करते हैं कि उस विलक्षण व्यक्ति का विचार-क्षितिज कितना व्यापक था और कितना बड़ा था उनके राजनीतिक कर्म का कैनवास। किंतु डॉ. लोहिया को पढ़ना और उनके साथ जीना कभी भी अतीत या वर्तमान में बँधकर नहीं हो सकता। वे आपको वर्तमान से अतीत में ले जाते हैं और अतीत से भविष्य में। उभरती हुई प्रवृत्तियों को व्यापक संदर्भ में देखने और समझने का उनका प्रयास स्वाभाविक ही इन प्रवृत्तियों की भावी सम्भावनाओं को भी पहचान लेता था। वर्षों बाद इन पत्रों को पढ़ने से लगता है कि सोच में औरों से बहुत आगे होने के कारण लोहिया, ज्योतिषी न होते हुए भी कितने सटीक भविष्यवक्ता थे।[1] यहाँ इल्ली या इला या इलारानी या रमा मित्रा[2] को लिखे पत्रों से उनके व्यक्तित्व का एक पारिवारिक तथा घनिष्ठतम मित्र का चित्र उभरता है। डॉ. लोहिया अक्सर अपना कार्यक्रम प्रो. रमा मित्र को भेजते रहे थे। जैसे उनके हैदराबाद से लिखे 28-3-57 के पत्र से पता चलता है।

उनका बनारस का कार्यक्रम 10 व 11 अप्रैल का है। वे सारनाथ होटल में ठहरेंगे। 10 व 11 अप्रैल को वे फुरसत में हैं। 27 अप्रैल को वे आगरे होंगे और 29 अप्रैल को मथुरा। यह पत्र उन्होंने तथा प्रो. रमा मित्रा ने 1957 के चुनाव में हारने की याद ताजा करते हुए लिखा था। यदि वह भी आए तो जयनाथ (बनारस का प्रमुख समाजवादी नेता) को लिए ताकि वह उसके लिए भी सारनाथ होटल में एक कमरा बुक करा दे (पता—जयनाथ—काशी विद्यापीठ—बनारस)।

डॉ. लोहिया के दो पत्र उनके गहन व्यक्तिगत रुझान तथा चिंता (जैसे ओंकार को बाध्य करो घूमने के लिए) को व्यक्त करते हैं।

डॉ. लोहिया अपना कार्यक्रम इस प्रकार अलग-अलग भी लिखते थे—

मेरा संभावित कार्यक्रम—

(1) मैं उड़ीसा 12 व 13 को छोड़ूँगा और तब हैदराबाद।

(2) मैंने कुछ समय औरंगाबाद या मांडू में बिताने का विचार किया है—23 व 30 के मध्य। यदि राजस्थान कार्यक्रम यथावत रहता है।

(3) कदाचित् 15 व 25 जुलाई के मध्य आबू।

1. लोहिया : पत्रों के आईने में यादों के अक्स : लाडली मोहन निगम : धर्मयुग, जनवरी, 1984, पृ. 40
2. " 'Ela' or 'Ila' is the name by which I am called at home and Doctor Saheb also used to call me or write to me by that name, the rest are variations of the same names 'Ila' or 'Roma' "—Preface zin Lohia through letters, p. 2.

STONE LEGEND
KHAKUM WOOD
GREENWICH, CONNECTICUT

[illegible]

प्रिय रमानी,

सवेरे का खाना कान्स्टन्स के साथ खाया। डोरोथी का नॉर्मन के साथ था। साथ पहुंचाने आई लेकिन रुकी नहीं। रुकना चाहिये था।

तीन तारीख को मैं लिवरपूल से जा रहा हूं। ८ को इंग्लिस्तान। अभी तक का जो कार्यक्रम है उसके मुताबिक जून २८ आइरिस तक दिल्ली।

तुम्हारे टेलीफोन बात से ऐसा लगा कि तुम ३०/६ जून को दिल्ली पहुंच जाओगी। तुमको ऐसा करना नहीं चाहिये। घर तुम्हारा है। तुम उसको बन्द कर सकती हो। तुम किसी को निकाल सकती हो।

अगर मैं कभी बातचीत में अलग राय बताता हूं तो तुम को विचार-स्वाधीनता लेना चाहिये।

असल बात है कि तुम अपनी अवस्था अनिश्चित समझती हो। तुम निश्चित। तुमसे ज्यादा निश्चित दुनिया में कौन है?

तुम्हारा
राममनोहर

LUCKNOW
15th July, 1957

LIVE LONG STOP NO LETTER CAUSING ANXIETY

—RAMMANOHAR

40

HYDERABAD
31st August, 1959

Dear Elli,

What a bad luck. I expected you at the Gorakhpur railway station and for three days afterwards. It would have been one of the finest sightseeing Lumbini[1] and Kusinagar[2] in one combination. My letter to you was obviously lost either in despatch or at your end.

I have so much to tell you. But I must hold myself. Except—to tell you that you must not worry. There is no harm in travelling without exchange permits or admission letters. Everything will get done, even if it is after you are there.

Send the enclosed letter to Peter by air mail and be ready to send him necessary telegrams.

I don't know whether you can travel before the 16th of Sept. On that day, Patna is a must. If it is before that, I will be in Purnea on 5th and Dhanbad on 12th.

I will be in Calcutta between 7th and 11th Sept. Could you telephone. I will let you know where.

Yours
Rammanohar

1. Birthplace of Buddha.
2. Where Buddha died.

AMBASSADOR
16, BOULEVARD HAUSSMANN
PARIS 9e
(OPERA)
ADR. TEL AMBASSOTEL · PARIS

15 June

Dear Ramli

I am so tired and so homesick & such mortification that I might arrive any day

Yours
Rammanohar

हैदराबाद
4 अक्तूबर

प्रिय ईलारानी,

तुम पत्र कम लिखती हो। जब डॉक्टरी चल रही हो तब तो खास तौर से ज्यादा लिखना चाहिए। वैसे भी तुमको मेरे साथ किसी मामले में बराबरी नहीं चलानी चाहिए। मेरी तबियत कोई बहुत अच्छी नहीं रहती। इसलिए तबियत पर ज्यादा बोझ नहीं डालना चाहिए।

"मैनकाइंड" और जन का काम अपनी समझ और इच्छा के अनुसार तुमको हमेशा बढ़ाते रहना चाहिए। नए लोगों से मिलते रहना चाहिए। कैसे? यह सोशल वर्क का प्रोफेसर है न, उसके जाएए, एक उदाहरण दिया मैंने। ऐसे ही दूसरे उदाहरण खुद सोचो।

टेलीफोन का ज्यादा इस्तेमाल करो। देशपांडे[1] जैसे मास्टर नुरुद्दीन कबाड़ी यूनियन का है, जामा मस्जिद। ओंकार[2] को बाध्य करो, इधर-उधर घूमने के लिए। दिल्ली में अगर कोई कमिटी बन जाती तो अच्छा होता।

मैं बहुत करके हवाई जहाज से पंद्रह को पहुँच जाऊँगा नहीं तो रेल से या सोलह या सत्रह। बीस के पहले का किसी को बताना नहीं है, ओंकार[3] की बात अलग है। अगर अभी तक बीस या इक्कीस की सभा के बारे में बात नहीं हुई है, तो अब मत करना। सभा का पहले से प्रचार होना चाहिए।

निखिल[4] से हाथ का लिखा न्याय सभावाला ले लेना। उसकी एक कापी यहाँ समाजवादी युवक सभा के लिए चाहिए थी। अभी तक नहीं आई। हो सके टेलीफोन करना।

तुम्हारा
राममनोहर

व्यक्तिगत पत्रों में डॉ. लोहिया व्यावसायिक बातें भी लिखते थे। वे साहित्यकारों का भी सहयोग लेते थे। वे पत्र में लिखी बातों से दुःख न पहुँचे, इससे भी जिसे पत्र लिखा है, उसे समझाते रहते थे। इन्हीं बातों से जुड़ा उनका एक पत्र द्रष्टव्य है—

हैदराबाद
20 सितंबर, '62

प्रिय इल्टू रानी,

अभी स्कूल के लिए नागार्जुन सागर जा रहा हूँ। सवेरे का वक्त है। कल रात को तुमको लिखना चाहता था कि करुणेश[5] जैसे खतों को पढ़कर दुखी मत होना।

हिंदी में चार छोटी किताबें निकल चुकी हैं। इन्दुमती[6] की किताब अक्तूबर में निकल जाएगी। मार्क्स गांधी वगैरह आधी छप चुकी हैं। बद्री विशाल[7] को जोश चढ़ा है।

---

1. पुरी से दिनांक 6 जून, 1958 को लिखे दल से
2. पुरुषोत्तम देशपांडे, मराठी लेखक
3. ओंकार शर्मा, दिल्ली के एक समाजवादी
4. निखिल मित्र, रमा के मित्र, पूर्व साम्यवादी
5. समाजवादी कवि, लखनऊ
6. केलकर, पुणी

जो तुमको छपी, साइक्लोस्टाइल, टाइप चीजें मिलें, उनका जैसा तुम चाहो प्रयोग करना। चाहे रखे रहना, जब कोई देशी या विदेशी माँगे तो देना।

निखिल चक्रवर्ती[1] से बात करना। तै करना कि वह क्या करेगा और उसके क्या अधिकार होंगे।

नेताजी को चाहिए कि जैसे वह कोका कोला रखते थे, एक शीशेवाली छोटी अलमारी में अपनी किताबें रखें और बेचें। पचीस या तीस सैकड़ा कमीशन। अगर डीपो जैसा दिल्ली में बना लें तब एडवांस देने की जरूरत नहीं रहेगी।

राममनोहर

डॉ. लोहिया को अपने संगी-साथी की निरंतर चिंता बनी रहती थी। वे दुनियादारी भी पत्रों में निभाते थे। वे सलाह भी देते हैं कि कभी किसी के द्वारा मिली बात को अंतिम मानकर नाराज होने की आवश्यकता नहीं है। वे अपने पत्रों में निर्देश भी देते रहते थे कि मधु से कहो कि बोले, लिखे और जगह-जगह जाए। उनका एक ऐसा ही पत्र प्रस्तुत है—

बैंगलूर, 6-3-63

प्रिय रमा,

अबकी बार न जाने क्यों तबियत कम ठीक रही। और मन ज्यादा खराब रहा। मेरा बस चले, मैं सभी दोस्तों को एक बात जम कर समझाऊँ।

हर बिदाई को आखिरी समझते बिछुड़ना चाहिए। कौन जाने! हर मुलाकात को अनोखी समझते मिलना चाहिए। तभी ज्यादा आनंद मिलता है।

जो तुमने मधु[2] के बारे में लिखा, तुम्हारी तबियत हो उसको एक खत लिखना। आदमी को अपना कर्तव्य करते रहना होता है। वहाँ भी जहाँ उसकी कदर न हो। अगर वहीं अपना कर्तव्य करता है जहाँ उसकी कदर होती है, तब वह आदमी किस काम का! अब और जरूरी है कि मधु वगैरह बहुत बोलें, बहुत लिखें और बहुत जगहों पर जाएँ।

पचीस हजार वाली किताब निकल गई। शायद बैंगलूर से ही तुमको एक प्रति भेज दूँगा।

रजनीकांत[3] कहाँ है? जनेशर मिश्र[4] क्या कर रहा है? वे लोग हों तो कहना कि मुझको कुछ तो लिखा करें क्या कर रहे हैं। तुमको भी अपनी आँखें चारों तरफ रखनी चाहिए।

एक बात हमेशा जीवन में याद रखना। रबिराय[5] ने जो तुमको लिखा और जो कहा उसमें फर्क रहा, ऐसा तुम्हारे लिखने से लगा। तो, जो मैंने उससे कहा और जो उसने तुमसे कहा, उसमें भी फर्क हो सकता है। इसलिए कभी किसी दूसरे के जरिए मिली बात को आखिरी समझकर गाल नहीं फुलाना चाहिए।

---

1. 'मेनस्ट्रीम' के संपादक
2. लिमये
3. वर्मा, लेखक इलाहाबाद
4. समाजवादी नेता, इलाहाबाद
5. समाजवादी नेता, उड़ीसा

सोलह को हैदराबाद वापस। अट्ठारह जहाज से दिल्ली।

तुम्हारा
राममनोहर

डॉ. लोहिया अपने पत्रों में स्थान का सांस्कृतिक परिचय भी देते थे। उनमें कस्बों का दर्द भी रहता था। वे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की मौत से बहुत विचलित हो उठे थे। उन्हें दुःख था कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को मौत से जूझते हुए सरकार ने उनका ध्यान नहीं रखा, क्योंकि वे राष्ट्रपति से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। डॉ. लोहिया ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को मृत्यु से आधा घंटे पहले ही देखा था। तद्विषयक पत्र प्रस्तुत है—

कटिहार—5-3-63

प्रिय रमा,

लिखना तो तुमको मधुबनी से था जहाँ मैं परसों था। वही मधुबन जहाँ राधिका नाची थी। आज मधुबन और मधुबनी नाम के कस्बे हर जिले में हैं। पहले मधुबन नाम पड़ा था या पहले राधा नाची कौन जाने! आज के ये कस्बे लेकिन धूल और रूखेपन से भरे हैं। कोई रस है ही नहीं। लेकिन नाम चला आता है।

राजेन्द्र बाबू[1] की मौत के आधे घंटे पहले मैंने उनको देखा था। साँस ऐसी चल रही थी कि मुझको लगा आखिरी वक्त है। लेकिन किया क्या जाए! मेरे जैसा आदमी न कुछ बोल सकता है, न कुछ कर सकता है। अगर कोई सरकारी आदमी मरने के नजदीक आता है तो सब तरह के साधनों से उसको बचाने की कोशिश की जाती है। राजेन्द्र बाबू मरने के समय सरकारी नहीं रह गए थे।

यह देश सड़ चुका है। मालूम नहीं स्वास्थ्य वाली कहीं कोई नस या नाड़ी बची है या नहीं।

देश-विदेश का मामला कब ठीक हो पाएगा। परदेशी जब यही बात अपने देश के बारे में कहता है, अच्छा नहीं लगता। खास तौर से जब वह कहता है कि उनके देश से फलाना आदमी आ जाए, जो उसका संबंधी या दोस्त है। या जो उनके देश में मशहूर है, तो सब ठीक हो जाएगा, तब माथा भन्ना उठता है। क्या कभी कोई दिमागी परिवर्तन ऐसा आएगा जिससे आदमी परदेश को भी वैसे ही समझ सकेगा, जैसे देश को।

पता नहीं मौत से मेरा अब इतना वास्ता क्यों बढ़ रहा है। डॉ. भगवान दास[2], टंडन जी[3], राजेन्द्र बाबू।

सभाएँ तीन से पाँच हजार की हो रही हैं। लेकिन पैसा नहीं, आदमी नहीं। एक जगह सुनने को मिला है कि विरोधियों ने मुझको शूद्रों का नेता कहा और पर्चे फाड़े। अगर यह सही है, तो अच्छा है।

तुम्हारा
राममनोहर

तुम स्नेहलता को चिट्ठी लिख देना। और कौल[4] को चाहे खुद या मुरहरि के द्वारा।

---

1. भारत के प्रथम राष्ट्रपति
2. वाराणसी के विख्यात दार्शनिक
3. पुरुषोत्तमदास टंडन

डॉ. लोहिया अपने जीवन में कितने अवसर और एकांत से युक्त थे, यह बतलाने की बात नहीं है। उनका मन सांस्कृतिक कार्यों में खूब रमता था। होली, दीपावली आदि के प्रति उनके मन में गहरी ललक थी। परंतु वह ललक पता नहीं कहाँ ओझल हो गई। वे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के तर्क के कारण होली नहीं खेल सके। उनका मन उदास हो गया। वे देश की चिंता में स्वयं को भूल गए। उनकी जिंदगी में देश के सुधरने की शुरुआत नहीं होगी, वे यह जान चुके थे।

डॉ. लोहिया गजल, कविता आदि के बहुत शौकीन थे। वैसे गजलें अब क्यों नहीं लिखी जा रही हैं। वे स्वयं ही उत्तर देते हैं कि शायद देश टूट का जमाना नहीं है। इस सब सामग्री के दर्शन होते हैं निम्न पत्र से—

फारबिसगंज, 10 मार्च (1962)

प्रिय रमली,

आज होली है। पहले-सा होली खेलने का मन नहीं रहा है। इसीलिए राजेन्द्र बाबू का तर्क शायद उभड़ आया है। इसी तर्क के सहारे होली नहीं खेली।

मन भी अजीब चीज है। एक दफे जब यह बिगड़ जाता है, इसका सँभलना मुश्किल हो जाता है। ऐसा मुझको लगता है कि बुनियादी तौर पर मेरा मन बिगड़ गया है अब इसको सँभालना मुश्किल हो रहा है। अब तो यह तभी सँभलेगा जब देश सुधरने की शुरुआत होगी। सो अपने जीवन में मुश्किल जान पड़ता है।

उर्दू गजल इतनी जी तोड़ हो गई, इश्क वाली भी, क्योंकि वह देश टूट जमाने में लिखी गई थी। अब क्यों नहीं लिखी जा रही। शायद देश टूट का जमाना नहीं है। सवेरे के पहले का अँधेरा है। मुझे ऐसी कहावतों से बड़ा डर लगता है।

कल शेर की खाल पर कुछ देर मैं सोया। पूर्णिया में एक वकील हैं जो अपने कमरे में इसे बिछाए हुए हैं। कल रात तार मिला कि मिर्जापुर वाली ताई मर गई।

दत्त[1] ने ऐंटी-चाइना वाला मेरा खत लिया था। अखबारों को देने के लिए। वह खत उससे लेकर, अगर कई कापियाँ दे सके बड़ा अच्छा, कलकत्ते के सभी अखबारों को भेज देना। फौरन। और जगह भी भेजना।

दो आदमियों का एक-दूसरे को समझना कभी-कभी बड़ा मुश्किल होता है। फिर, व्यक्तिवादिता। फिर, राष्ट्रीयता। कभी-कभी मुझे लगता है कि गंगा और बोल्गा[2] और मिसीसीपी अंतर्राष्ट्रीयता कभी नहीं बनने देंगे।

तुम्हारा
राममनोहर

डॉ. लोहिया को आंग्ल भाषा में बोलना पड़ गया। वे गेंदा के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जो चीज बहुतायत में मिलती है, उसका मान (कद्र) कम हो जाता है। वे चाहते हैं कि ऐसी मनोवृत्ति समाज की बदले। पर कब? कैसे?

उन्होंने एक पत्र साढ़े आठ हजार फुट से अर्थात् बमदिला-विरांग से 16 मार्च, 1963 को लिखा था। फर्रुखाबाद से चुनाव लड़ने की बात थी। उन पर इसलिए दबाव भी पड़ रहा था। वे जानना चाहते हैं कि क्या लोग उनको जानते हैं? उनकी सोशलिस्ट पार्टी को भी जानते हैं?

---

1. रूसी नदी का नाम

रडेनड्रोन की छटा की प्रशंसा करते हैं। लंबे पेड़ होते हैं। वहाँ के लोग उन्हें खंडक कहते हैं।

दफला लोग अपने को कहीं बनगनी और कहीं निसी कहते हैं। इसका आशय इंसान से है। प्रकृति की खूबसूरती का बखान करते हुए वे इंसान की हालत पर आ जाते हैं।

वे कबायलियों के बीच में गए। उनको जाना-पहचाना और उनके बारे में सोचा। गहराई से सोचा। वे (देवरी) पिछड़े थे असभ्य नहीं हैं। वे उन्हें एक जमाने के आधुनिक मानते हैं और वे थमे हुए हैं।

वे वहाँ के स्त्री-पुरुष का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं। वहाँ धंधे का अलगाव न ऊँच-नीच जाति का भेद नहीं है। वहाँ अलगाव नहीं है। वहाँ सब आदमी हैं।

वे वहाँ तरह-तरह की घास को देखकर वैसे मुग्ध हो जाते हैं जैसे कनक के पुष्प देखकर।

वे रामलिंगम से चाका गए, 9300 फुट की ऊँचाई तक। वहाँ भी सुंदर पेड़ों का जिक्र और उनकी होली जलाने की बात। ऐसा वे खेती के लिए करते हैं क्योंकि वह राख मिट्टी और खाद दोनों का काम देती है। ऐसी खेती झूम कहलाती है। इसको रोका जाए। पर वही सवाल। क्या कानून काफी है? नहीं। इसके लिए संघटित योजना बने। लोगों में समझ पैदा की जाए। झगड़ा नहीं। कानून बनेगा। टूटेगा। उलझाव पैदा होगा। उलझाव उपद्रव की शक्ल ले लेगा।

हिमालय को डॉ. लोहिया ने खुली आँखों से देखा था। मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा की थी! अवगुंठन से झाँकता किन्नरियों के मुक्त हास-सा उसका उज्ज्वल सौंदर्य उनके हृदयाभ्र पर सदा आच्छादित रहा था। परंतु इस पर भी उनकी दृष्टि में मानवता की तलाश थी। वे मानव के गायक थे। उन्होंने वहाँ के जीवन में व्रण पाए, घुटन और अकिंचनता पाई। वे द्रवीभूत हो उठे। वे पूरे हिमालय के फलों की खेती पर विचार कर बैठे। अर्थात् दो हजार मील की लंबाई और तीस-चालीस मील की चौड़ाई में फलों की खेती।

डॉ. लोहिया में जीवन को लेकर गहरी उथल-पुथल होती रहती थी। कोफ्त व संकल्प की बात उठती थी। इजराइली संकल्प। इन पत्रों में सरकार के प्रति आक्रोश। सरकार के अच्छे कार्यों के प्रति प्यार। सब पर उनकी ममता। उनके विद्रोही स्वभाव का स्थायी गुण मानवीय प्यार था। उनका मन एक जगह ठहरता नहीं था। न बँधता था। वे पवन की तरह बहते रहे थे। उन्होंने आकाश के नीले-सफेद रंगों को अपनी आँखों में भरा था परंतु धरती को छोड़ा नहीं था। वे अवधूत का मन और अवधूत का प्रण अपने में बाँधे जन-जन तक पहुँचते रहे थे। इसके प्रमाण हैं ये पत्र—

मैसूर 12-3-63

प्रिय रमा,

तुमको एक चीज लिखना भूल गया था। उसी को लिखने के लिए कलम उठाई। लेकिन कई घटनाओं के छूटने के बाद फिर भूल गया हूँ। एक तो मन खराब है कि आपसी बातचीत के बहाने एक एम.ए. विद्यार्थियों की सभा में अंग्रेजी बोलवा ली।

लिखना तो तुम्हें बहुत अच्छी बातें थीं। खास तौर से रंग की। मुझको नीला और सफेद रंग बहुत पसंद आ रहा है। कारण शायद आकाश है। आकाश के यही दो विशेष रंग हैं। एक

फूल माना जाता है। और है भी, इस माने में कि बहुत होता है और सब जगह होता है। लेकिन क्या महिमा है रंग की। आग का-सा रंग चारों तरफ छा जाता है। महक भी खराब नहीं है। यह सही है कि रूप-रंग और महक को अलग-अलग ढूँढ़ने पर गद स अच्छे फूल मिलेंगे। लेकिन एक साथ। मुझको ऐसा लगता है कि जो चीज बहुत मिलती है उसकी कद्र अपने आप कम हो जाती है। कब हम लोगों की प्रकृति बदलेगी! जोग झरने में प्रायः दिन-भर इंद्रधनुष के रंग देखने को मिलते हैं। यहाँ वृंदावन के बगीचे में कुछ बचपना है रंगों का। खूब रंग और खूब बिजली।

जो मैंने चाहा था वह न मिला। कर्नाटक अपने देश का सबसे सुंदर प्रदेश है, ऐसा मेरा मत यहाँ कई बार आने पर बना। किंतु, मत बन जाने पर जब मत की पुष्टि करने चला तब सुंदरता हाथ से छटक गई। अबकी बार कोई विशेष असर नहीं पड़ा। अभी कुर्ग बाकी है और कल मंगलूर। देखें क्या मिलता है। शायद, मन ठीक नहीं तो कुछ ठीक नहीं। हम लोग कुछ नहीं कर पाए। हिंदी-चीनी हाथ मिलाना शुरू हो गया। टांगानीका में। उलटी जैसी होती है।

तुम्हारा
राममनोहर

मनीला
21 अप्रैल, '64

प्रिय रमली इल्दू,

तुम लोग मुझको क्यों सफर करने देते हो! न मजा, न फायदा।

अंकोर-वाट बहुत बड़ा। अंकोर, नगर। अगर यह सही है देखा अपभ्रंश। वाट के अर्थ पूजा अथवा आदर की जगह। यानी पूजा आदर का शहर। सब अपने लोग हैं। इनके पुरखे और अपने पुरखे हजार वर्ष पहले एक थे। एक दाव पर मुझे पता चला कि 50-55 हजार टन रबर का आज उतना ही पैसा मिल रहा है जितना तीस हजार का दस-पंद्रह बरस पहले। दाम साम्राज्यशाही।

वियटनाम विचित्र देश है। इतनी नाजुक औरतें और कहीं नहीं। मुझे समझ में नहीं आया कि इनके स्तन इतने कोमल और फिर भी इतने दिखाऊ कैसे हैं! लड़ाई चल रही है। लेकिन खाने-पीने में हमसे अच्छे हैं।

मनीला में दस मिनट लोकसभा का स्थगन हुआ, आपस में बातचीत करने के लिए। अच्छी प्रथा है। लेकिन जब इतना किया, तो एक भाषण भी क्यों न करा लिया!

हिंदुस्तान की कहीं कोई बुनियादी खराबी है। क्या हिंदुस्तानी दूसरे राष्ट्रों के साथ या तिरस्कार या चापलूसी ही कर सकता है!

तुमने क्यों न चिट्ठी लिखी? तुमको मालूम है कि कब और कहाँ मैं रहूँगा।

तुम्हारा
राममनोहर

द्वारा तेजबहादुर सिंह
विष्णु प्रेस, राबर्ट्स गंज,
मिर्जापुर, 20 जुलाई, '62

प्रिय प्रोफेसर महोदया,

आशा है आप सकुशल पहुँच गई होंगी एवं पूर्णरूपेण स्वस्थ होंगी। 17 की शाम को नेताजी[1] पहुँच गए। आपसे न मिल पाने के लिए वह काफी अफसोस जाहिर कर रहे थे। प्रोफेसर वासुदेव सिंह जी न तो अभी आए हैं और न उनका कोई समाचार है।

श्रद्धेय डॉक्टर साहब ठीक ही हैं। श्री तेज आपको नमस्कार कह रहे हैं।

अभी 25 तक शायद यहीं रहना होगा। इसके बाद राबर्ट्स गंज जाएँ।

साथ का पत्र श्री ओमप्रकाश दीपक जी को देने की कृपा करना। उनका पता न होने के कारण आपको यह कष्ट दे रहा हूँ।

विशेष कृपा।

आपका
रामसागर मिश्र

इल्दू—तुमने अपनी पहुँच की चिट्ठी लिखी या नहीं इससे पता लगेगा कि तुम स्वार्थी हो या परमार्थी। दो-तीन दिन यहाँ पानी खूब बरसा। सावन शुरू हुआ। जन और मैनकाइंड का काम तुमने शुरू किया या नहीं? दफ्तर ले लेना चाहिए। और दाम बाँधो चौदह अगस्त वाला राममनोहर।

तेजो—20 मार्च (1963)

प्रिय रमली,

किताबें, खोज और खोजकारी विद्वान् अधिकार कैसे होते हैं उनके बारे में तुम मेरी राय जानती हो। उर्वसीयम के कबायलियों के बारे में काफी लिखा गया है और खोज चल रही है। कबायली कई किस्म के हैं, ऐसा हो सकता है, लेकिन उनके नामों से एक दिलचस्प बात दीखती है। प्रायः हरेक नाम का अर्थ निकलता है, आदमी। मिस्सी जात, किंवदन्ती के अनुसार रुक्मिणी वाली, का अर्थ अभी तक पता नहीं चला। उसकी तीन उपजातियाँ हैं, इदू यानी आदमी, तरांव यानी आदमी, कमान यानी आदमी। मालूम होता है जब किसी परदेशी ने आकर पूछा तुम किस जात के हो, कौन हो, प्राकृतिक और सहज उत्तर, आदमी हैं। दूसरा उत्तर यह वर्गविहीन, वर्णविहीन दो-दो तीन-तीन घर के गाँव के हो ही क्या सकता था। विदेशी विद्वान ने सोचा ये नाम उनकी जात के हैं। हो सकता है इनमें जात के अलगाव बन गए हैं, स्थान और दूरी के कारण या और सबब से। लेकिन नाम के अलगाव निरर्थक हैं। एक दूसरी जात है आदि आमी; आदि यानी ऊँची और ठंडी जगह, आमी यानी आदमी। इनको किसी जमाने में अबोर भी कहते थे क्योंकि मैदानी परदेशियों ने इनको उजड्ड समझा। इसी तरह दफला हैं जो कामेन्ग और सुबन्सिरी इलाके में बसते हैं। इनकी उपजातियाँ हैं! बंगनी यानी आदमी, नी यानी आदमी।

मैदान से पहाड़ आते वक्त इस लोहित इलाके में एक जात मिली देवरी। खंभों पर इनके मकान खड़े हैं। मकान के नीचे औरतें कर्घों पर बुनती हैं। भली, सहज और मुलायम दीखती हैं, एक दुपट्टा जैसा पहने हुए और सिर तक ओढ़े हुए। अब तक चार मिस्मी मिले, एक लड़की। बहुत कम हँसी बहुत कम बोली। अगर यह रुक्मिणी की वंशज है, मालूम होता है रुक्मिणी ने सब बोल खत्म कर डाले। हो सकता है ये लोग घबड़ा जाते हैं और नाराज भी हो जाते हैं, अपने को खिलौना बनता देखकर और चारों तरफ से सवालों की बौछार होने पर। मिस्मी लड़की ने रसगुल्ला नहीं खाया, क्योंकि वह दूध से बनता है। उसने काली चाय पी। मिस्मी औरतें मांस, मछली, दूध नहीं खातीं। विचित्र बात है। मुझे पहले से लगता रहा है कि यह इलाका प्राचीनकाल में अपने युग में आधुनिक था। फिर थम गया। लोग इन्हें असभ्य, जंगली तथा पिछड़े कहते हैं। वास्तव में इन्हें एक जमाने के आधुनिक और आज के थमे कहना ज्यादा सही होगा। फिर ताजेश्वरी वगैरह के कुछ अवशेष मिले हैं, और न जाने क्या-क्या जंगल ने खा लिया है जैसे उत्तर प्रदेश में धूल ने। एक बात निर्विवाद मालूम पड़ती है। भारत का पूर्व-पश्चिम संबंध गंगा-जमुना के एक के उत्तर महाभारत और प्राचीन काल में रहा है। वर्तमान आसाम और उर्वसीअम् इस जंजीर की कड़ियाँ हैं। मिस्मी और दूसरे लोग शायद इन्हीं पुरानी कड़ियों के छुपे रूप हैं। ईदू लड़कियाँ और लड़के भी (मर्द औरत सभी) भाल तक अपने बाल काटते हैं, कैसे चटपटे आधुनिक, और तरौंव अपने बाल समेटकर खोपड़ी पर जूड़ा बाँधते हैं। अगर तुम पूछो, रुक्मिणी मिली क्या, मेरा जवाब, यों हर औरत रुक्मिणी है, इस इलाके वाली शायद और भी क्योंकि एक जमाने में आधुनिक होकर थम गई हैं और इसलिए कोमल भावों को जगाती हैं लेकिन भारत के मध्य वर्ग और जात-प्रथा और बड़े की छोटे के प्रति बाल की असभ्यता कभी कुछ होने देंगे क्या?

तुमको इतला देनी तो रही जाती है कि बमदिला से तेंगा घाटी तक लाल गंडक की व्यापक छटा है। शायद तेंगा घाटी ही सदावसन्त है, तवांग नहीं। राम लिंगम से चाका तक जिसमें 9300 फीट तक चढ़ाई होती है, सफेद और गुलाबी गंडक की छटा है। पेड़-पौधों की भी बलिहारी है। एक ऊँचाई और गीलेपन पर इनके जटा मूँछ उगती है।

फरुखाबाद जाने का मतलब तुम खाली शनि रवि समझना। शिमला की जगह ज्यादा ऊँची न हो।

तुम्हारा
राममनोहर

डिब्रूगढ़ से जीरो-लखीमपुर—23 मार्च, '63

प्रिय रमली,

अगली चिट्ठी में एक बात जोड़ना ईदू को मैंने आदमी कहा था। संभवतः मीदू है। मी यानी आदमी और दू यानी नदी, वाला आदमी। अपभ्रंश होते-होते मीदू का ईदू हो गया। ईदू अपना बाल कपाल तक काट देते हैं, औरतें भी, इसलिए उनको चूलीकाटा भी कहते रहे हैं। बड़ी चटपटी और आधुनिक दीखती हैं। जो भी हो, इन सभी के जात नाम में आदमी संज्ञा जरूरी है। लुशाई वाले मीजो कहलाते हैं। मी माने आदमी और जो माने ऊँची और ठंडी जगह। उर्वसीअम् की संख्या में सबसे बड़ी जात आदि कहलाती है, असल में आदि आमि यानी आदमी और आदि यानी ऊँची और ठंडी जगह। धंधे से किसी का नाम नहीं लगता, क्योंकि धंधे का अलगाव और ऊँच-नीच है। गाँव और छोटे इलाके से भी नहीं है। गाँव और छोटे इलाके से भी नाम नहीं।

---

1 राजनारायण

आदमी थम चुके हैं। तेजो के पास के दो गाँव देखे, एक का नाम तर्फीगाम। हालत बुरी है। आदमी और जानवर बहुत ज्यादा साथ-साथ रहते हैं। शायद दोनों को तकलीफ होगी। औरतों ने अपने कानों, दोनों में रुपये बराबर छेद कर रखा है और गहना। औरत गहने के लिए क्या-क्या नहीं करती रही हैं। पूछने पर जवाब मिला, दर्द नहीं होता। क्या करे। खुद तेजो में सरकारी अमल है, प्रायः सभी सरकारी नौकर। यहाँ कलक्टर को राजकीय अफसर कहते हैं। यहाँ वाला पुराना फौजी है। फौजी आदमी आम तौर से भला होता है, जैसे शराबी, उसमें दूसरे जो भी अवगुण हों उसकी बीवी भली औरत लगी। वैसे वे तीनों औरतें जिन्होंने खाना खिलाया। एक असमिया जिसने इलाहाबादी से शादी और तीसरी तमिल जो चटपटी और सीधी दोनों लगीं। शान्ता उसका नाम है। शायद ये औरतें कर्तव्यवश भली रहीं। जो भी है राष्ट्रीयता का एक नतीजा यह भी होता है कि दूर देश में अपनी औरतें ममता दिखाती या जगाती हैं।

एक फूल यहाँ बहुतायात से देखा, कनक जिसका नाम। 6 सात पत्तियाँ हैं। सफेद और गुलाबी, लेकिन एक पत्ती में गहरा लाल चक्र है। दूर देखने में उसका अजीब सफेद-लाल मिला दीखता है। गुलाबी नहीं। जहाँ-तहाँ जवा देखा, लेकिन मैं उसका मथुरा-वृन्दावन वाला नाम भूल रहा हूँ। आखिर कृष्ण का फूल है। लेकिन फलों की इतनी छटा नहीं रही। क्योंकि तेजो हजार और तफ्रो गाँव दो हजार फीट के आसपास है। लोहित क्षेत्र में ज्यादा ऊँचा जाना नहीं हुआ, जैसा कामेन्ग में हुआ था। इसलिए जंगल ज्यादा अच्छा देखने को मिला। शायद और कारण रहे हों। तेजो से तफ्रोगाम जंगल के बीच रास्ता था। जहाँ-तहाँ पेड़ गिरे मिले। कुछ पेड़ों का वल्कल छिला था। रात को हाथी आए थे। कामेन्ग का जंगल चढ़ते पहाड़ों पर था। यहाँ सीधाई पर। बड़े ठाठवाले पेड़ हैं, ऊँचे सीधे, बड़े तने। हलके और हलुंग नाम हैं। हलक शायद ज्यादा शाही है। हलक, बेंत के पेड़, बाँस खेर है ही और पेड़ जिसके नाम में चम्पा है। सुना है मिस्मी लोग जंगल में ऊँचे-ऊँचे चल लेते हैं, एक बेंत से दूसरे पर कूद कर। अफ्रीका के जंगलों में शायद ऐसा होता होगा और ताजर्न'[1] की शुरुआत इन्हीं अनुभवों से हुई।

इस जंगल का फर्श भी तरह-तरह की घासों से भरा रहता है। बेंतवाली पत्तियाँ घास की तरह भी उगती हैं। एक और विशेष बात है। इस जंगल के पेड़ों से ऊपर से नीचे गिरनेवाली लता जैसी डाली निकलती हैं। कई ऐसी डालियाँ। पेड़ बड़ा कुटुंबी मालूम होता है। कुछ ऊँचाई पर जाने के बाद पेड़ के तने पर काई जैसी जमने लगती है; जैसे पेड़ के जटाजुटा हों। रामलिंगम से चाको तक बहुत देखा। इसी तरह से गंगशेक के बाद का ऊँचाई पर भी देखा था। जहाँ जानवर दाढ़ा होने लगती है और गाय बैल याक हो जाते हैं, वहाँ पेड़ का ऐसा हाल हो तो क्या अचरज!

बड़े शानदार पेड़ हैं। इनकी होली यहाँ के लोग बहुत जलाते हैं; खेती के लिए राख मिट्टी और खाद दोनों का काम देती है। ऐसी खेती को झूम कहते हैं। इस बर्बादी को रोकने का उपाय तभी हो सकता है जब कोई संघटित योजना बने। केवल रोक लगाने से यहाँ के लोग सोचेंगे कि नियम टूट रहा है और उनके अधिकारों को छीना जा रहा है। फिजूल उपद्रव खड़ा होगा। कुछ होवे जावेगा नहीं।

योजना बहुत बन सकती है। कामेन्ग में चढ़ती पहाड़ियों पर कोई पंद्रह-बीस मील की दूरी तक जंगली केले की उपज देखी। लोहित में भी उसी तरह समतल जमीन पर वैसी दूरी तक जंगली केले देखे। हो सकता है किसी समानांतर में होते हों, (पैरेलल)। सैकड़ों मील लंबा, दस-बीस मील चौड़ा। अच्छा केला हो सकता है और दूसरे फल भी। इनकी टिनाई करने के लिए कारखाने खुल सकते हैं। बड़ी योजना बनानी पड़ेगी। और ये फल शायद मुफ्त में स्कूली बच्चों और दूसरों को कम से कम शुरुआत में देने पड़ें।

जब मैंने पच्चीस बरस पहले कहा था कि मच्छड़ खटमल खत्म किए जा सकते हैं, जाड़ा बुखार खत्म किया जा सकता है और दूध वगैरह मुफ्त बच्चों को देना चाहिए, तब लोग हँसे थे। कम से कम एक काम कांग्रेस सरकार ने किया, जिसकी मैं मुक्त कंठ से प्रशंसा करूँगा। अभी पूरा नहीं हुआ है। जाड़ा बुखार नियंत्रित हैं। और डी डी टी हो। मच्छड़ अभी भी काटते हैं, लेकिन उनका बुखारी डंक करीब-करीब खत्म हो रहा है। इसी तरह फल-खेती पर लग्गा लगना चाहिए। अट्ठाइस को कलकत्ता और शायद एक को पटना।

तुम्हारा
राममनोहर

उत्तर लखीमपुर—23 मार्च (1963)

प्रिय रमली,

एक दिन में दो, ऐसा मैंने पहले कभी नहीं किया। इसी तरह मैं तुम्हारे और भारत माता तथा पृथ्वी माता. तुम माता पसंद नहीं करोगी और हर हालत में भारत कन्या तथा पृथ्वी कन्या ज्यादा अच्छे हैं, के लिए अपना आदर जता सकता हूँ।

फल खेती तक बात आई थी। पूरे हिमालय में डेढ़-दो हजार मील की लंबाई और तीस-चालीस मील की चौड़ाई पर फल खेती हो सकती है। यह तो निचले और मध्य हिमालय के कुछ हिस्से की बात हुई। मध्य हिमाचल के लिए भी अनाज या फल खेती और छोटे-छोटे कारखाने की बात सोचना होगा। मैं तुमको इजरैल का एक किस्सा सुनाऊँ। ठीक सीमा पर एक इजरैली गाँव में हम गए। करीब दो सौ लड़के-लड़कियाँ थे। खेती करते थे। साथ ही, सैनिक भी थे, जरूरत पड़ने पर। जब फिलस्तीन था, तभी से यहूदियों ने ऐसे बासे बनाए, जो देखने में केवल खेती समूह थे और असल में छावनी भी। इजरैली की सीमाओं पर आज ऐसी खेती छावनी अनेकों हैं। मैंने इन युवजनों के नेता से पूछा, क्या करोगे पंद्रह लाख छः सात करोड़ के खिलाफ? कभी तो ये सात करोड़ अरब आधुनिक बनेंगे तब क्या होगा? युवक के चेहरे पर मुस्कराहट थी या नहीं मुझे याद नहीं। लेकिन था बिल्कुल ठंडा और सौम्य। बोला, जाने को है कहाँ? इजरैल का खत्म होना प्रायः असंभव है। बीच में मुझे इजराइली सरकार की यूरोप-अभिमुख नीतियों पर गुस्सा रहा। अब भी कुछ है। लेकिन विचित्र दृढ़ता की कौम है। जाने को है कहाँ और यहाँ आसाम, उर्वसीअम् में एक ही चीज सुनने को मिली, भागो, भागो, दुनिया-भर भागने के लिए बाकी है।

कब हिंदुस्तान में संकल्प आएगा। शायद इसी संकल्प के कारण इजरैल बचा रहेगा। और जैसे अरबी आधुनिक होंगे, उनके मन की विनाशकारी भावना कम होगी। जो भी हो, इजरैल से कुछ युवजनों और उनके विशेषज्ञों को बुलाकर सीमा पर, खास तौर से पथरीली ठंडी और मध्य हिमाचल की सीमाओं पर, खेती सह छावनी बनाने की बात जाँचनी चाहिए।

हो सकता है समय अभी उपयुक्त नहीं। चीनी सामने खड़े हैं। अपने पहाड़ी कबाइलियों

---

1. 'एप मैन' फिल्म

...आए। क्योंकि इन बासों में आधे ये रहें, तो आधे मैदान में युवजन, कहीं- कहीं और ज्यादा, लोग होंगे। यहाँ आजादी का सवाल बड़ा टेढ़ा है। पैंतीस हजार वर्गमील में कुल अढ़ाई लाख। कुछ तो कहते हैं कि आबादी इससे भी कम है। एक मील पर आठ-दस या उससे भी कम। कुछ तो करना ही होगा। दस बरस से मैं चिल्ला रहा हूँ कि भारतीय हिमालय में आवास की योजना जोरों से चलाओ। पहले आसानी से हो सकता था। अब भी शुरू हो ही सकता है। कभी न कभी मामला जोरों से चलाना होगा।...

डॉ. लोहिया इस पत्र का अंत बहुत मार्मिक ढंग से करते हैं कि उर्वसीअम् की लड़की और बाकी भारत का लड़का, यह नहीं चलेगा। वे रुक्मिणी और चित्रांगदा का भी उल्लेख करते हैं और उन्हें सच मानते हैं, मनगढ़ंत नहीं। अहोम राजाओं के समय में आसाम और उर्वसीअम् के घनिष्ठ संबंध थे। लोगों के चेहरे इसका प्रमाण हैं। आज बलात् उन्हें रोका जा रहा है। उनमें गलत काम रोका जाए। लेकिन शेष भारत की लड़की भी उर्वसीअम् को मिले। क्या ऐसी लड़कियाँ निकलेंगी जो रोमांच को इतनी दूर ले जाएँ!

डॉ. लोहिया बहुत चाहते हैं कि मन उल्लास भरे और कुरंग के वेग से छलाँग भरे। उन्होंने पूजा देखी। दफला लोगों की पूजा। वे एक रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं कि पुजारी के हाथों में मुर्गी का खून दो-तीन बूँद गिरा जब वह उसके पंख पत्रों और खंभे के देवता के लगा रहा था। पूजा करानेवाला एक गाँव का बूढ़ा और अपनी समझ से धनी है। वह अपनी बीमारी को भगाने के लिए अनुष्ठान करा रहा था। वहाँ एक बड़ा-सा जानवर होता है भैंसा जैसा, जिसे वे मिथुन कहते हैं, काटा गया। बेचारा मिथुन दो ही काम आता है। शादी के वक्त वह लड़की के बाप को दिया जाता है लड़केवाले की औकात पर कि वह कितना धनी है। जितना धनी है उतने ही मिथुन वह देता है। दूसरे मिथुन पूजा में बलि होने के काम आता है।

डॉ. लोहिया वहाँ की संस्कृति, सभ्यता और भाषा पर विशेष ध्यान देते थे। वे खोजी थे और सच्चे अर्थों में मानव के जानकार थे। वहाँ उन्होंने एक वाक्य पकड़ा, 'हाँ कुमती।' इसका अर्थ है, आओ बैठो। डॉ. लोहिया इस वाक्य से एक इतिहास तक जा पहुँचे। कई सौ वर्ष पूर्व भाई लोगों ने आसाम पर हमला किया था और यही कहा था कि आओ बैठो, लड़ने से क्या लाभ 'भा कुम' (अपनी भाषा में)। डॉ. लोहिया संस्कृति के खोजी थे। उनमें समन्वय ढूँढ़ते थे। वे लिखते हैं कि तिनसुखिया से दुमदुमा जाते समय जो माकुम कस्बा पड़ता है संभवतया वह यही अर्थवाला है। वे आगे लिखते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं कि थाई देश से और ऐसे ही हिमालयोत्तर इलाकों से जिन्हें पहले वृहत्तर भारत कहा जाता था और जिन्हें अब जम्बूद्वीप कहना चाहिए, बहुत आना-जाना रहा है। लोगों का, भाषा का और सब चीजों का। किंतु आधार भारत है। और थाई भी तो आधा भारत है और उस समय हो चुका था जब इन्होंने आसाम पर आक्रमण किया। उन्होंने उनके जीवन-व्यवहार का गहरा अध्ययन किया था। इसके प्रमाण में उनके पत्रों के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—

एक निशी लड़के ने मुझे बताया कि वह भाभी, भाई और बहिन के साथ रहता है, अपनी भाषा में नहीं, अच और विरम। नेही शायद स्नेही है और अच अज। निशी लोगों को परदेशियों ने सादा और कुरंग कहा है। बिल्कुल झूठ। मुझे ये उतने ही भले और सुरूप लगे जितने और कोई। इनकी औरतें अपने बालों और चेहरे का कोई स्वाँग नहीं बनातीं। इनके कपड़ों मे उतना रंग नहीं परदेशी ने अब तक यहाँ विभिन्नता और रंग देखना चाहा है।

एक आपातानी गाँव निशी देखा। निशी गाँव के घर दूर-दूर बसे होते हैं। अपातानियों के गाँव घने, जैसे मैदानवाले। दो सुंदर चीजें पहले ही बता दूँ। जिस घर में हम गए, दो बीवियाँ

थीं। वैसे आम तौर से अपातानी एक ही शादी करते हैं। जवान ने स्नेह दिखाया। लहँगा और बड़ा झूलन दिया, बीवी के लिए। तस्वीर लेते समय पहले तो जरा-सी हटकर बैठी थी। फिर जब मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा तब काफी सटकर बैठी। अपने सुरूप चेहरों को ये काफी बिगाड़ती हैं। दोनों नाकों को छेद कर ये बड़ा से बड़ा काठ का बुन्दा पहनती हैं। कभी-कभी नाक की ऊपरी नोक तक दो हो जाती हैं। भाल के ऊपर से लेकर नाक-कान तक। कभी-कभी, नोक तक टीका गुदाती हैं। ठुड्डी पर चार या पाँच लकीरें गुदाती हैं। पूछने पर जवाब मिला कि माँ-बाप नहीं भी छिदाना चाहते, बच्ची रोती हैं। मैंने परंपरागत जवाब दिया, चिड़िया और पिंजड़ का। दूसरी सुंदर बात पहले सुना दूँ, तब और कुछ कहूँ। जब हम लोगों की गाड़ी एक ट्रक से गुजरते समय कुछ धीमी हुई, तब एक लड़की सामने हाथ फैलाकर खड़ी हो गई। मीठी बोली लेकिन भिखारिन की तरह नहीं और अंदर आ बैठी। मैंने पीछे मुड़कर उसकी तरफ लगातार देखा, आम तौर से वहीं निर्लज्ज हो सकता है जिसके मन में बहुत कुछ न हो, और कुछ पूछा भी। पुइयाँ उसका नाम था। उसने थोड़ी ही देर बाद अपनी डिबिया निकाली जिसमें बीड़ी थी। एक सामनेवाले लड़के को दी, जो उसी की जात का था और मजदूर टुकड़ी में काम करता था। फिर एक अद्भुत सौंदर्य घटा। उसने अपना हाथ बढ़ाया नहीं, डिबिया जहाँ रखी। मेरी तरफ देखते हुए सिर्फ भावों को इस तरह ताना कि एक सहज और मधुर सवाल बना, लोगे। कम से कम मैंने यही समझा। बगलवाले ने कुछ कहा, शायद यह कि इनको बीड़ी क्या देती हो। मुझे अफसोस हुआ कि मैंने तम्बाकू पीना छोड़ दिया है। एक और आँखें और भवें याद हैं। लंदन के एक अस्पताल में पंद्रह बरस पहले एक डाक्टरनी मेरा रक्तचाप नाप रही थी, आँखें और भवें कहाँ-कहाँ, और मुझे बता रही थी कि वह नीलगिरि में पैदा हुई थी। मुद्राशास्त्र क्या है। यह परिपक्व सभ्यता का ही अंग है। और अपातानी थम जरूर गए लेकिन अपनी पुरानी मुद्राओं में से कुछ को भूले नहीं। या यह सहज मानवी सौंदर्य है जिसे समाज या प्रकृति का दबाव मिटा देते हैं। मैदान का वर्गभेद मिटा देता है और पहाड़ियों का प्रकृति से संघर्ष। अपातानी पर एक साथ रहते हैं। धनी-गरीब का थोड़ा-थोड़ा भेद है। लेकिन न जातिभेद न वर्गभेद।

इनमें से कुछ के बाल काफी चमक रहे थे। पता चला कि सूअर की चर्बी लगाती हैं। उर्वसीअम् की एक खास महक अभी तक नाम से नहीं निकल रही है। पता नहीं मैं उसे निकालना भी चाहता हूँ। कुछ अफसरों ने मुझसे कहा कि ये इतर नहीं पसंद करेंगे। मैंने उन्हें कड़ुआ जवाब नहीं दिया। कह सकता था कि हर सूअर अपने कूड़े को पसंद करता है और हम मैदानी अब भी न जाने कितने कूड़ों को पसंद करते हैं।

उर्वसीअम् के ये लोग कौन हैं, कहाँ से आए। फिर कभी। मैंने सोचा था कि आज मैं तुमसे पहाड़, पानी, छींटे कैसे वाली हरियाली और आसमान, चारों के संगम पर बातें करूँगा। सुबन सीरी के इस क्षेत्र में जीरावाले रास्ते की यही विशेषता है।[1]

डॉ. लोहिया एक जीवट इंसान थे। उनकी चेतना क्रांति-द्रष्टा थी। वे स्पष्ट वक्ता थे। उनकी जिंदगी एक खुली किताब थी। उनमें अहम् या अहंकार नहीं था। पर एक अवधूत की अक्खड़ता जरूर थी उनमें। उनमें बेशुमार प्यार था उपेक्षित, शोषित, निर्धन और कमजोरों के प्रति। उनका समाज-समर्पित जीवन था। उनके जीवन में अत्यंत भावुकता व उत्तेजना के क्षण भी आए जब वे बिखरते से लगे परंतु एक दर्द के साथ। उनमें देश के प्रति गहरा अनुराग था। आगे दिया जा रहा पत्र उनकी तनाव-भरी मानसिकता की ओर संकेत करता है—

1. डॉ. लोहिया के 26 मार्च, '63 के पत्र से।

शिकागो से सानफ्रांसिस्को
मई 12, '64

प्रिय रमा,

तुमको चिट्ठी लिखने की बिल्कुल तबीयत नहीं कर रही है। हो सकता है तुमने ग्रीनिच के पते से लिखा हो। लेकिन और जगह लिखने में क्या तुम्हारा हाथ या मन टूट जाता?

मुझको हिंदुस्तान की तुम्हारी या किसी की कोई खबर नहीं। हो सकता है तुमको टेलीफोन करना पड़े। जो चिट्ठी लिखने से भी ज्यादा होगा। यह कैसी सजा जो इनाम बन जाए?

बड़ी दौलत हो गई है अमेरिका में। मेक्सिको भी अपने से दूना है। वहाँ का होटल टेकाली भी, जहाँ मैं रहा, न जाने अपने देश से कितना अच्छा था। अपनी सरकार कितनी बेवकूफ है! अखबार कतरनों से तुमको मालूम हुआ होगा कि कांग्रेस के लिए मैं चाहे जितना बुरा होऊँ लेकिन देश के लिए कैसा। मुझको उन्हें हर तरह की मदद देनी चाहिए। लेकिन कुछ नहीं। खाली प्रशांत महासागर के रास्ते में दूतावास का पहला या दूसरा सचिव हवाई अड्डे पर आया। लेकिन सभाई अखबारी मदद कुछ भी नहीं। सुरेंद्र वगैरह को याद करना। दर्द, ओंकार, नूरुद्दीन, साँवलदास वगैरह को भी।

मुरहरि कहाँ है? क्या हो रहा है?

तुम्हारा
राममनोहर

हवाई जहाज हिल रहा। कुछ हो जाए तब तुमको मजा मिलेगा।

डॉ. लोहिया में धीरे-धीरे बेचैनी बढ़ती जा रही थी। वे दुर्द्धर्ष संघर्ष करते हुए कुछ-कुछ झुँझलाहट से भरने लगे थे। उनमें अकुलाहट, छटपटाहट और उद्विग्नता बढ़ने लगी थी। नीचे उनके पत्रों के कतिपय अंश द्रष्टव्य हैं—

तुम खुश रहना। सब मिला-जुलाकर ठीक हो रहा है। कम से कम तुम मेहनत कर रही हो।[1]

एक उमर के बाद देश से बाहर जाने के लिए कभी मुझको आगे से मजबूर (बाध्य) न करना। एकदम जल्दी लौटने की कोशिश कर रहा हूँ।[2]

मैं क्यों सफर कर रहा हूँ, मेरी समझ में नहीं आता। तुम मेहरबानी करके हमेशा के लिए समझ लो कि आज की दुनिया में या सरकारी आदमी या व्यापारी या सौ फीसदी हाँ में हाँ मिलानेवाले को जैसे कम्युनिस्ट अथवा संस्कृति स्वाधीन छोड़कर किसी भी पचास के ऊपर के मर्द या औरत को सफर नहीं करना चाहिए।[3]

कल से मन बिगड़ रहा है। सब मिथ्या लगता है। वैसे सभाएँ सब अच्छी हो रही हैं।[4]

---

1. प्रो. रमा को जेब डायरी का पृष्ठ फाड़कर लिखा पत्र, 9 अगस्त, '64
2. प्रो. रमा को 24-5-65 को लिखा पत्र
3. डॉ. लोहिया के 4 जून, 1965 के पत्र से
4. डॉ. लोहिया के 16 नवंबर, 1967 के पत्र से

मन ठीक नहीं है।[1]

"'मुझे आजकल राजनीति अच्छी नहीं लगती। लेकिन दुनिया में कौन-सी चीज पूरी अच्छी है और अगर पूरी अच्छी लगने लगे तब केवल पुनरावृत्ति हो।[2]

कलकत्ते में तबीयत थोड़ी खराब थी। यहाँ पहुँचते ज्यादा खराब हुई। कुछ तुम्हारी जैसी। सिर भारी और मिचलन। उन्नीस की रात को बार-बार मन में आया, कहीं ऐसा ही तो मरना नहीं होता। लेकिन वह सब केवल मस्तिष्क का विचार था।[3]

पत्रों से यह भी लगता है कि डॉ. लोहिया प्रो. रमा मित्रा के बिना बहुत कुछ अधूरे थे। यह कहना मुश्किल है कि उन्होंने शादी क्यों नहीं की। ऐसा बहुत कुछ है। प्रो. रमा को लिखे पत्रों से लगता है कि डॉ. लोहिया उन्हें जीवन-साथी के रूप में लेकर चले थे। अधिकारपूर्ण आक्रोश, आत्मीयता से युक्त उलाहने, पत्र न मिलने पर बेचैनी, बराबर मार्ग-निर्देश, सलाह, स्मरण आदि आवृत्तियाँ ऐसे हैं जो उन्हें ये अधिकार तभी देते हैं जबकि वे उसे अपना सर्वस्व मानते हों। डॉ. लोहिया जर्मन भाषा में अपने मित्र वार्नर को लिखे पत्र में प्रो. रमा मित्रा के बारे में लिखते हैं—

रमा मित्रा प्रौढ़ है परंतु वास्तव में वह एक बालक है बिना उत्तरदायित्व के। उसके पास काफी धन भी नहीं है और वह संकट में है क्योंकि वह जर्मन विषय पर कार्य कर रही है पी-एच.डी. उपाधि के लिए। मुझे संदेह है कि वह जर्मन सीख सकेगी। मेरी प्रार्थना है कि उसे आप अपने अतिथि के रूप में लेना ताकि वह जर्मन भाषा सीख सके और अपने आत्मविश्वास के लिए वह एक छोटी-सी उपाधि लेकर लौट सके।'''आप उसे, उसकी प्रायोजना से संबंधित कुछ बातें (बिंदु) भी लिखा सकते हैं, जैसे युद्धोपरांत जर्मन राजनीति। मैं उसकी प्रायोजना के संबंध में बातचीत कर चुका हूँ, लेकिन मुझे यकीन है कि उसे मेरे सुझाव पसंद नहीं हैं।[4]

डॉ. लोहिया अपने एक अन्य पत्र में यह स्वीकारते हैं कि वह प्रो. मित्रा को जन्म-दिवस पर बधाई देना भूल गए थे, लिखते हैं कि उसे चिंता करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह तो वास्तव में सफल है। वह एक सलाह देते हुए कहते हैं कि यदि वह जर्मन भाषा सीख जाती हो तो अच्छा है। लेकिन वह बेहतर हिंदी क्यों नहीं करती है अपनी जबकि उसे आना तो अपने घर है।[5]

डॉ. लोहिया उसे प्यार-भरी झिड़की भी देते हैं जब-तब। उन्हें आश्चर्य होता यह जानकर कि वह इतनी डरपोक तथा मूर्ख है। वह नहीं जानते कि मित्रा पाँच वर्ष की बालिका जैसी भी मूर्ख हो सकती है।[6]

प्रो. रमा मित्रा डॉ. लोहिया से सन् 1946 में पहली मर्तबा मिली थीं जबकि डॉ. लोहिया को आगरा जेल से मुक्त किया गया था। सन् 1947 से लेकर मृत्युपर्यन्त (12 अक्टूबर, 1967

---

1. डॉ. लोहिया के 17 जनवरी, 1967 के पत्र से
2. डॉ. लोहिया के 5 जनवरी, 1967 के पत्र से
3. डॉ. लोहिया के 31 जनवरी, 1967 के पत्र से
4. डॉ. लोहिया के जर्मन भाषा में लिखे गए पत्र का अनुवाद 20 अक्तूबर, 1960
5. डॉ. लोहिया के 11 जुलाई, 1961 के पत्र से
6. डॉ. लोहिया के अंग्रेजी में लिखे पत्र का अनुवाद, 11 जुलाई, 1961

तक) वह डॉ. लोहिया के अत्यंत निकट रही थीं। डॉ. लोहिया बराबर उन्हें पत्र पर पत्र लिखते रहे थे और उनमें एक नवीन परंतु शक्तिशाली रमा को युवा करने की दृष्टि से सदा पत्र के माध्यम से प्रेरित करते रहे थे। डॉ. लोहिया हर इंसान को अनुप्रेरित करते रहे थे जो एक बार उनके संपर्क में आया। लेकिन रमा मित्रा को तो वह बराबर उत्साहित करते रहे। उनके कतिपय अंग्रेजी में लिखे गए पत्रों के अंश हिंदी अनुवाद सहित प्रस्तुत हैं—

1. मैं जानता हूँ कि तुमको 2, 3 या 4 लेक्चर एक दिन में अपने विद्यार्थियों को देने होते हैं। लेकिन तुम्हारे पास काफी फुर्सत का समय है। चूँकि तुमने कोई कार्य अपने हाथ में नहीं लिया है इसलिए तुम अपने को अकेला महसूस करती हो।...यह सलाह नहीं है, निर्देश है कि तुम रजिया पर शोध करो और अपने एकांत समय की उससे पूर्ति करो।[1]

2. ...मैं ईजी चेअर पर बैठकर पत्र लिख रहा हूँ।...मैं तुम्हें इतना सब कुछ क्यों लिख रहा हूँ। क्या यह इस बात का प्रतीक नहीं है कि तुम हर समय मेरे दिमाग में रहती हो?[2]

3. तुम्हारा पत्र बहुत देरी से मिला। मैं तरह-तरह की कल्पना करने लगा था। हो सकता है कि तुम बीमार हो।...तुम्हें काम करना चाहिए यह काफी है, जहाँ भी तुम रहो।[3]

...जब तुम यूरोप में हो तो तुम्हें चाहिए कि तुम वह कार्य जो दूसरे दो वर्ष में करते हैं, एक वर्ष में करो। मैं तुम्हारे जन्मदिन पर उपहार भेज रहा हूँ जिसे तुम पंद्रह दिन बाद पढ़ोगी। इसके अतिरिक्त मैं तुम्हें क्या उपहार भेज सकता हूँ![4]

...मैं तुम्हें नासिक या पूना से लिखने की सोच रहा था। क्या तुमने एक बार नहीं कहा था कि तुम मेरे साथ नासिक देखना चाहती हो?[5]

...तुम्हारी तरफ से कोई सूचना नहीं। मैं यहाँ आज ही आया हूँ। तुम ठीक तो हो...क्या तुम्हें मेरा पूर्व पत्र मिला? चार पत्र पहले लिखे थे। इस प्रकार यह मेरा पाँचवाँ पत्र है। मुझे तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला।[6]

इन पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. लोहिया प्रो. रमा मित्रा को जीवनसाथी की तरह से देखते थे। जब वह उनके पत्रों का, जोकि कभी एक साथ भी वे उन्हें लिखते थे—प्रतिदिन या एक-दो दिन छोड़कर पत्र लिखते थे—उत्तर नहीं देती थीं तो वे बहुत नाराज, व बेचैन भी हो उठते थे। एक पत्र ऐसा है, जिससे सर्वथा नई स्थिति सामने आती है। वे लिखते हैं—

शांत रहने के लिए मुझको पूरी मेहनत करनी पड़ रही है। जब तुम एक आदमी से प्रोग्राम बना लेती हो, तुमको कोई अधिकार नहीं दूसरे से भी उसी समय बनाओ।...तुम साफ लिखो कि बंदर (डाक) पर तुमको लेने कोई जाए या नहीं और मैं जाऊँ या नहीं। अगर मैं जाता हूँ तो तुमको मेरे साथ आना पड़ेगा। और शायद एलीफेंटा भी जाना पड़ेगा। और साफ लिखो तुम्हारी टिकट रखी जाए या नहीं। हो सकता है कि एयरकंडीशंड क्लास का पैसा बर्बाद हो जाए। मुझको

1. डॉ. लोहिया के पत्र से : दिनांक 14 सितंबर, 1957
2. डॉ. लोहिया के पत्र से : दिनांक 5 सितंबर, 1958
3. डॉ. लोहिया के पत्र से : 3 मार्च, '59
4. डॉ. लोहिया के पत्र 13 जुलाई, '59 से
5. डॉ. लोहिया के पत्र दिनांक 13 अक्तूबर, '59 से
6. डॉ. लोहिया के 6 जुलाई, '59 के पत्र से

तुम्हारे अनेक प्रेमियों की कहानी अच्छी नहीं लगती। हाँ, अगर तुम पूरी और सच्ची कहानी बताओ तो शायद एक युग-युगांत की तरह पढ़ने में रस ले सकूँ। हमेशा तुम कहानी शुरू करती हो,जैसे कोई मन का बोझ उतार रही हो। यह भी अच्छा हो अगर तुम कोई सुखी शादी कर लो, लेकिन यह बुरा है कि तुम उसकी केवल बात करती हो। बंबई में तुम कैसा इंतजाम चाहती हो, साफ लिखना।[1]

यह पत्र कई रहस्यात्मक स्थितियों को एकसाथ उजागर करता है। लगता है कि डॉ. लोहिया और रमा मित्रा के मध्य कुछ ऐसा बराबर बना रहा जिसे मित्र की सीमा से अधिक आत्मीयता से युक्त तथा समर्पित माना जा सकता है। कुछ भी हो, इतना साफ है कि डॉ. लोहिया का मन रमा में गहरा पैठा हुआ था। वह उनकी जिंदगी का हिस्सा थीं। किसी सीमा तक वह उनके जीने का मकसद भी थीं। चूँकि डॉ. लोहिया खुले दिमाग के इंसान थे और संबंधों को तालाबंद करने के बहुत पक्ष में नहीं थे। डॉ. लोहिया का व्यस्त जीवन भी बहुत कुछ एकांगी था। रमा के साथ भी यही था। फिर, प्यार जीवन की रस-साधना का सुखद अनुभव है। वह जीवन के एकाकीपन, अधूरेपन और खालीपन को भरता है। डॉ. लोहिया का बराबर टूटते जाना, हताश होते रहना और कुछ न कर पाने की छटपटाहट से गुजरते हुए अपने आपको सँभाल नहीं पाना, एक अलग प्रकार की मानसिकता का प्रतीक है। उन क्षणों में एकमात्र प्रेमिका ही हो सकती है जो सँभाल सके। पुरुष जब हारता हुआ अपने को पाता है तब स्त्री उसे सँभाल पाती है, कोई दूसरा नहीं। मुझे लगता है कि डॉ. लोहिया को बराबर रमा की जरूरत रही और अंत तक वे या वे दोनों उस निर्णय के करीब पहुँच कर भी जिसके बाद सकता की संभावना सीमा नहीं रहती है, निर्णय नहीं ले पाए। एक प्रकार की 'हिच' दोनों में, शायद रमा में ज्यादा, बनी रही। शायद इसी कारण वे दोनों परस्पर आकृष्ट बने रहे। पं. नेहरू में भी एक इसी प्रकार की रसात्मकता थी जो उन्हें बराबर परेशान करती रही। यही तो भारत की धरती की महक है जो यूरोपियन नजरिये से संबद्ध भारतीय को बार-बार इस ओर खींच ले जाती है। कारण है, एकांत लम्हों में एक पत्नी-प्रेमिका ही है जो पुरुष के दर्द-अहम् के टूटते क्षणों में इसे सँभाल पाती है।

डॉ. लोहिया के अधूरेपन को निस्संदेह किसी सीमा तक मित्रा भर पाती थीं, यह उनके पत्रों से काफी साफ होता है। कदाचित् 'लोहिया थ्रू लैटर्स' में उनके लिखे पत्र भी साथ होते तो डॉ. लोहिया को समझने में बहुत मदद मिलती। डॉ. लोहिया का बहुआयामी व्यक्तित्व और उनकी अति दूर तक जानेवाली गहन तथा मार्मिक दृष्टि संबंधों की ऊष्मा से ज्यादा गैर-संबंधों के अंतर्गत में पैठ जानेवाली होती थी।

डॉ. लोहिया यायावरी के अंदाज से जिये थे। उनमें बहुत कुछ ऐसा था जो उनको उनके समकालीन महान् व्यक्तियों में से अलग रेखांकित करता है। 'नेफा' को उर्वशीअम् अथवा उर्वसीअम् नाम देने के पीछे उनके मन में इस धरती के सौंदर्य की जो अलिपिबद्ध अर्चना-आराधना थी, उसका पता चलता है। हर औरत रुक्मिणी पर थमी हुई है, यह निष्कर्ष भी उनका था। वे लौटकर अपनी धरती से ही इस प्रकार जुड़ते थे कि उपेक्षित, कटे हुए और आधुनिक सुविधा के प्रकाश से वंचित इलाके अपना सर्वथा नवीन और गौरवमय अर्थ देने लगते थे। नारी के प्रति उनमें अति उच्च भाव था। वे नारी को कुरूप सुनकर बोले थे, "याद रखो दुनिया में कोई नारी कुरूप नहीं

1. करीम नगर से 2-12-61 को लिखा गया डॉ. लोहिया का पत्र

... स्तानी है कि एक दूसरी से सुंदर होती है।" यह उनके मन की तसवीर पेश करता है कि वे कितने सच्चे और कैसे भारतीय संस्कृति के प्रस्तोता थे। उनमें यही तो छटपटाहट थी कि हिंदुस्तान का दुर्भाग्य है कि विश्वयार बनने की कोशिश करते हैं, विश्वबंधु नहीं। सन् '60 में असम में बंगालियों तथा असमियों के मध्य झगड़े-फसाद हुए थे तब मध्यवर्ग में दो प्रवृत्तियों ने सिर उठाया था—विश्वयारी तथा भूमिपुत्र। इससे जन्म हुआ था प्रादेशिक संकीर्णता का। डॉ. लोहिया की दृष्टि में विश्वयारी (कास्मोपोलिटनिज्म[1]) है, वह विश्वबंधुत्व (यूनिवर्सलिज्म) नहीं है। विश्वयारी के पीछे एक प्रकार दिखावा है और उसमें हृदय नहीं, महज सतही जोर है जो अति स्वार्थ पर टिका हुआ है। डॉ. लोहिया ने असम के इन दंगों का विश्लेषण करते हुए लिखा था, "असम में जो हुआ, वह विश्वयारी के उस दर्शन का प्रतिफल है जो भारत में तेरह वर्षों से छाया हुआ है। इसके दर्शन पक्ष को उजागर करने से पूर्व मैं कतिपय तथ्य तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर दूँ। वे चाहे देवेश्वर शर्मा के नेतृत्ववाले कांग्रेसी हों या समाजवादी हरेश्वर गोस्वामी हों अथवा असमिया साम्यवादी फणी बोरा हों। ये सभी मिलकर भूमिपुत्रों के विचार के आसपास भावनाएँ पनपाने का यत्न कर रहे हैं। इसी प्रकार का विचार, जैसा तुम जानती हो, बिहार, बंगाल, तमिलनाडु तथा देश के अन्य भागों में भी कुछ वर्षों से चल रहा है। इससे कांग्रेस तथा उसके नेता की भूमिका साफ नजर आती है। नेता व पार्टी के कार्यकर्ता चतुराई से इस बात को स्पष्ट नहीं कहते हैं, परंतु वे अपने आदमियों को, मत तथा लोकप्रियता के लिए, इस माहौल का पूरा लाभ उठाने की छूट दिए हैं। वर्षों तक यह बारूद एकत्र होता रहता है और तदुपरांत इसका विस्फोट होता है।[2] डॉ. लोहिया ने लगभग चार दशक पूर्व प्रांतीय संकीर्णता के विष की ओर संकेत देते हुए चाहा था कि देश में फैलते जा रहे विष से देश को बचाया जाए। वे लिखते हैं कि विश्वयारी का दर्शन दुनिया को, समता लाए बिना ही एक जैसा बनाना चाहता है; वह प्रभुत्वशाली देशों के कुछेक सतही गुणों की नकल करता है; वह बिना क्रांतिकारिता के उदारवादी बनता है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी नागरिकता की धारणा पनपती है, जो एक छोर पर तो प्रादेशिक है—भूमिपुत्र वाली और दूसरे छोर पर वह विश्वव्यापी होती है, दुनिया में भाईचारे और विश्व-सरकार की बात करनेवाली; किंतु जो इन दोनों के बीच की कड़ी—भारतीय नागरिकता को संविधान में दफनाए रहती है, उसको दिमाग में उचित जगह नहीं मिल पाती। आज देश की जो स्थिति है, वह इस प्रकार की दोहरी संकीर्ण विचारधारा का प्रतिफल है।

डॉ. लोहिया अपने पत्रों में यह लिखते हैं कि उन्हें "यह भरोसा हो गया है कि राजनीति में मगरमच्छ, चूहे और कछुए ही उपयुक्त हैं"'राजनीति तात्कालिक धर्म है और धर्म दीर्घकालीन राजनीति है—दोनों ही मानवता के उच्चतम सद्गुण हैं।" वे अपने चारों ओर देखते थे तो पाते थे कि चरित्र संकट में है, धर्म दिशा-शून्य है, राजनीति व्यवसाय बन चुकी है और सेवा लूट। दिनोंदिन देश पतन की ओर जा रहा है और कोई शक्ति उसे नीचे गिरने से रोक नहीं पा रही है। वह डरते थे कि क्या होगा इस नवीन सभ्यता का, जिसका जन्म स्वयं को निगल जाने के लिए ही हुआ लगता है। नीचे दिया गया पत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है—

1. Cosmopolitanism.
2. हैदराबाद से लिखा पत्र दिनांक 15 अगस्त, '60 से

आरा
5 जनवरी, (1967)

प्रिय हल्ली,

या तुम्हें पच्चीस की रात को झाँसी नहीं अट्ठाइस की सुबह जयपुर पहुँच जाना है।

मैं तीस जनवरी और फिर दो फरवरी दिल्ली में रहूँगा। तुम वहाँ के लोगों से, आजकल कोई कपूर मंत्री बना है और पहलेवाले शिशोदिया से भी, बात करके अगर ठीक समझो किसी एक दिन सभा करने की इजाजत दे देना।

मैं चौदह और पंद्रह जनवरी को इलाहाबाद रहूँगा। बड़ा संकट का सवाल है। मुझे आजकल राजनीति अच्छी नहीं लगती। लेकिन दुनिया में कौन-सी चीज पूरी अच्छी है और अगर पूरी अच्छी लगने लगे तब केवल पुनरावृत्ति हो। अगर तुमसे हो सके चौदह की सुबह इलाहाबाद पहुँचना। कम से कम लंबा पत्र लिखना।

तुम्हारा
राममनोहर

कलकत्ता
9 जनवरी (1967)

प्रिय ईला,

अब आसाम मार्च में जाना होगा। साथ में कृपलानी जी को लिखा पत्र है। राजनारायण को न मिला हो दिखा देना। कृपलानी जी का तार आया तो जनवरी 21 तक आऊँगा।

फरवरी में दरबार हाल के दोनों भाषण 1. पाकिस्तान क्यों बना 2. चीन ने क्यों हमला किया—के निमंत्रण अभी से कार्ड पर छपकर बुक पोस्ट से चले जाने चाहिए। हिंदी में कम से कम पाँच सौ लोगों को।

कलकत्ते के संलग्न भाषण को किसी-न-किसी दिल्ली अखबार में छपाने की कोशिश करना।

अब फाइल रखना सीख जाना।

वहाँ की खबर लिखते रहना। हिमालय बचाओ सम्मेलन बढ़ रहा है या नहीं? अब तो अंग्रेजी हटाओ भी करना पड़ेगा।

तुम्हारा
राममनोहर

फिर भी डॉ. लोहिया बराबर सक्रिय बने रहे। योजनाएँ बनाते रहे और देश को नई दिशा की ओर ले जाने की कोशिश करते रहे। समय को चुपचाप खिसकता पाकर जब-तब अपने आपको ठूँठ-सा अनुभव करने लगते थे। दुनिया का भविष्य दोगला माननेवाले लोहिया बराबर इस बात के लिए चिंतित रहते थे कि इस देश में संकल्पी मन नजर आए। उन्होंने इस्राइलवासियों के संकल्प का उदाहरण देते हुए बताया था कि उनमें जबर्दस्त जीने का माद्दा है। पता नहीं, वैसा संकल्प हिंदुस्तान में कब लौटेगा? कदाचित् इजरैल अपने इसी संकल्प के कारण बचा रहा है कि इस्राइल का खत्म होना प्रायः असंभव है। कहाँ पंद्रह लाख इस्राइल और कहाँ सात करोड़ अरब। दोनों

...का क्या मुकाबला! परंतु यहूदियों का संकल्प चट्टान की तरह अटल।

डॉ. लोहिया ने मनीला से लिखा कि वियतनाम विचित्र देश है। इतनी नाजुक औरतें और कहीं नहीं। मुझे समझ में नहीं आया कि इनके स्तन इतने कोमल और फिर भी इतने दिखाऊ कैसे हैं। लड़ाई चल रही है। लेकिन खाने-पीने में हमसे अच्छे हैं।···हिंदुस्तान की कहीं कोई बुनियादी खराबी है। क्या हिंदुस्तानी दूसरे राष्ट्रों के साथ या तिरस्कार या चापलूसी ही कर सकते हैं।[1] वे विदेश में घूमते सदा इस बात के लिए चिंतित बने रहे थे कि अपने देश में वह क्यों नहीं है जो वहाँ है। वे सोचते हैं कि देश सड़ चुका है। मालूम नहीं स्वास्थ्य वाली कोई नस या नाड़ी बची है या नहीं। राजनीति ही देश को निगलने जा रही है। अब देश में उन लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है जो देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुके थे। 1962 में जब राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति नहीं रहे थे, वे दमे के रोग से पीड़ित थे। उनको तत्कालीन आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री ने इसलिए अपने यहाँ आमंत्रित किया था ताकि वे वहाँ की आर्द्रताशून्य जलवायु में रहते हुए आराम पा सकें। संजीव रेड्डी तब वहाँ के मुख्यमंत्री थे। वे उनके आमंत्रण पर वहाँ चले आए। अभी उन्हें हैदराबाद में आए कुछ ही दिन हुए थे कि अचानक उनकी पत्नी की हालत बिगड़ गई। बहुत कोशिश की। बराबर फोन पर फोन किए परंतु डॉक्टर नहीं आया। गोदान की व्यवस्था भी उनके मित्र विशाल ने की थी। उसके लिए सरकार की ओर से कोई प्रयास नहीं हुआ। कुर्सी की पूजा किस कदर बढ़ चली है। व्यक्ति कुर्सी से हटा नहीं कि उसे भुला दिया गया, चाहे वह कितने बड़े पद पर ही क्यों न रहा हो। डॉ. लोहिया सब कुछ देख रहे थे परंतु वे कर कुछ नहीं पा रहे थे, इस बात का उनको गहरा मलाल था। वे लगातार इसी बात पर जोर देते थे कि गड़बड़ कहाँ है और क्या है: वे लिखते रहते थे कि उन गैर जिम्मेदाराना तथ्यों का रहस्य खोला जाए जिनसे जनता सजग रहे। एक बार उन्होंने लिखा था।

कमलेश[2] से कहना दो-तीन पृष्ठ का खत तैयार रखे। मंत्रियों की कहाँ-कहाँ झूठ रही है। अध्यक्ष ने कैसे-कैसे अपने फैसलों से इस झूठ को सामने नहीं आने दिया है। तारीख समेत, झूठ का तथ्य एक वाक्य में हो सके तो एक उद्धरण। छोटे में 67 घटनाएँ देने में बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, लेकिन मेरे आने तक यह तैयार करना चाहिए।[3]

डॉ. लोहिया निरंतर जन-चेतना को जगाने का प्रयास करते रहे। वे योजना बनाते थे और अपने साथियों को तत्संबंध में आदेश देते रहते थे। वे संगठित काम चाहते थे। द्रष्टव्य हैं उनके कुछ पत्र—

हैदराबाद.
4-10-63

प्रिय रमा,

साथ में दो लिखावटें भेज रहा हूँ। एक फर्रुखाबाद भेज देना। उनको समझाकर कि यह जन समिति के प्रत्येक सदस्यों के पास अलग-अलग जाना है। दूसरा खास तौर से उत्तरप्रदेश के और बिहार के दफ्तरों को भेज देना। अगर वह चाहें कि हर ज़िलों और क्षेत्र कमिटियों को भेज दें तो इसे छपवाकर या नोटिस की तरह अपने इलाकों में बाँटे। यह काम जनेसर को करना है।

20 से 23 अक्टूबर को दोपहर तक कुछ मुलाकातें तय कर लेना, चाहे दोपहर का भोजन।

1. बर्मा का राजदूत
2. फिलीपीन का राजदूत
3. आर्गनाइजर के श्री मलकानी और श्री अडवानी (इनसे अगर सुबह अथवा शाम की चाय हो तो ज्यादा अच्छा)
4. प्रेम भाटिया और उनकी बीवी
5. फ्रेंक एंटनी
6. प्रकाशवीर शास्त्री

इन सभी को मेरी तरफ से टेलीफोन पर तय कर लेना। कह देना कि मैं बाहर घूम रहा हूँ लेकिन उस समय लौट आऊँगा।

लोकसभा के भाषणों, और सभी वाक्यों तथा उनके आगे-पीछे के इकट्ठा कर लिए होंगे। अगर चौखंभावाले फौरन निकालने को राजी हों तो उनसे बात कर लेना। नहीं फौरन दूसरा इंतजाम करना। लोकसभा में लोहिया अंक 1 बाद में अंक 2, 3 वगैरह होते रहेंगे। यह सब जनेसर को फौरन करना चाहिए।

जितनी फाइलें इकट्ठी हो गई हों उनमें से अगले 15 दिन में कम से कम 1 तुम और 1 जनेसर और अगर कोई और सहायक मिल जाए तो उसके लिए ठीक करें। एक तरफ नोट बनाने का काम और दूसरी तरफ खतों के उत्तर देने का काम हो जाना चाहिए।

31 जनवरी (1967)

प्रिय रमा,

मैं अठारह को जहाज से दिल्ली पहुँचूँगा। अभी बंबई जाना नहीं हो सकता, ऐसा किसन को कह देना। किसन ने तार भेजा था। अठाइस तारीख को पटना पहुँच जाना पड़ेगा।

जैसी सभाएँ चाहो रख सकती हो। लेकिन मुझको विषय वाली सभाओं में दिलचस्पी थी। इसीलिए दरबार हाल। अगर वो लोग चाहें तो; लेकिन सभा रखना जरूरी नहीं है। वैसे भी काम काफी है। तुम शायद भूल गई हो कि साँवलदास[1] और उनके एक साथी ने दफ्तर की बात कही थी—जनेश्वर[2] के सामने।···ऐसे मामलों में—वैसे तो किसी भी सार्वजनिक मामले में—एक आदमी पर निर्भर नहीं करना चाहिए। और सो भी आज कोई कल दूसरा। गणेश ने कुछ नहीं किया। संगठित काम—डायरी और टेलीफोन अच्छा होता है।[3]

डॉ. लोहिया के कुछ पत्रों से यह पता चलता है कि वे तत्कालीन राजनीति से क्षुब्ध और किसी सीमा तक निराश हो चुके थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि वे क्या करें, कौन-सा

1. डॉ. लोहिया के दिनांक 21 अप्रैल, 1964 के पत्र के अंश
2. कमलेश शुक्ल—डॉ. लोहिया का निजी सचिव
3. डॉ. लोहिया के पत्र 9 अगस्त, 1964 से

1. गुप्त, दिल्ली का समाजवादी
2. मिश्र, इलाहाबाद के समाजवादी नेता
3. डॉ. लोहिया के 31 जनवरी, 1967 के पत्रांश

रास्ता अपनाएँ। वे लिखते हैं—

1. पता नहीं जयप्रकाश ने बातचीत शुरू क्यों की। हिंदुस्तान की राजनीति बहुत निराधार हो गई है। किंतु ऐसे समय में हो, समय पर एक आधार वाली पार्टी बहुत कुछ बना सकती है, अगर उसका आधार सचमुच है।[1]

2. सरकार पूरी तरह से पागल हो गई है।[2]

3. यह देश सड़ चुका है।

डॉ. लोहिया ने अपने कतिपय पत्र हिंदी अंग्रेजी में भी लिखे हैं। उन पत्रों को पढ़कर अनायास महाकवि 'निराला' की याद हो आई है। जब 'निराला' ने जाना कि अंग्रेजी में लिखे बिना कुछ नहीं है। हिंदीवालों को तभी मान्यता मिलेगी जब अंग्रेजी में वे लिखेंगे या बाहरवाले उनकी लेखन-शक्ति (रचनाधर्मिता) का महत्त्व स्वीकार करेंगे। तब उन्होंने ऐसी कहानी लिखी जिसका कुछ भाग अंग्रेजी में था। यह उनकी असंतुलित मानसिकता का परिणाम था। परंतु डॉ. लोहिया के साथ ऐसी कोई बात नहीं थी। उनका हिंदी, अंग्रेजी, जर्मनी आदि भाषा पर अधिकार था। यह तो स्वाभाविक रूप से बना है और खास तौर से तब बना है जब उन्हें हिंदी के किसी खास शब्द[3] को लिखना पड़ा है या किसी विदेशी मित्र को पत्र लिखते हुए उस पत्र में किसी भारतीय को भी कुछ लिखना पड़ गया है।[4]

डॉ. लोहिया के इन पत्रों के अध्ययन से यह पता चलता है कि उनमें देश के प्रति जबरदस्त कशिश थी और उनका चिंतन बहुत गहरा था। उनमें गहरी समर्पण की भावना थी। उनमें वर्ड्सवर्थ के स्काईलार्क (दार्शनिक) की संभावनाएँ थीं। स्काईलार्क अनंत में उड़ते हुए जैसे अपनी दृष्टि यथार्थ की ओर रखता है, ठीक वैसे ही वे गहरा और व्यापक चिंतन करते हुए सदा धरती के इंसान पर ही अपनी नजर रखते थे। उनमें चिंतन के अनेक पक्ष एकसाथ उभरते थे और वे उनमें से अनुकूल तथा सर्वथा उपयोगी का चुनाव करते थे। उनमें विश्व-सरकार का सपना अवश्य था। डॉ. लोहिया मुक्त यौन-आचरण को यौन-पवित्रता मानते थे। मानते थे कि इससे आत्मा और मन दोनों को लाभ मिलता है और स्त्री व पुरुष के संबंध प्रगाढ़ तथा अत्यधिक आत्मिक बनते हैं। प्रो. रमा को लेकर जो प्रश्न लोहिया के पाठकों के मन में उठता है, उसका उत्तर भी उनके यौन-विषयक विचारों से मिल जाता है। डॉ. लोहिया अंत तक रमा जी के प्रति समर्पित रहे। उनके प्रेम में कभी कमी नहीं आई और न उनमें कभी गतिरोध पैदा हुआ। वे स्पष्टवादी थे। रमा जी को उन्होंने जो कुछ लिखा उसमें उनका गहरा अपनत्व झलकता है। वे उदारमना थे, अध्ययन के प्रति गहरा लगाव रखते थे, कठोर परिश्रम करने के आदी थे और छल-प्रपंच से कोसों दूर थे। वे कांग्रेस के लिए बुरे हो सकते हैं परंतु देश के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, यह बात वे अवश्य जतलाते रहे थे। कांग्रेस एक पार्टी है, देश पार्टियों से बहुत बड़ा और ऊपर है।

1. डॉ. लोहिया के 2 सितंबर, '57 के पत्र से
2. डॉ. लोहिया के 5 सितंबर, 1958 के पत्र से
3. डॉ. लोहिया के 4-1-67 में 'सुधरो या टूटो'
4. डॉ. लोहिया का एक पत्र : दिनांक 25 अप्रैल 1964

लोहिया क्रांतिकारी थे परंतु सत्य-अहिंसा उनका धर्म था। उनमें मानवतावाद के प्रति पूर्ण ललक थी। वे आधुनिकता को भी और आधुनिक बनाने के पक्ष में थे। उनका बढ़ने में विश्वास था, रुकने में नहीं। वे बराबर इसी कारण कठोर परिश्रम करने की सलाह देते रहे। वे जीवन-पर्यन्त स्वयं भी अध्ययनशील रहे। जीवन को उन्होंने एक प्रयोगशाला माना। उनको उस समय बहुत दुःख होता जब जनमत उनको नहीं समझ पाता था और विशुद्ध स्वार्थ की राजनीति के चक्कर में पड़कर गुमराह हो जाया करता था। 1957 के आम चुनाव में रमा जी भी हारी थीं और डॉ. लोहिया भी। वे समाजवादी दल के बराबर बने रहने के पक्ष में रहे।[1] उनके लिए सवाल हार का नहीं, सिद्धांतों का और जीवन के प्रति पूर्ण निष्ठा का था। कर्मच्युत होना उनकी दृष्टि में अपराध जैसा जघन्य पाप था। उनमें मात्र पर्वतीय सौंदर्य के प्रति सम्मोहन नहीं था बल्कि वे पर्वतीय जीवन के प्रति गहरी दृष्टि रखते थे। उनका सौंदर्यवाला पक्ष जीवन से संबद्ध था। जीवन ही उनकी कर्मभूमि था, धर्मभूमि था और युद्धभूमि था। वे सरल थे और सरलता ही उनका सम्मोहन था। आक्रोश उनका प्रेम था। पीड़ा में से सुख खोज लेना ही उनकी स्थायी प्रकृति थी। वे संस्कृति के अध्येता थे और सभ्यता के डॉक्टर। निस्संदेह उनके पत्रों से उनके सरल व सौम्य दार्शनिक और समाज-सेवक की छवि चित्त में स्थापित होती है तथा एक अवधूत की याद आती है—अनेक सम्मोहक इन्द्रधनुष के साथ।

लोहिया को आजन्म यह मलाल बराबर रहा कि भारत ने आजादी में जल्दबाजी क्यों दिखलाई? पटेल जैसे कूटनीतिज्ञ कैसे फिसल गए? नेहरू को गांधी इतना महत्त्व क्यों देते रहे? उन दोनों की प्रतिष्ठा पर देश का विभाजन स्वीकार करने की असरदार अपील क्यों की? उनके साथ उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा भी क्यों जोड़ दी? यह भयंकर अपराध हुआ था उन सबसे जिसका पश्चात्ताप भारत-पाकिस्तान की कितनी ही पीढ़ियों को ढोकर करना पड़ेगा। और फिर खान अब्दुल गफ्फार खाँ की आहत आत्मा से निकला वह गुबार सच हो गया जो भयानक संकट में डाल जाएगा पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों को! खान पठान कौज का पक्का है। उसे गहरी चोट पहुँची है। हो सकता है कि आगे आनेवाली पीढ़ी हिंदुस्तान-पाकिस्तान से बदला लेने खड़ी हो जाए। परवरदिगार से कहता हूँ कि वो कभी पठान कौम के मन में यह विचार न डाल दे कि हिंदुस्तान ने उन्हें मझधार में छोड़ दिया था। तो गजब हो जाएगा। उनकी पागल कौम है—मोटी बुद्धि की। दिमाग में कुछ नहीं पकने देता। उसके लिए दुश्मन दुश्मन है, दोस्त दोस्त। वे कई बार खान की बात के घेरे में आकर किंकर्तव्यविमूढ़ रह गए थे। कल के गर्भ में क्या है, कोई नहीं जानता। उनके मन में यह चिंता गहरी थी कि हिंदुस्तान राह से नहीं भटक जाए।

डॉ. लोहिया ने अपने पत्रों में अनेक संदेह व्यक्त किए थे। उन्होंने चाहा था कि खुशहाल हिंदुस्तान हो। उनके चाहे व्यक्तिगत पत्र हों या दूसरे पत्र, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि उनकी व्यक्तिगत और सामाजिक जिंदगी एक-सी थी। उसमें कोई पर्दा नहीं था। उनका सैलानी जीवन एकदम निष्कपट, निश्छल और पारदर्शी था। वे राजनीति की सवारी सत्ता की गाड़ी में बैठकर कभी नहीं करना चाहते थे। वे एक सरल चित्त सारे संसार को अपना घर समझनेवाले इंसान थे। यही कारण है कि वे कभी इतिहास का विषय बनकर नहीं रहेंगे, सदैव वर्तमान से

1. डॉ. लोहिया के 28 मार्च, '57 के पत्र से

... साथ रहना, क्योंकि उनके विचार मौलिक थे, उनकी सूझ यथार्थवादी थी और उनका हृदय समरसता का बेमिसाल उदाहरण था। विचार कभी मरते नहीं, सूझ सदा काम आती है और समरसता जीने का लक्ष्य है। फिर वे सबके साथ, सब जगह और हर समय क्यों न नजर आएँ? यही तो उनके जीने का रहस्य था और उनकी सफलता की मौलिक तथा विश्वसनीय शैली थी।

डॉ. लोहिया का संपूर्ण पत्र वाङ्मय उनके हृदय और मन का दर्पण है। एक पवित्र आत्मा की अंतहीन कहानी है। यथार्थतः वे अपने युग से बहुत आगे थे और हर होने वाली घटना पर उनकी गिद्ध दृष्टि थी। वे अतीत के वर्तमान थे और वर्तमान के भविष्य। समय उनकी गति को रोक नहीं पाता था। उसका कारण है कि दर्शन को व्यवहार में परिणत कर जी रहे थे। हालाँकि वे दार्शनिक नहीं थे परंतु यह भी था कि वे दर्शन के अदृश्यमान जगत् को साकार दिखला रहे थे और रहस्यों पर से पर्दा हटाकर अंतर्मन के अक्षय सौंदर्य से साक्षात्कार कराने की दिशा में पहल कर रहे थे।

लोहिया के आंग्लभाषी पत्र

डॉ. लोहिया का पत्र-साहित्य विश्व-पत्र वाङ्मय की अक्षय धरोहर है। उसमें हृदय और बुद्धि का अद्भुत समन्वय है। उसमें दीप्ति है, करुणा है और अंतर्पीड़ा का उद्वेलन है। उनमें से अधिकांश पत्र साहित्यिक हैं। उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी और जर्मन भाषा में पत्र लिखे थे, क्योंकि उनके मित्र सारी दुनिया में थे। उन्होंने अपने पत्रों में आंचलिक भाषा का पुट देकर भावाभिव्यक्ति को सटीक तथा हृदयग्राह्य बनाया है।

डॉ. लोहिया का हिंदी, अंग्रेजी और जर्मन भाषा पर अच्छा अधिकार था। वे भाषा के मामले में बहुत सतर्क थे। शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास और प्रवाह-संबोध में वे किसी सीमा तक मौलिक थे, अभिनव भी थे। यहाँ तक कि अल्पविराम, अर्द्धविराम, पूर्णविराम आदि में उनकी अधिकारपूर्ण दखल थी। वे अभिव्यक्ति के मामले में बहुत स्पष्ट थे। वे चाहते थे कि जो सोचा जाए, वही लिखा जाए और जो लिखा जाए, वही समझा जाए। यही उनके लेखन की सादगी और खूबसूरती भी थी। वे अभिव्यक्ति के मामले में भी पूर्णतया समाजवादी थे। नपा-तुला और सटीक लिखते थे।

यहाँ उनके अंग्रेजी पत्रों की बानगी पर विचार किया जाना आवश्यक है। हालाँकि उनके हिंदी पत्रों का नमूना पेश किया जा चुका है तथा उनके आंग्ल भाषा में लिखे पत्र इस दृष्टि से अभी विचारणीय हैं। उनमें उनकी मेधा की विलक्षणता, देश पर बातें, विलक्षण विषयों पर विलक्षण बातें, संस्कृति पर अतलस्पर्शी चिंतन, अवसाद के क्षण, आशा-निराशा के विलक्षण क्षण आदि का मर्म व्यक्त होता है। ऐसा लगता है कि उन पत्रों की यात्रा उनकी तरह यायावरी के अमृत-निनाद से संकुल है। उनको इस बात का पूरा खयाल रहता है कि पत्र किसे लिखा जा रहा है और क्यों लिखा जा रहा है? उस पर उनके पत्रों का क्या प्रभाव बनेगा ? क्या सोचेगा वह? उनके कुछ पत्रों में नाराजगी भी व्यक्त होती है, परंतु प्यार से भरी, अपने आपसे ही बतियाती हुई और संवादात्मक मुद्रा बनाते हुए विलक्षणता के साथ। छोटे-छोटे वाक्य और छोटे-छोटे अनुच्छेद उनके चित्त की अंतरंगता को व्यक्त करते हैं। जहाँ बड़े-बड़े अनुच्छेद हैं, वहाँ उदाहरण भी हैं और कुछ गहरे में उतर जाने का प्रयत्न भी है।

उनमें गुस्सा भी है, नाराजगी भी है। तेवर भी बदलकर डियर रमा को उनके पत्र का उत्तर देते हुए वे लिखते हैं—

I am really astonished that you are such a coward, an idiot, a slunt and what not, besides. उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह इतनी डरपोक, मूर्ख और फूहड़ स्त्री है। वह अपने को रोक नहीं पाते और प्रवाह में लिखते जाते हैं—

I had, not known you as such, a five years old foolish, fear stricken child,